37

(10 फरवरी 1898—14 अगस्त 1956)

जन्म शताब्दी वर्ष (10 फरवरी 1998-1999)
के अवसर पर

विशेष सामग्री

बर्तोल्त ब्रेख्त की अट्‌ठाइस कविताएं

(मूल जर्मन से अनुवाद : **मोहन थपलियाल**)

●

और **मोहन थपलियाल** का लेख

दुख के कारणों की तलाश का कवि

गैर-सरकारी स्वयंसेवी संगठनों और
दाता एजेंसियों का असली चरित्र

तीसरा क्षेत्र (थर्ड सेक्टर)-पूंजीवाद के सुरक्षा-कवच के रूप में

पूंजीवाद अगर अपनी तमाम कमजोरियों और बहादुराना प्रतिरोध संघर्षों के बावजूद धराशायी नहीं हो पा रहा है तो उसका एक कारण यह "मुनाफारहित क्षेत्र" ('नॉन प्रॉफिट सेक्टर') भी है। फिर भी पूंजीवाद के आलोचक इस क्षेत्र की "लोकहितैषी" पूंजी, इसके निवेश और इसके वितरण को आमतौर पर नजरअंदाज कर देते हैं।

● **जॉन रोयलोव्स** का विचारोत्तेजक लेख

10

हॉब्सबॉम की शताब्दी समीक्षा

बीसवीं सदी के विश्व इतिहास पर एरिक हॉब्सबॉम की बहुचर्चित पुस्तक 'दि एज ऑफ एक्सट्रीम्स : ए हिस्ट्री ऑफ दि वर्ल्ड, 1914-1991' की समीक्षा के बहाने विश्व इतिहास पर एक मार्क्सवादी नजर

● **जस्टिन रोजेनबर्ग**

25

माओ त्से-तुङ की कविताएं

माओ की बारह कविताएं
साथ में हर कविता की
ऐतिहासिक-राजनीतिक पृष्ठभूमि
से परिचित कराते हुए
विस्तृत टिप्पणियां

32

इस अंक में

आपकी बात

अपनी बात

...बेहतर है, विकल्प की बात करें!.......5

बहस के लिए

गैर-सरकारी स्वयंसेवी संगठनों और दाता एजेंसियों का असली चरित्र
तीसरा क्षेत्र (थर्ड सेक्टर) पूंजीवाद के सुरक्षा-कवच के रूप में.......10

मदर टेरेसा और उनके उत्तराधिकारियों का ''मिशन'' : सेवा का सच!
—भूपेश कुमार सिंह.......12

महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के चुने हुए दस्तावेज और लेख—चार

महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति अमर रहे.......15

एक युगान्तरकारी दस्तावेज.......21

पुस्तक चर्चा

हॉब्सबॉम की शताब्दी समीक्षा.......25

जन्मदिन (26 दिसम्बर) के अवसर पर

माओ त्से-तुङ की कविताएं.......32

राजनीतिक अर्थशास्त्र के मूलभूत सिद्धान्त (तेरहवीं किस्त)

सार्वजनिक स्वामित्व की समाजवादी प्रणाली समाजवादी उत्पादन सम्बन्धों की बुनियाद होती है.......48

टिप्पणियां

भारतीय अर्थव्यवस्था : चिदम्बरी बजट की पोल खोलती, ढलान पर फिसलती हुई ❍सब्सिडी पर "श्वेतपत्र" : मिथक और यथार्थ ❍ भारतीय अर्थव्यवस्था भुगतान सन्तुलन के संकट की दिशा में ही अग्रसर ❍ आर्थिक विकास के नाम पर आंकड़ों की बाजीगरी विदेशी प्रत्यक्ष निवेशों की असलियत ❍ टैक्स नीति का जुआ क्या गुल खिलायेगा भारतीय अर्थव्यवस्था में? ❍ "भूमण्डलीकरण" की असलियत: बढ़ती आर्थिक विषमताओं का भूमण्डलीकरण ❍ भारत में गरीबी दूर करने के लिए विश्वबैंक की "सीख".......58-66

शिक्षा

"सबको प्राथमिक शिक्षा" और "बाल कल्याण योजनाएं": जनता को गुमराह करने के मुखौटे.......67

मेरे दृष्टिकोण से, "वामपंथी" लेखकों का "दक्षिणपंथी" लेखकों में बदल जाना आज बहुत आसान है। सबसे पहली बात तो यह है कि, अगर आप वास्तविक सामाजिक संघर्षों से सम्पर्क बनाये रखने के बजाय कांच की खिड़कियों के पीछे बन्द होकर लिखने या पढ़ने बैठ जाते हैं, तो यह आपके लिए आसान है कि आप अत्यन्त उग्रपरिवर्तनवादी या "वामपंथी" बन जायें। लेकिन जिस क्षण आप यथार्थ के सामने पड़ते हैं, तब आपके सभी विचार भहरा कर गिर जाते हैं। बन्द दरवाजों के पीछे बैठकर उग्रपरिवर्तनवादी विचारों का फौव्वारा छोड़ना बहुत आसान है, लेकिन उतना ही आसान है "दक्षिणपंथी" बन जाना। इसे ही पश्चिमी देशों में "बैठकखाना- समाजवादी" कहते हैं। बैठकखाना बैठने का एक कमरा होता है और इसमें बैठकर समाजवाद पर बहस करना बहुत कलात्मक और सुरुचिपूर्ण लगता है। इस तरह के समाजवादी बिल्कुल अविश्वसनीय होते हैं।

• लू शुन

('दक्षिणपंथी लेखकों के लीग पर विचार' से)

दायित्वबोध

वर्ष-5 अंक 1-2; नवम्बर '97-फरवरी '98

प्रधान सम्पादक : **विश्वनाथ मिश्र**

सहायक सम्पादक : **अरविन्द सिंह**

संयुक्त सम्पादक : **ओमप्रकाश सिन्हा**
सत्यम वर्मा

आवरण : **रामबाबू**

सम्पादकीय कार्यालय :
3/274, विश्वास खण्ड, गोमतीनगर, लखनऊ-226 010 फोन : 393896

एक प्रति : 15 रुपये
वार्षिक : 90 रुपये
आजीवन : 1000 रुपये

•

सम्पादन एवं संचालन
पूर्णत: अवैतनिक एवं अव्यावसायिक

कम्पोजिंग : **कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन, 3/274, विश्वास खण्ड, गोमतीनगर, लखनऊ-226 010**

स्वत्वाधिकारी विश्वनाथ मिश्र द्वारा एम. डब्ल्यू, 6/221, बेनीगंज, गोरखपुर से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा आफसेट प्रेस, नखास, गोरखपुर से मुद्रित

आपकी बात

—'दायित्वबोध' जुलाई-अक्टूबर '97 प्राप्त हुआ। धन्यवाद। अपनी वैचारिक विशिष्टता के कारण पत्रिका आदर की अधिकारिणी रही है। ऐसी और इतनी वैचारिक प्रतिबद्धता वाली पत्रिकाएं हिन्दी में नहीं है। इस अर्थ में तमाम जीवन के क्षेत्रों में 'दायित्वबोध' संभवत: अकेली जलती मशाल है। स्थितियों के पीछे के आंकड़े और जनता को अधिकार की लड़ाई में जगाने का अनवरत उद्घोष चाहे अभी एक अकेली रचनात्मक आवाज हो—आवाजों का सिलसिला बनाने में सक्षम है।

आपके और पत्रिका परिवार के लिए शुभकामनाएं।

— रामेश्वर द्विवेदी, शिलांग

—जुलाई-अक्टूबर '97 अंक कई अर्थों में बेहतर लगा। अव्वल तो यह कि इसका सम्पादकीय 'अंधकारमय अर्द्धशताब्दी' को लेकर जो प्रामाणिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है, वह देश की स्वाधीनता के स्वर्ण-जयंती वर्ष के प्रसंग में उत्तरापेक्षी प्रश्न खड़ा करता है। दूसरे, 'मार्क्सवाद के विरोध में नव-दक्षिणपन्थी लोकरंजकता के नये-नये मिथक' शीर्षक आलेख में उत्तर आधुनिकतावाद तथा उनसे जुड़ी अन्य भ्रामक शब्दावलियों की सप्रसंग व्याख्या द्वारा विश्वनाथ मिश्र जी ने सही जगह चोट की है। इसके अतिरिक्त चाङ चुन-चियाओ, सर्गेई मिखाइलोविच आइजेंस्ताइन तथा रेमण्ड लोट्टा के वैचारिक लेखों तथा पुस्तक चर्चा से अंक की गरिमा बढ़ी है।

दरअसल आज ऐसे लेखों की तात्कालिक आवश्यकता और महत्व से इन्कार नहीं किया जा सकता, कारण कि इन लेखों में व्यक्त वैचारिक निष्पत्तियों से कई प्रकार के विभ्रमों को साफ करने में मदद मिलती है। वैसे 'राजनीतिक अर्थशास्त्र के मूलभूत सिद्धांत' को क्रमश: प्रकाशित कर आप लोग एक जरूरी कार्य कर रहे हैं जो हिन्दी के सजग और सामान्य पाठक-वर्ग के लिए और उपयोगी सिद्ध होगा।

— रामनिहाल गुंजन, नया शीतलटोला, आरा (बिहार)

—'दायित्वबोध' मिलते ही एक बार लगन से पढ़ने के पश्चात दोबारा अध्ययन कर रहा हूं। पढ़ कर यह विश्वास दृढ़ हुआ है कि सर्वहारा वर्ग बुर्जुआ अधिनायकत्व समाप्त कर अपनी सत्ता स्थापित करेगा। पत्रिका क्रान्तिकारियों के लिए बेहद जरूरी है।

पत्रिका में सभी लेख महत्वपूर्ण हैं। राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, दार्शनिक हर दृष्टिकोण से भरा-पूरा अंक है। इस अंक में साम्राज्यवादियों के षड्यन्त्रों की धज्जी उड़ा दी गयी है। उनकी साजिशाना कार्रवाइयों पर मुकुल, ललित, मीनाक्षी, विश्वनाथ मिश्र, भूपेश कुमार सिंह की टिप्पणियों के लिए कोटिश: धन्यवाद। प्रकाशित तमाम लेखों-दस्तावेजों में "एक ऐतिहासिक विश्वासघात और उसके बाद की अंधकारमय अर्द्धशताब्दी", "बुर्जुआवर्ग के ऊपर सर्वतोमुखी अधिनायकत्व के बारे में", "माओवादी अर्थशास्त्र और समाजवाद का भविष्य", "राजनीतिक अर्थशास्त्र के मूलभूत सिद्धान्त" ने सबसे ज्यादा प्रभावित किया, जिसे सोचता हूं पढ़ता ही रहूं। सांस्कृतिक मसले पर प्रकाशित सर्गेई मिखाइलोविच आइजेंस्ताइन के लेख 'कला का मनोविज्ञान' को समझना मेरे जैसे कम पढ़े-लिखे लोगों के बस की बात नहीं है।

पत्रिका भारत में एकमात्र समाजवादी क्रान्ति की बात करती है। जब कोई देश सम्पूर्ण पूंजीवाद में बदल जाता है तो उस देश में समाजवादी क्रान्ति अपरिहार्य होती है। हम लोगों का मानना है कि भारत एक अर्द्धसामन्ती-अर्द्ध औपनिवेशिक देश है। अत: हमारा देश नवजनवादी क्रान्ति के जरिये समाजवाद या साम्यवाद की ओर अग्रसरित होगा।

खेद की बात यह है कि नवम्बर '96-फरवरी '97 अंक में सामाजिक प्रयोगों पर कुछ महत्वपूर्ण लेख और दस्तावेज प्रकाशित हुई थी जो हमें नहीं प्राप्त हो सकी। एक बात और, गीत, गजल भी एक पृष्ठ में होना चाहिए। पत्रिका को भभुआ कारागार में लम्बे समय से कैद का. भानुकुमार सिंह एवं का. सुभाष सिंह को भी पढ़ने के लिए देता हूं।

—एस. के. भारती, कुड़ासन, कैमूर (भभुआ) बिहार

—'दायित्वबोध' देखा करता हूं परन्तु पत्र पहली बार दे रहा हूं।

इसबार सचमुच "अपनी बात" के अन्तर्गत "एक ऐतिहासिक विश्वासघात और उसके बाद की अंधकारमय अर्द्धशताब्दी" काफी प्रभावी तथा इनफार्मेटिव है। कुछ आंकड़ों को मैंने लिया भी। विश्वनाथ मिश्र जी का लेख भी बहुत अच्छा है। पर्यावरण, शिक्षा नीति और टिप्पणियां सभी कालम बड़े उपयोगी हैं। अंक संग्रहणीय है। बधाइयां।

— लालसा लाल तरंग, राममूर्ति देवी भवन, एलवल, आजमगढ

(शेष पृष्ठ 68 पर)

...बेहतर है, विकल्प की बात करें!

गुजरे हुए साल में देश के हुक्मरानों ने अरबों के खर्च से आज़ादी की पचासवीं सालगिरह का जश्न मनाने की शुरुआत की, जो इस वर्ष 15 अगस्त तक जारी रहेगा। इस जश्न के सिर्फ विदेशों में प्रचार के लिए ही 400 करोड़ रुपये का ठेका एक अमेरिकी कम्पनी को दिया गया है।

और यह गुजरा हुआ ''ऐतिहासिक वर्ष'' आम लोगों को क्या दे गया? जाते-जाते **लक्ष्मणपुर बाथे** का बर्बरतम नरसंहार जिसमें दुधमुंहे बच्चों, और स्त्रियों सहित 80 लोगों को प्रतिक्रियावादी बड़े भूस्वामियों की रणवीर सेना ने मौत के घाट उतार दिया। स्त्रियों में एक गर्भवती भी थी। 1996 में भी इसी गांव से सटे **बथानी टोला** में रणवीर सेना ने 21 गरीब किसान-मजदूरों की हत्या की थी। इस वर्ष आतताइयों ने एक नया कीर्तिमान स्थापित करते हुए बिहार में **रूपसपुर चंदवा, बेलछी, बथानीटोला** की कड़ी को आगे बढ़ाया।

गुजरा हुआ वर्ष जाते-जाते मंहगाई-बेरोजगारी से त्रस्त जनता पर अरबों के खर्च से होने वाले लोकसभा चुनाव के रूप में एक और कहर बरपा कर गया। आगामी मार्च '98 में होने वाले इस चुनाव में सिर्फ सरकारी मशीनरी का व्यवस्था-सम्बन्धी खर्च ही 800 करोड़ रुपये के लगभग होगा। आने वाले दिनों में इसकी कीमत जाहिरा तौर पर जनता को ही चुकानी होगी।

गुजरे हुए वर्ष में मुजफ्फरपुर से लेकर सहारनपुर तक स्त्रियों को निर्वस्त्र घुमाने की कई-कई घटनाएं अखबारों की सुर्खियां बनीं। डिप्रेशन, पागलपन, आत्महत्याओं आदि में बेतहाशा बढ़ोत्तरी हुई। हजारों छोटे-बड़े कारखाने उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों की भेंट चढ़े तथा लाखों और मजदूर बेकारों की कतारों में जा खड़े हुए। बेरोजगारों की संख्या 24 करोड़ से भी ऊपर जा पहुंची। इण्टर कालेजों से लेकर विश्वविद्यालयों, मेडिकल कालेजों और इंजीनियरिंग कालेजों तक फीसों में कई-कई गुने की बढ़ोत्तरी कर दी गई तथा सीटों में कटौती के साथ ही डोनेशन के नाम पर आधी सीटें धन्नासेठों के सपूतों के लिए आरक्षित कर दी गईं। रस्तोगी कमेटी की रिपोर्ट से लेकर उ.प्र. सरकार के एक अध्यादेश तक -विश्वविद्यालयों-कालेजों की स्वायत्तता खतम करने और शिक्षकों को प्रबंधतंत्र एवं सरकार का बंधुआ बना देने की अनेकानेक साजिशें रची गईं। वर्ष भर अनेकों विश्वविद्यालयों-कालेजों में बर्बर लाठीचार्ज और फायरिंग की घटनाएं घटीं। आने वाले दिनों में शिक्षा और रोजगार के सवाल को लेकर सड़कों पर उतरने वाले छात्रों-युवाओं से निपटने का पूर्वाभ्यास सरकार ने शुरू कर दिया है। आई.ए. एस. व आई. पी.एस. अधिकारियों और सेना के उच्चाधिकारियों को विश्वविद्यालयों का कुलपति बनाना भी इसी तैयारी की एक कड़ी है।

गुजरे हुए साल में पांचवें वेतन आयोग की संस्तुतियों को लागू करके सरकार ने मजदूरों-कर्मचारियों के साथ न केवल घिनौनी धोखाधड़ी की है बल्कि विश्वबैंक-आई.एम.एफ.-डब्ल्यू. टी.ओ. के निर्देशों को लागू करते हुए निजीकरण और छंटनी की प्रक्रिया को और तेज कर देने की जमीन भी तैयार कर दी है। विनिवेश आयोग ने एक के बाद एक - कई सरकारी उपक्रमों को निजी हाथों में सौंपने की सिफारिश की। रेलवे बोर्ड ने 18 लाख रेलकर्मियों की संख्या घटाकर 13 लाख पर पहुंचा दिया और इसे 9 लाख तक ले आने का लक्ष्य तय किया जा चुका है। गोरखपुर सहित एफ.सी.आई. के पांच कारखानों का भविष्य सीलबंद कर दिया गया और अब अपट्रान जैसे राज्यसरकारों के विभिन्न उपक्रमों और कताई मिलों को भी बंद करने और फिर पूंजीपतियों को मिट्टी के मोल बेचने का फैसला लिया जा चुका है।

एनरॉन, वीडियोकॉन, रिलायंस और कमाण्ड पेट्रोलियम (इण्डिया) आदि देशी-विदेशी कम्पनियों के हाथों भारत के तेल और गैस क्षेत्रों को बेच देने की साजिश भी इस वर्ष प्रकाश में आई, पर बुर्जुआ मीडिया ने इस सौदेबाजी की खबर को नजरअंदाज कर दिया। बीमा क्षेत्र के निजीकरण और विदेशी कम्पनियों के इस क्षेत्र में प्रवेश सम्बन्धी विधेयक गुजरे वर्ष राजनीतिक अस्थिरता के कारण प्रस्तुत नहीं किया जा सका लेकिन चुनाव के बाद इससे सम्बन्धित कानून बनाकर उसे लागू करने की पूरी तैयारी कर ली गई है। कोयला खदानों के निजीकरण की प्रक्रिया भी शुरू की जा चुकी है।

1997 में भारत सरकार ने एक और महत्वपूर्ण निर्णय लिया। तीसरी दुनिया के कई देशों की अर्थव्यवस्था का भट्ठा बैठा चुके कुख्यात अमेरिकी आर्थिक विशेषज्ञ **जेफ्री साक्स** को भारत सरकार ने अपना आर्थिक सलाहकार नियुक्त किया है।

1997 में भोपाल गैस त्रासदी की तेरहवीं बरसी के अवसर पर गैस पीड़ित आबादी को सर्वोच्च न्यायालय ने भी एक नायाब तोहफा दिया। यूनियन कार्बाइड के मालिकों-प्रबंधकों पर लगाये गये हत्या के अभियोग को लापरवाही के अभियोग में बदल दिया गया। दुनिया के सबसे बड़े औद्योगिक नरसंहार के अपराधियों को यह छूट देकर न्यायपालिका ने पूंजीवादी व्यवस्था के प्रति अपनी एकनिष्ठ प्रतिबद्धता को उजागर कर दिया है।

यह भी इतिहास का एक दिलचस्प मजाक था कि जिस वर्ष आजादी की पचासवीं सालगिरह के मौके पर करोड़ों-करोड़ रुपये पानी की तरह बहाकर ''दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र'' की शान में कसीदे पढ़े जा रहे थे, वह वर्ष न सिर्फ साम्राज्यवादियों

के सामने हर मामले में घुटने टेकने का वर्ष था, न सिर्फ वह बर्बर दमन और धुंआधार जनविरोधी आर्थिक नीतियों को लागू करने का वर्ष था, न सिर्फ वह पूंजीवादी जनवाद के अलमबरदारों के भ्रष्टाचार के नई-नई ऊंचाइयां छूने का वर्ष था, बल्कि यह पूंजीवादी चुनाव और संसद की असलियत के एकदम सामने आ जाने का भी वर्ष था। संसद और विधानसभाओं में चौराहे के लम्पटों-गुण्डों की आपसी मारपीट और जूतमपैजार देखने को मिली। उत्तर प्रदेश विधानसभा में ''जनप्रतिनिधियों'' ने जमकर एक-दूसरे के सिर फोड़े। दलितों की मसीहा मायावती की सरकार ने ''मनुवादी'' भाजपा से गांठ जोड़कर सरकार चलाते हुए पूरे राज्य में अरबों की लागत से अम्बेडकर की मूर्तियां लगवाईं और पार्क बनवाये। भाकपाई ''कामरेड'' गृहमंत्री इन्द्रजीत गुप्त की पुलिस और सुरक्षा बलों ने देशभर में लाठियां-गोलियां बरसाने और जुल्म ढाने के नये-नये कीर्तिमान रचे। मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के ''जत्थेदार'' और ''भद्रोलोक'' तेरहमुखी संयुक्त मोर्चे की सरकार के संकटमोचक की भूमिका निभाते रहे, हालांकि मध्यावधि चुनाव को वे फिर भी न टाल सके। इस बात पर भी खुशी के झांझ-मजीरे बजे कि बंगाल में पूंजीवाद की गोद में बैठकर अपने खास किस्म के ''समाजवाद'' का झुनझुना बजाते ज्योतिबाबू ने बीस वर्ष पूरे कर लिये।

1947 के पचास वर्ष बाद, भगवे से लेकर लाल झण्डे तक सभी संसदमार्गी दलों का चरित्र साफ हो चुका है। बुनियादी आर्थिक नीतियों पर ये सभी एकमत हैं। वामपंथियों की भागीदारी वाली संयुक्त मोर्चा सरकार के वित्तमंत्री चिदम्बरम ने ढांचागत समायोजन की नीतियों को लागू करने की कुशलता और रफ्तार के मामले में मनमोहन सिंह को मीलों पीछे छोड़ दिया।

अपने सत्तासीन होने की पचासवीं सालगिरह के अवसर पर इस देश के हुक्मरानों ने यदि जालियांवाले बाग की शहीदों के खून से सनी मिट्टी का इंग्लैण्ड की महारानी के जूतों तले अपमान कराया तो इसमें भला आश्चर्य की क्या बात है? इसमें भला बुरा मानने की क्या बात है कि 15 अगस्त '97 की आधी रात को संसद में मने जश्न में एक बहुराष्ट्रीय कम्पनी कैडबरी स्वेपे और नेताओं-नौकरशाहों की जमात ने मिलकर लता मंगेशकर से शैम्पेन जैसे एक विशेष पेय की बोतल खुलवाई और उस समारोह में हमारे शासकों के साथ ब्रिटेन के हाउस आफ कामन्स की उपाध्यक्ष भी बैठी थीं!

आखिर वे पूंजीपति आजादी के पचास वर्षों का जश्न क्यों न मनायें, जबकि इस दौरान उनकी पूंजी में दो-दो सौ, तीन-तीन सौ गुने तक की बढ़ोत्तरी हो गई है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियां और साम्राज्यवादी देश भी भला इस पचास साला आजादी का जश्न क्यों न मनायें? आज वे इस स्थिति में हैं कि यहां के हर सौ रुपये में से 4 रुपये हड़प लेते हैं जबकि 1947 में औपनिवेशिक शासन खतम होने के वक्त उन्हें हर सौ रुपये में से 20 पैसे ही हासिल होते थे। जल्दी ही, यह सदी बीतते-बीतते साम्राज्यवादी 1921-22 की स्थिति में आ जायेंगे यानी हर सौ रुपये में से दस रुपये पर उनका कब्जा होगा। इस आजादी का जश्न वे तमाम कालाबाजारिए, नौकरशाह, दलाल, नवधनाढ्य और नेतागण क्यों न मनायें जो देश की राष्ट्रीय आमदनी के आधे के बराबर काला धन कमा रहे हैं और अरबों-खरबों के घोटाले कर रहे हैं। इस जमात ने सिर्फ स्विटजरलैण्ड में ही 2 लाख 50 हजार करोड़ रुपये जमा कर रखे हैं!

जिन्हें इस व्यवस्था से कोई उम्मीद नहीं रही, वे इसकी तबाही पर अपनी उम्मीदें टिकायेंगे!

पर आम जनता भला किस बात का जश्न मनाती? संयुक्त राष्ट्र की **मानव विकास रिपोर्ट** 1996 के मुताबिक हमारे देश में आज हर सौ में से 61 लोग गरीबी से त्रस्त हैं। सरकार भी यह मानती है कि आज हर सौ में से 35 लोगों को - यानी करीब 35 करोड़ आबादी को भर पेट भोजन नहीं मिल पाता। लूट और गरीबी के अतिरिक्त इस भारी आबादी को यदि कुछ हासिल हो पाता है तो जीने का अधिकार मांगने पर, न्याय और इंसाफ मांगने पर लाठियों-गोलियों की मार। देश की कुल श्रम शक्ति 35 करोड़ है जिसमें से 27 करोड़ बेरोजगारी या अर्द्धबेरोजगारी की स्थिति में हैं। कुल काम करने वाली आबादी में से सिर्फ 3 करोड़ ही व्यवस्थित क्षेत्र में काम करते हैं। 5 करोड़ आबादी धनी और खुशहाल मालिक किसानों की है। शेष 27 करोड़ आबादी छोटे किसानों, खेत मजदूरों और शहर के दिहाड़ी व ठेका मजदूरों तथा तरह-तरह के छोटे रोजी-रोजगार वालों की है।

सत्ताधारियों का दोमुंहापन स्पष्ट करने के लिए सिर्फ एक उदाहरण काफी होगा। आर्थिक सुधारों के कट्टर पैरोकार वित्तमंत्री चिदम्बरम ने आज से तीन वर्षों पहले (तब वे केन्द्रीय वाणिज्य मंत्री थे) एक सेमिनार में बोलते हुए कहा था, ''*भारत की 90 करोड़ की आबादी में से 30 करोड़ को तो बढ़िया काम, बढ़िया स्कूल और सुख-संतोष भरी जिन्दगी हासिल है। दूसरे 30 करोड़ ने ढेरों उम्मीदें तो लगा रखी हैं, पर उन्हें घटिया काम और घटिया स्कूल ही सुलभ हैं। बाकी 30 करोड़ को न तो कोई काम हासिल है, न ही कोई स्कूल। इन्हें इस व्यवस्था से कोई उम्मीद नहीं और न ही आर्थिक सुधारों से इन्हें कोई फायदा होने वाला है*'' ('द वीक', 26 जनवरी 1995, पृ. 36)।

भगवे से लेकर लाल झण्डे तक सभी संसदमार्गी दलों का चरित्र साफ हो चुका है। बुनियादी आर्थिक नीतियों पर ये सभी एकमत हैं।

चिदम्बरम साहब आज उदारीकरण-निजीकरण के चाहे जितना गुण गायें, सच वही है जो वे तीन वर्षों पहले उक्त सेमिनार में कह बैठे थे।

आखिर सत्ताधारियों का यह विश्वस्त सेवक-प्रबंधक भी मानता है कि 30 करोड़ लोगों को इस व्यवस्था से कोई उम्मीद नहीं है। मानना पड़ेगा कि जिस 30 करोड़ आबादी ने ढेरों उम्मीदें लगा रखी हैं पर जिसे नसीब बहुत कम हो रहा है, उसमें से भी भारी आबादी खिसककर कुछ न पा सकने वाली आबादी में शामिल होती जा रही है और शेष का भी मोहभंग तेजी से हो रहा है। **वह भारी आबादी जिसे इस व्यवस्था से कोई उम्मीद नहीं है, वह शून्य में नहीं जियेगी। वह इस व्यवस्था को तबाह करने के संगठित उद्यम पर अपनी उम्मीदें टिकायेगी। अत: जरूरी है इस मसले पर सोचना कि इस व्यवस्था को तबाह कर देने और नई न्यायपूर्ण व्यवस्था के निर्माण के प्रयासों को किसप्रकार संगठित किया जाये।**

वैसे हमारा आकलन चिदम्बरम साहब के आकलन से कुछ भिन्न है। हमारी गणना से इस देश की एक अरब आबादी में

से 50 करोड़ को जीने की न्यूनतम सुविधाएं तक नहीं मिल पातीं और उसे इस व्यवस्था से कोई उम्मीद नहीं है। शेष 25 करोड़ आबादी बमुश्किल तमाम जी लेती है और गरीबी-बेरोजगारी से प्रभावित होती हुई भी कुछ उम्मीद पाले हुए है। इसका बड़ा हिस्सा अब तेजी से अपने से नीचे वालों की कतार में शामिल हो रहा है और एक छोटा-सा हिस्सा ऊपर खुशहाली की ओर उन्मुख हो रहा है। शेष ऊपर की 25 करोड़ आबादी ऊपर से लेकर स्थानीय स्तर तक के नेताओं-अफसरों की है, उद्योगपतियों-व्यापारियों-दलालों-ठेकेदारों-कमीशन एजेण्टों आदि की है, धनी और खुशहाल भूस्वामियों की है और तरह-तरह के काले धंधे वालों की तथा सट्टेबाजों की है जो विपन्नता के समुद्रों में बनी विलासिता की मीनारों पर रहते हैं।

आगे जो होने वाला है उसके संकेत मिलने लगे हैं

1991 में नई आर्थिक नीतियों के लागू होने के बाद यह बंटवारा ज्यादा से ज्यादा साफ और तीखा होता चला गया है। उनकी संख्या तेजी से बढ़ी है जिन्हें इस व्यवस्था से कोई उम्मीद नहीं। और अब उनकी निराशा के अंधेरे से बगावत की चिनगारियां भी छिटकने लगी हैं। दूसरी ओर, हवा में खतरे की गंधा सूंघने के साथ ही सत्ताधारी अपनी किलेबंदी दुरुस्त करने लगे हैं और जनता पर हमले के लिए नई-नई पेशबंदियों में जुट गये हैं। ढांचागत संकट से ग्रस्त यह व्यवस्था अपनी स्वतंत्र आन्तरिक गति से निरंकुशता की ओर आगे बढ़ रही है। पूंजीवादी चुनावी पार्टियों के आपसी घमासान में फासीवादी प्रवृत्ति की मुखरतम ढंग से नुमाइन्दगी करने वाली और काफी हद तक नव-क्लासिकी फासीवादी चरित्र वाली भारतीय जनता पार्टी तेजी से और संगठित ढंग से उभर रही है। वैसे अन्य पार्टियां भी वक्त आने पर अलग-अलग ढंग से एक फासिस्ट या काफी हद तक निरंकुश स्वेच्छाचारी सत्ता के संचालन के लिए अपने को सक्षम और तत्पर साबित कर रही हैं।

ऐसा इसलिए, क्योंकि यह दीर्घकालिक मंदी के संकट से ग्रस्त साम्राज्यवादियों की भी जरूरत है और उनके 'जूनियर पार्टनर' भारतीय पूंजीपतियों की भी। जनता के लिए विनाशकारी परिणामों के बावजूद उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों को हर कीमत पर लागू किया ही जाना है क्योंकि **पूंजीवाद के सामने अब यही एक विकल्प है, यही एक मार्ग है। छंटनी-तालाबंदी, बेरोजगारी और मंहगाई से त्रस्त जनता सड़कों पर उतरेगी तो उसके लिए सेना-पुलिस-जेल का पूरा तंत्र है ही! यह सिलसिला सच पूछिए तो शुरू भी हो चुका है और आगे जो होने वाला है, उसके भी संकेत मिलने लगे हैं।**

इतिहास आगे डग भरने के मंसूबे बांध रहा है!
हमें भी नये मुक्ति संघर्ष के स्वरूप-समस्याओं के बारे में सोचना होगा!

आर्थिक नव उपनिवेशवाद के दौर की दुनिया के विभिन्न अंधेरे कोनों से – लातिन अमेरिका और अफ्रीका से लेकर एशिया में भारत, इण्डोनेशिया, फिलीप्पींस आदि तक से चिंगारियां छिटक रही हैं। पूर्वी यूरोप और रूस में भी ताप बढ़ रहा है। चीन में देङ के ''बाजार-समाजवाद'' में भी असंतोष की खदबदाहट है। हालात बताते हैं कि इतिहास, विज्ञान और विचारधारा के ''अन्त'' के सभी फतवों को धता बताते हुए **सर्वहारा क्रान्तियों के नये संस्करणों के निर्माण की जमीन फिर से तैयार हो रही है। इतिहास आगे डग भरने के मंसूबे बांध रहा है।**

ऐसी स्थिति में, **बेहतर है, विकल्प की बात करें।** भारत में उपनिवेशवाद के खात्मे और भारतीय पूंजीपति वर्ग के शासन के पचास साल पूरे होने पर हमें क्या करना चाहिए? हमें इस आजादी के सामने उस आजादी का नक्शा पेश करना चाहिए, जिसका सपना भगतसिंह और उनके सहयोद्धाओं ने देखा था। हमें करोड़ों-करोड़ मेहनतकश अवाम की वास्तविक आजादी का वह नक्शा पेश करना चाहिए, जिसके लिए 1946 में नौसैनिकों ने और बम्बई के कपड़ा और गोदी मजदूरों ने बगावत का बिगुल बजाया था, जिसके लिए **तेभागा** और **पुनप्रा वायलार** के किसानों ने कुर्बानियां दी थीं और **तेलंगाना** के गौरवशाली किसान संघर्ष ने खून से सींचकर जिन सपनों को परवान चढ़ाया था, जीवन की गर्मी दी थी!

वह भारी आबादी जिसे इस व्यवस्था से कोई उम्मीद नहीं है, शून्य में नहीं जियेगी। वह इस व्यवस्था को तबाह करने के संगठित उद्यम पर अपनी उम्मीदें टिकायेगी।

गुजरे हुए साल में **नक्सलबाड़ी** के सशस्त्र किसान उभार की भी 30वीं सालगिरह मनाई गई। यह त्योहार सत्तातंत्र का नहीं था। क्रान्तिकारियों का था और मुक्तिकामी जनता का था। आज यह समय है कि तेलंगाना और नक्सलबाड़ी की मशाल को फिर से जलाने की बात की जाये!

लेकिन तेलंगाना और नक्सलबाड़ी की मशाल आज फिर से जलाने का मतलब क्या हो सकता है?

विगत 50 वर्षों के दौरान पूरी दुनिया और भारत की सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक परिदृश्य में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं और वर्गीय संरचना में, शोषण के तौर-तरीकों में भी मूलभूत बदलाव आये हैं।

तेभागा-तेलंगाना-पुनप्रावायलार के किसान संघर्षों के दौर में भारतीय समाज एक औपनिवेशिक-अर्द्धसामन्ती समाज था। सत्तासीन होने के बाद भारतीय पूंजीपति वर्ग ने विश्व पूंजीवादी तंत्र के भीतर साम्राज्यवादी शक्तियों की मातहती के अन्तर्गत 'परनिर्भर पूंजीवाद' के क्रमिक विकास का पीड़ादायी मार्ग चुना। उसने साम्राज्यवादी पूंजी को भी लूट के अवसर देते हुए, लेकिन अन्तरसाम्राज्यवादी प्रतिस्पर्द्धा का लाभ उठाते हुए एक तरह के रुग्ण-विकलांग पूंजीवाद का निर्माण किया। विदेशी पूंजी व तकनोलाजी की सहायता से तथा साथ ही 'पब्लिक सेक्टर' की रणनीति के जरिए जनता की कमाई निचोड़कर उसने औद्योगिक वित्तीय तंत्र खड़ा किया। कृषि में क्रमिक पूंजीवादी विकास का ''प्रशियाई मार्ग'' अपनाकर उसने धीरे-धीरे सुदूरवर्ती गांवों तक को एक राष्ट्रीय बाजार से जोड़ दिया। धीरे-धीरे भारतीय समाज, मूलत: एक पूंजीवादी समाज में रूपांतरित हो गया।

स्वतंत्रता के बाद, कमोबेश आठवें दशक तक भारतीय पूंजीपति वर्ग ने अपने राष्ट्रीय बाजार का साम्राज्यवादी पूंजी के वर्चस्व से काफी हद तक महफूज बनाये रखा और सार्वजनिक क्षेत्र की मदद से खुद को मजबूत बनाता रहा। पर साम्राज्यवादी दुनिया

में यह स्थिति आंतरिक और वैश्विक – दोनों ही कारणों से बहुत दिनों तक बनी नहीं रह सकती थी। नवें दशक में नई तकनोलाजी व पूंजी की अपनी जरूरतों से भारतीय पूंजीपति वर्ग ने अपनी मण्डी को साम्राजी सरमाये के लिए खोलने की शुरुआत की। सरकारी संरक्षण के सहारे मजबूत हुई भारतीय पूंजी ने जब अपने–आप को साम्राज्यवादी पूंजी से जोड़ने की शुरुआत की तो जिन सरकारी पाबंदियों को वह पहले अपने लिए जरूरी समझती थी वही उसके पैरों में जंजीर की तरह चुभने लगीं। नतीजा उस दौर के रूप में सामने आया जिसे हम उदारीकरण–निजीकरण के दौर के रूप में जानते हैं। कहना न होगा कि इस प्रक्रिया में विश्व पूंजीवाद के अभूतपूर्व दीर्घकालिक मंदी और सोवियत संघ के विघटन के बाद निर्मित विश्व परिदृश्य की भी अहम भूमिका थी।

नये दौर की नई क्रान्ति और तेलंगाना–नक्सलबाड़ी की प्रासंगिकता

आज हम आर्थिक नवउपनिवेशवाद के एक नये दौर में जी रहे हैं जब बदले हुए अन्तरविरोधों का परिदृश्य एकदम साफ हो चुका है। भारतीय समाज का मुख्य अन्तरविरोध आज साम्राज्यवाद–देशी पूंजीवाद के गंठजोड़ और आम जनता के बीच है। पूंजीवाद का कोई भी हिस्सा आज राष्ट्रीय नहीं है, क्रान्ति का पक्षधर नहीं है। गांवों में भी धनी किसान आज शत्रु खेमे में खड़े हैं और मुख्य अन्तरविरोध वहां भी पूंजी और श्रम के बीच ही है। भारतीय समाज आज स्पष्ट रूप से एक नई समाजवादी क्रान्ति की मंजिल में है।

उपरोक्त अतिसंक्षिप्त चर्चा का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि तेलंगाना के दौर से आज अन्तरविरोध बदल चुके हैं। तेलंगाना की बुझी हुई मशाल को आज फिर से प्रज्ज्वलित करने का एकमात्र अर्थ यही हो सकता है कि सशस्त्र क्रान्ति के द्वारा सर्वहारा अधिनायकत्व कायम करने की क्रान्तिकारी मार्क्सवादी सोच को–सर्वहारा क्रान्ति के विज्ञान को मजदूर आन्दोलन में नये सिरे से स्थापित किया जाये तथा हर तरह के संसदीय वामाचार को, हर तरह के अर्थवाद–सुधारवाद को जड़मूल से उखाड़ फेंका जाये।

1967 के **नक्सलबाड़ी किसान उभार** के बाद इस दिशा में महत्वपूर्ण ऐतिहासिक पहल ली गई थी पर नेतृत्व की विचारधारात्मक कमजोरियों के चलते वह जल्दी ही ''वामपंथी'' दुस्साहसवाद के दलदल में जा धंसी। जिस क्रान्तिकारी मार्क्सवादी धारा ने क्रान्तिकारी जनदिशा का पक्ष लेकर ''वामपंथी'' दुस्साहसवाद का विरोध किया, वह भी अपनी विचारधारात्मक अपरिपक्वता के कारण, पार्टी–निर्माण व पार्टी गठन के बारे में सही समझ के अभाव के कारण और भारतीय सामाजिक–आर्थिक संरचना की गलत समझ के कारण विकल्प बन पाने में असफल रही। आगे की कहानी से सभी परिचित हैं – कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी शिविर में विगत 26 वर्षों से जारी फूट–बिखराव का अन्तहीन सिलसिला!

भारतीय कम्युनिस्ट आन्दोलन के विगत चार दौर और अब एक नये दौर की शुरुआत

इतिहास के सिंहावलोकन के आधार पर भारत में कम्युनिस्ट आंदोलन को हम चार दौरों में बांटकर देखते हैं।

पहला दौर 1920 में पार्टी बनाने के प्रथम प्रयास से शुरू होकर 1933 पर समाप्त होता है जब पहली बार पूरी पार्टी एक केन्द्रीय कमेटी के केन्द्रीकृत नेतृत्व के मातहत संगठित हो सकी और सही मायने में एक सर्वभारतीय पार्टी के गठन की प्रक्रिया मुकम्मिल हो सकी।

विगत 50 वर्षों के दौरान पूरी दुनिया और भारत की सामाजिक–आर्थिक–राजनीतिक परिदृश्य में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं और वर्गीय संरचना में, शोषण के तौर–तरीकों में भी मूलभूत बदलाव आये हैं।

दूसरा दौर 1933 से लेकर 1951 में तेलंगाना किसान संघर्ष की पराजय तक का दौर था। अपनी तमाम विचारधारात्मक कमजोरियों के बावजूद और तमाम गंभीर भूलों के बावजूद पार्टी इस दौरान मूलतः एक क्रान्तिकारी सर्वहारा पार्टी बनी रही। ठोस परिस्थितियों का ठोस मूल्यांकन कर पाने की क्षमता के अभाव, एक सुसंगत भूमि कार्यक्रम के अभाव और संयुक्त मोर्चे की सही समझ के अभाव के कारण पार्टी इस दौरान राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष की नेतृत्वकारी शक्ति नहीं बन सकी। 1946 में नौसेना–विद्रोह के समय जब तेभागा, तेलंगाना, पुनप्रावायलार के किसान–संघर्ष उत्कर्ष पर थे, देश भर में मजदूरों के हड़तालों का सिलसिला जारी था और कमजोर पड़ चुके ब्रिटिश उपनिवेशवाद के विरुद्ध जनता उठ खड़े होने को तैयार थी, उस स्थिति का भी कम्युनिस्ट पार्टी लाभ न उठा सकी। 1947 में भारतीय पूंजीपति वर्ग को सत्ता–हस्तांतरित होने के समय भी वह अनिर्णय व असमंजस की स्थिति में थी। 1946 से लेकर 1951 तक का समय एक निर्णायक संक्रमण काल था जब देशी बुर्जुआ वर्ग की कमजोर केन्द्रीय सत्ता के विरुद्ध फैसलाकुन संघर्ष छेड़कर जनवादी क्रान्ति के कार्यभार को पूरा किया जा सकता था। पर ऐसा न हो सका। तेलंगाना संघर्ष की पराजय के बाद पार्टी नेतृत्व ने निर्णायक तौर पर संसदीय मार्ग का अनुगमन किया।

तीसरा दौर 1951 से लेकर 1967 तक का दौर था, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के संशोधनवाद और मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के नवसंशोधनवाद का दौर।

चौथे दौर की शुरुआत 1967 में होती है जब नक्सलबाड़ी किसान उभार ने संशोधनवाद–नवसंशोधनवाद के दौर पर पूर्ण विराम लगाकर एक नई शुरुआत की, पर यह शुरुआत परवान न चढ़ सकी। 1970 में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मा.ले.) का गठन हुआ जो शुरु से ही वामपंथी दुस्साहसवाद के भटकाव का शिकार रही।

मार्क्सवादी–लेनिनवादी शिविर में संकीर्णतावादी कठमुल्लेपन के कारण भारतीय समाज के चरित्र–निर्धारण और कार्यक्रम के प्रश्न पर कभी सुसंगत ढंग से बहस नहीं चली। जिन संगठनों ने ''वामपंथी'' दुस्साहसवाद का विरोध किया, वे भी क्रान्तिकारी जनदिशा के अमल को सुसंगत ढंग से विकसित नहीं कर सके और जनवादी केन्द्रीयता पर आधारित सही बोल्शेविक ढांचा खड़ा कर पाने में वे भी असफल रहे।

विगत तीन दशकों के दौरान कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी शिविर लगातार फूट–दर–फूट का शिकार होता रहा। नई सच्चाईयों को कार्यक्रम–सम्बन्धी अपनी समझ के पुराने फ्रेम में ठूंसने की कोशिशों में नये–नये ग्रुप नई–नई अवस्थितियों के साथ अस्तित्व में आते रहे और विलुप्त होते रहे। इनमें से कुछ ने जाति और राष्ट्रीयता जैसे प्रश्नों पर नितांत गैरमार्क्सवादी अवस्थितियां अपनाईं।

कुछ ठेठ आतंकवादी कार्रवाईयों में लगे रहे। कुछ गम्भीर संशोधनवादी भटकाव के शिकार हुए और कुछ तो **भाकपा माले (लिबरेशन)** की तरह सीधे भाकपा-माकपा की कतार में जा खड़े हुए। कुछ संगठनों ने क्रान्तिकारी जनदिशा को अपनाने की बात तो की और कार्यक्रम के प्रश्न पर भी पुनर्विचार की शुरुआत की, पर व्यवहार में वे न तो संगठन का सही बोल्शेविक ढांचा खड़ा कर सके, न ही सामाजिक प्रयोगों के व्यवहार में उतर सके और कालान्तर में अकादमिकतावाद और सामाजिक जनवादी भटकावों के शिकार होकर रह गये।

विचारधारात्मक कमजोरी के कारण ही **माओ** की मृत्यु के बाद चीन में हुई पूंजीवादी पुनर्स्थापना ने कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी शिविर में भी विभ्रम का-सा माहौल पैदा कर दिया। और विचारधारात्मक कमजोरी के ही कारण पूर्वी यूरोप और सोवियत संघ में संशोधनवाद के दुर्गों के ढहने के बाद कुछ कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों को भी मायूसी हुई, हालांकि वे सिद्धान्तरूप में उन्हें पूंजीवादी देश मानते आये थे।

एक नई शुरुआत के लिए जरूरी है विगत तीन दशकों के बिखराव के बुनियादी कारणों को समझना

आज हमारा मानना है कि विगत तीन दशकों के इतिहास ने साबित कर दिया है कि कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी शिविर में फूट-दर-फूट के लम्बे सिलसिले के कारण परिधिगत नहीं बल्कि बुनियादी हैं।

इन कारणों की सुसंगत समझदारी के आधार पर ही अखिल भारतीय स्तर पर नये सिरे से सर्वहारा वर्ग की एक क्रान्तिकारी पार्टी के गठन और निर्माण की प्रक्रिया शुरू की जा सकती है।

इस सिलसिले में **पहला प्रश्न** विचारधारा की समझ का है – सर्वहारा क्रान्ति के विज्ञान की सही समझ का है।

दूसरा प्रश्न आर्थिक नवउपनिवेशवाद के दौर में दुनिया के अन्तरविरोधों को समझने का है, एशिया-अफ्रीका, लातिन अमेरिका के देशों में आये बदलावों को समझने का है और इस विश्व-परिप्रेक्ष्य में भारतीय क्रान्ति की मंजिल को समझने का है।

इसके बाद **तीसरा अहम प्रश्न** सांगठनिक ढांचे का और सही सांगठनिक कार्यप्रणाली का प्रश्न है। एक सही बोल्शेविक संगठन वही हो सकता है जो पूंजीवादी राज्यसत्ता के विरुद्ध निर्णायक संघर्ष में सक्षम हो। एक सही बोल्शेविक संगठन वही हो सकता है जो जनवादी केन्द्रीयता पर आधारित हो।

विगत तीन दशकों के दौरान के प्रयासों ने सिद्ध कर दिया है कि मौजूदा कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठनों की एकता की प्रक्रिया से एक सर्वभारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का गठन नहीं हो सकता। कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी शिविर की कतारों में ही आज बहुसंख्यक कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी कार्यकर्ता मौजूद हैं। पर इस शिविर के संघटक संगठनों की संरचना वैज्ञानिक अर्थों में क्रान्तिकारी नहीं रह गई है और नेतृत्व के एक बड़े हिस्से में अवसरवादी प्रवृत्तियां व रुझानें प्रभावी हो रही हैं।

पार्टी-निर्माण व पार्टी-गठन की प्रक्रिया नये सिरे से शुरू करनी होगी

अब भारतीय सर्वहारा आन्दोलन का एक नया दौर शुरू हो चुका है, जब 1967 या 1970 की पुनरावृत्ति के बजाय पार्टी-निर्माण व पार्टी-गठन की प्रक्रिया नये सिरे से शुरू करनी होगी।

इसी आधार पर हमारा मानना है कि अब भारतीय सर्वहारा आन्दोलन का एक नया दौर शुरू हो चुका है, जब **1967 या 1970 की पुनरावृत्ति के बजाय पार्टी-निर्माण व पार्टी-गठन की प्रक्रिया नये सिरे से शुरू करनी होगी।**

इस नये दौर में, नये सिरे से पार्टी-निर्माण व पार्टी गठन की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के लिए अखिल भारतीय स्तर पर एक क्रान्तिकारी मजदूर अखबार की वही भूमिका बन सकती है, जैसी इस सदी की शुरुआत में रूस में 'इस्क्रा' ने निभाई थी।

पार्टी-गठन की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के लिए संजीदगी के साथ सामाजिक प्रयोगों में लगे क्रान्तिकारी ग्रुपों के बीच संवाद-बहस और एकता की प्रक्रिया को आगे बढ़ान जरूरी है, पर यह प्रक्रिया भी सार्थक तभी बन सकेगी जब मजदूर वर्ग, और मुख्यत: औद्योगिक सर्वहारा वर्ग के भीतर एक क्रान्तिकारी मजदूर अखबार के जरिए शिक्षा, प्रचार एवं संगठन के काम को तेज कर दिया जाये, उनके बीच मार्क्सवादी अध्ययन-मण्डलों का गठन किया जाये, बुर्जुआ व संशोधनवादियों के वर्चस्व वाले ट्रेड यूनियनों में क्रान्तिकारी कोशिकाएं एवं केन्द्रक बनाये जायें और इसतरह कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी कतारों में सर्वहारा वर्ग के भीतर से नई भरती की जाये तथा क्रान्तिकारी शिविर में नया रक्त-संचार किया जाये।

औद्योगिक सर्वहारा वर्ग के अतिरिक्त यही प्रक्रिया गांव के गरीबों के बीच भी चलानी होगी और विश्वविद्यालयों-कालेजों के छात्रों में भी।

नये सर्वहारा नवजागरण और प्रबोधन के इस दौर में सांस्कृतिक-बौद्धिक मोर्चे पर कार्यों का महत्वपूर्ण विचारधारात्मक महत्व है, जिनकी उपेक्षा कतई नहीं की जा सकती। सत्ताधर्मी ''प्रगतिशीलता'' के मौजूदा घटाटोप से अलग संस्कृति के निर्माताओं की नई कतारें सुसज्जित करनी होंगी जिन्होंने तहेदिल से जनता का पक्ष चुना हो और उसकी मुक्ति के स्वप्नों और संघर्षों से खुद को जोड़ने के लिए तैयार हों।

हम एक बार फिर, नये वर्ष के अवसर पर अपने इस विश्वास को दुहराना चाहते हैं कि आने वाली सदी नई समाजवादी क्रान्ति के प्रचण्ड तूफानों की सदी है। विश्व पूंजीवाद की यह चरम आक्रामकता उसके चरम सीमा तक विकसित असाध्य अन्तकारी रोगों की उपज है। माओ त्से-तुङ की यह भविष्यवाणी एकदम वस्तुपरक प्रतीत हो रही है कि आने वाले पचास से सौ वर्षों का समय ऐसे प्रचण्ड तूफानों का समय होगा जैसा दुनिया ने पहले कभी नहीं देखा। इसके स्पष्ट पूर्वसंकेत दुनिया के अलग-अलग कोनों से मिलने भी लगे हैं। ●

बहस के लिए

गैर-सरकारी स्वयंसेवी संगठनों और दाता एजेंसियों का असली चरित्र

तीसरा क्षेत्र (थर्ड सेक्टर) :पूंजीवाद के एक सुरक्षा-कवच के रूप में

जोन रोयलोव्स

व्यवस्था-परिवर्तन की लड़ाई को आगे बढ़ाने की इच्छा रखने वालों को इस बात पर बारीकी से गौर करना चहिए कि वे कौन-कौन सी चीजें हैं जो वर्तमान व्यवस्था को टिकाये हुए हैं। पूंजीवाद अगर अपनी तमाम कमजोरियों और बहादुराना प्रतिरोध संघर्षों के बावजूद धराशायी नहीं हो पा रहा है तो उसका एक कारण यह "मुनाफारहित क्षेत्र"('नॉन प्रॉफिट सेक्टर') भी है। फिर भी पूंजीवाद के आलोचक इस क्षेत्र की "लोकहितैषी" पूंजी, इसके निवेश और इसके वितरण को आमतौर पर नजरअंदाज कर देते हैं। इस विषय पर किये जाने वाले अधिकांश अध्ययनों के लिए यही मुनाफारहित क्षेत्र उदारतापूर्वक अनुदान भी देता रहता है, कुछेक अनुसंधानकर्ताओं ने इस विषय पर **मार्क्स** और **एंगेल्स** द्वारा द *कम्युनिस्ट मैनीफेस्टो* में की गयी इस टिप्पणी पर गौर भी किया है:

बुर्जुआ वर्ग का एक हिस्सा सामाजिक शिकायतों को दूर करने का इच्छुक बन जाता है, ताकि बुर्जुआ समाज के अस्तित्व को टिकाये रखना सुनिश्चित किया जा सके...। अर्थशास्त्री, मानवप्रेमी, मानवतावादी, मजदूर वर्ग की दशा सुधारने वाले कार्यकर्ता, खैराती संस्थाओं के संगठनकर्ता, जानवरों के प्रति निर्दयता रोकने वाली संस्थाओं के सदस्य, आत्मसंयम के दुराग्रही और भांति-भांति के ख्याली पुलाव पकाने वाले सुधारक इसी हिस्से से संबंधित होते हैं।

इस क्षेत्र के आकार और कार्यक्षेत्र के लिहाज से **संयुक्त राज्य अमेरिका** अपने आप में अद्वितीय है जो सालाना 400 अरब डॉलर से अधिक ही खर्च करता है। इसकी कर-मुक्त सम्पदा तो भारी रूप में बेहिसाब ही है: जमीन, इमारतें, उनकी साज-सज्जा, और चर्चों, निजी विश्वविद्यालयों एवं स्कूलों, अजायबघरों, चिड़ियाखानों, शैक्षणिक अस्पतालों, संरक्षण ट्रस्टों, ओपेरा-गृहों आदि में किये गये निवेशों पर जरा गौर तो करें।

यह मॉडल एक शताब्दी से भी अधिक समय से सर्वत्र निर्यात किया जा रहा है। वर्तमान में **संयुक्त राज्य अमेरिका** का मानव-प्रेम नेटवर्क संपूर्ण "मुनाफारहित" क्षेत्रों को **पूर्वी एशियाई** देशों में स्थापित करने की कोशिश में लगा हुआ है। "बाइबिल साम्राज्यवाद" इसका एक आरंभिक रूप था, 1920 और 1930 के दशकों के दौरान **लन्दन स्कूल ऑफ इकनॉमिक्स** में व्यापक **रॉकफेलरी** मिलावट के तौर पर इसका दूसरा रूप प्रकट हुआ।

कुछ को यह सब अच्छा काम कर रहे संगठनों की एक आकाशगंगा के रूप में दिखायी दे सकता है- लाखों-लाख प्रकाश दीपों के रूप में- लेकिन यह मुनाफारहित लोक भी सत्ता की ही एक व्यवस्था है जो कारपोरेट जगत के हितों की सेवा में समर्पित है।

यह मुनाफारहित क्षेत्र है क्या? **संयुक्त राज्य अमेरिका** में, इसके अन्तर्गत चर्च, निजी स्कूल और विश्वविद्यालय, सांस्कृतिक संस्थाएं, जनमत समूह (एडवोकेसी ग्रुप), राजनीतिक आन्दोलन, अनुसंधान संस्थान, खैराती-संस्थाएं और फाउण्डेशन शामिल हैं। इनमें से एक श्रेणी खासतौर से गौरतलब है: इसके अन्तर्गत वे संगठन आते हैं जो **इंटरनल रेवेन्यू कोर्ट** के सेक्शन 501 (सी) (3) के अधीन संचालित हैं। ये परोपकारी संगठन है। जिनको प्राप्त होने वाला धन करमुक्त होता है, और इनको दान देने वाला भी दान की रकम के अनुरूप कर में रियायत प्राप्त कर लेता है। आमतौर पर मात्र ये ही ऐसे संगठन हैं जिन्हें फाउण्डेशन अनुदान प्राप्त होता है। इसके एवज में, इनकी राजनीतिक तरफदारी पर अंकुश लगा होता है और ये चुनाव अभियान में भाग नहीं ले सकते। ये शेयरधारकों को मुनाफे का वितरण भी नहीं कर सकते।

फिर भी ऐसा नहीं है कि इस क्षेत्र में सभी के सभी अहानिकर रूप से व्यवस्था की रक्षात्मक गतिविधियों तक ही सीमित हैं, इनमें से कुछ स्वतंत्र संगठन भी हैं, लेकिन ये आमतौर पर दीन-हीन और गुमनाम ही हैं। बहरहाल, ज्यादातर संगठन आपस में और बड़े कारपोरेशनों के साथ अपनी फण्डिंग, अपनी निवेशित परिसम्पत्तियों, तकनीकी सहयोग, एक-दूसरे को अन्तर्बन्धित करने वाले निदेशालयों, तथा **इण्डिपेण्डेण्ट सेक्टर** और **काउन्सिल ऑन फाउण्डेशन** जैसे शीर्षस्थ संगठनों के मार्फत जुड़े होते हैं।1

इस मुनाफारहित क्षेत्र के व्यापार संगठन के तौरपर **इण्डिपेण्डेण्ट सेक्टर** की स्थापना 1980 में हुई। इसका बजट 50 लाख डॉलर का है, तथा इसकी सदस्य-संख्या 800 है (नवम्बर 1988 की स्थिति के अनुसार) जिसमें **एटी एण्ड टी फाउण्डेशन, आगा खान फाउण्डेशन, अमेरिकन एसोसिएशन ऑफ कम्युनिटी एंड जूनियर कालिजेज, अमेरिकन एसोसियेशन ऑफ यूनिवर्सिटी वीमेन, बी नाई बी रिथ इंटरनेशनल, बॉय स्काउट्स ऑफ अमेरिका, कोअर्स फाउण्डेशन, इन वाइरॅन मेंटल लॉ इंस्टीट्यूट, मेक्सिकन-अमेरिकन लीगल डिफेन्स एंड एड्यूकेशनल फंड, मदर्स अगेन्स्ट ड्रंक ड्राइविंग, एनए ए सी पी लीगल डिफेंस एंड एड्यूकेशनल फंड, नेशनल ऑड्यूबॉन सोसाइटी, सिएरा क्लब और वर्ल्ड वाइल्ड लाइफ फाउण्डेशन** शामिल हैं। **संयुक्त राज्य अमेरिका** में कोई 1500 से अधिक ऐसे फाउण्डेशन हैं जो मुनाफाखोर **कारपोरेशनों** से संबद्ध हैं, और जो परम्परागत खैराती संस्थाओं एवं फाउण्डेशनों के साथ मिलकर मुनाफाखोरी के इस विशाल जहाज को चलाने का काम करते हैं।

लेकिन यह क्षेत्र पूंजीवाद के एक सुरक्षा-कवच के रूप में काम कैसे करता है?

पहली बात तो यह है कि मुनाफारहित गतिविधियां मुनाफाखोर क्षेत्र के लिए पूंजी के संकेन्द्रण और वितरण में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। उदाहरण के तौर पर, मुनाफारहित अस्पताल के ट्रस्टियों की परिषदों में व्यापारी, बैंकर, स्थायी परिसम्पत्तियों के विकासकर्ता, बीमा अधिकारी आदि ही हावी होते हैं। इनके द्वारा लिये जाने वाले कारोबार विस्तारीकरण के फैसले क्षेत्र विशेष की अर्थव्यवस्था में एक भारी बढ़त की गुंजाइश तो पैदा करते ही हैं, साथ ही अलग-अलग कारपोरेशनों की भी चांदी हो जाती है। इसके अतिरिक्त, फाउण्डेशन और अन्य खैराती संस्थाएं स्टॉकों और बांडो में अपनी परिसम्पत्तियों का निवेश भी करती हैं और ऐसा करके वे दूसरी संस्थाओं के निवेशकर्ताओं के साथ अपनी शक्तिमत्ता का इजहार भी करती हैं।

दूसरी बात यह है कि मुनाफारहित गतिविधियां ऐसे माल और सेवाएं मुहैया करती हैं, जिन्हें बाजार द्वारा मुहैया नहीं कराया जा सकता, मसलन बेघरों के लिए आवास से लेकर ओपेरा और **बी बी सी टीवी** ड्रामा तक। इनमें से आखिर वाली चीजें अच्छी-खासी अहमियत रखती हैं,

कारण कि बुद्धिजीवियों का इधर–उधर बहकाव घोर कंगाली से कहीं अधिक खतरनाक सिद्ध हो सकता है।

मुनाफारहित लेकिन जरूरी गतिविधियां सरकारों द्वारा भी संचालित की जाती हैं, जैसा कि तमाम देशों में हो रहा है। लेकिन दान, संस्कृति, शिक्षा और सुधार–कार्य के निजीकरण के भी कई फायदे हैं। अगर लोकहितैषी पूंजी पर टैक्स लगाया जाता है तो इस पर राजनीतक विवाद उठ खड़ा हो जाता है। दूसरी तरफ, मुनाफारहित संगठन स्वयं–निर्मित परिषदों द्वारा संचालित होते हैं, और उनके निजी नीति निर्धारण पर कोई जनतांत्रिक दखल नहीं कर सकता। उनके स्टाफ–सदस्यों को कोई नागरिक अधिकार या सुरक्षा नहीं होती, वे मानव–प्रेम और उसकी प्रत्यक्ष आलिंगनबद्धता पर ही निर्भर होते हैं। लगभग सारे के सारे संगठन फंड के लिए कारपोरेशनों और फाउण्डेशनों का मुंह जोहते रहते हैं। छोटी–छोटी दान–राशियां या पावतियां किसी बड़े काम के लिए शायद ही पूरी पड़ जाती हैं, और उन्हें एकत्र करने में भी काफी ऊर्जा का अपव्यय हो जाता है। इसीलिए **एन ए ए सी पी लीगल डिफेंस एण्ड एड्यूकेशन फंड** तक को भी 1954 में **ब्राउन** बनाम **बोर्ड ऑफ एड्यूकेशन** के मामले में कानूनी कार्यवाही हेतु धन प्राप्त करने के लिए फाउण्डेशन पर भारी रूप से निर्भर होना पड़ा था।

इन मुनाफारहित कार्यवाहियों में से कुछ का संपादन तो राजनीतिक पार्टियों, यूनियनों या सामाजिक आंदोलनों द्वारा कर दिया जाता है। सारी दुनिया में कहीं भी देखें, राजनीतिक पार्टियां युवा समूहों, दैनन्दिन देख–भाल केन्द्रों, शिशु शिविरों तथा दूसरी खैराती एवं शैक्षणिक गतिविधियों का संचालन करती रहती है। किसी को ऐसा लग सकता है कि एक जनतांत्रिक व्यवस्था में यह खासतौर से उचित ही है कि राजनीतिक पार्टियां समाज–सुधार और सार्वजनिक नीतिगत अनुसंधान एवं जनमत के बुनियादी पथ–प्रदर्शक बनें। फिर भी स्थिति यह है कि **संयुक्त राज्य अमेरिका** में जनमत और सुधार कार्यों पर ज्यादातर फाउण्डेशन समर्थित मुनाफारहित क्षेत्र का ही कब्जा है।

इस मुनाफारहित तीसरे क्षेत्र का एक और दूसरा सुरक्षात्मक कार्य धनवानों के बेटों–बेटियों को रोजगार मुहैया करना है जो इसके बगैर अन्य किसी भी वर्ग के बेटों–बेटियों की भांति ही बेरोजगार और विद्रोही बनकर विरोधी और सिरदर्द बन जाते। तब फिर क्यों न ढेरों तैरते सोने के साथ संभावित और वास्तविक 'परेशानी पैदा करने वालों' को मिलाकर एक ऐसा "शोरबा" तैयार किया जाये जो दुखते गलों और दुखते सिरों को बड़ी आसानी से रास आ जाये और उन्हें राहत दे सके।

इन संगठनों की गैर–सरकारी और गैर–पक्षधर स्थिति परोपकारिता और स्वतंत्रता का एक आभामंडल उत्पन्न करती है, और यही तो उनकी अन्तर्राष्ट्रीय गतिविधियों के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होता है। उनका भौगोलिक एवं कारोबारी क्षेत्र अत्यंत व्यापक है, जिसमें अपने मानव–प्रेम की घुसपैठ कराने में उन्हें किसी उल्लेखनीय प्रतिरोध का सामना शायद ही करना पड़ता है। आज उनकी ताजा गतिविधियां हैं: पूरे **लातिन अमेरिका** में **ईसाई जनतांत्रिक** पार्टियों, यूनियनों और जमीनी संगठनों की मदद करना, **पूर्वी यूरोप** और पूर्व **सोवियत संघ** में एक मुनाफारहित क्षेत्र निर्मित करना, **दक्षिण अफ्रीका** में एक गैर–नस्ली, गैर–समाजवादी नुस्खे की पेशकश करना, और **तीसरी दुनिया** में शोषण की आलोचना करने वालों के जवाब में "टिकाऊ" विकास की मुहिम चलाना। स्वयं **राष्ट्रसंघ** भी, अपने जन्म और विकास के चरित्र के अनुरूप, बहुराष्ट्रीय मानव–प्रेम पर काफी जोर दे रहा है।

इन मुनाफारहित व्यवस्था का स्वरूप तब और भी स्पष्ट हो जाता है जब हम इसके नियोजन और फंड संबंधी हथकंडों यानी इसके फाउण्डेशनों पर गौर करते हैं। ये मनोरंजन पर खर्च करते हैं, कलाकारों को तुष्ट करने पर खर्च करते हैं, जीव–रसायनी अनुसंधान पर खर्च करते हैं और दैनंदिन खैरात बांटते हैं। पर इनकी सबसे दिलचस्प कवायदें सामाजिक सुधार संचालित करने में दिखायी देती है ये और इनके ईजाद किये गये नुस्खे राजनीतिक परिवर्तन के लिए विचार सप्लाई करते हैं। ऐसे भारीभरकम बहुउद्देशीय फाउण्डेशन सबसे पहले इस बीसवीं शताब्दी के आरंभ में उठ खड़े हुए, और जी–जान से **प्रगतिवाद** और सामाजिक विज्ञानों के विकास में जुट गये। कुख्यात लुटेरे अभिजात–तंत्र के नव–धनपतियों को ये फाउण्डेशन ढेरों मकसदे पूरे करने वाले उपकरण नजर आने लगे। पहला यह कि इनसे उन्हें अपनी बेशुमार दौलत को सुव्यवस्थित कर लेने का एक बढ़िया तरीका मिल गया। दूसरा यह कि इनके जरिये मानव–प्रेम की दुहाई देकर भारी सामाजिक नियंत्रण हासिल कर लेने की सुविधा मिल गयी। **जॉन डी रॉकफेलर** ने "एक बड़ा फाउण्डेशन स्थापित करने" का फैसला कर लिया। यह फाउण्डेशन अकेले केन्द्रीय नियंत्रण करने वाली एक ऐसी कंपनी के रूप में स्थापित होने वाला था जो किसी को तथा अन्य सभी प्रकार के लोकोपकारी संगठनों को वित्तीय सहायता देने, और इस प्रकार आवश्यक रूप से उन्हें अपनी आम निगरानी के अधीन कर लेने वाला था।[2] और तीसरा मकदस यह था कि फाउण्डेशनों के जरिये सार्वजनिक संबंधों को बेहतर बनाया जा सके, कई लोगों का यह भी मानना था कि **रॉकफेलर फाउण्डेशन लुडलो नरसंहार** के कलंक को मिटाने के लिए खड़ा किया गया।

प्रथम विश्वयुद्ध से पहले के काल में, फाउण्डेशनों ने जन–साधारण की माली हालत में सुधार करने का काम हाथ में लिया और इसी के साथ–साथ ऐसे बुद्धिजीवियों का सहयोग भी लिया जो अक्सर समाजवादी सहानुभूति जताते रहते थे। इन फाउण्डेशनों ने एक ऐसी विचारधारा का प्रचार–प्रसार किया जिसके अनुसार समाजिक बुराइयों को ऐसी समस्याएं माना गया जो समाज–वैज्ञानिकों द्वारा हल की जा सकती थीं। इसमें **वर्ग** संघर्ष, या यहां तक कि हितों के टकराव को तनिक भी तवज्जोह नहीं दी गयी।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद, नीति–निर्धारण प्रक्रिया में फाउण्डेशनों का हस्तक्षेप नाटकीय ढंग से बढ़ चला। उदाहरण के तौर पर, राजनीतिक उपद्रव के भय से निजात पाने की रणनीति **फोर्ड फाउण्डेशन** से ली गयी। 1949 की इसकी **रिपोर्ट** में यह दलील दी गयी कि में साम्यवाद की चुनौती का सामना करने के लिए अपनी व्यवस्था को मजबूत बनाना होगा। इसके तहत जो समस्याएं गिनायी गयीं वे थीं **गृहयुद्ध** का बाकी बचा काम, राजनीतिक भागीदारी की कमी और अव्यवस्थित व्यक्तियों की देखरेख। **फोर्ड** की आरंभिक रणनीति **सुप्रीम कोर्ट** के फैसलों के लिए होने वाले मुकदमों के खर्च की फण्डिंग करने की थी, ताकि इस सुविधा को पा कर **काले लोग** कानूनी तौर पर बराबरी हासिल कर सकें, फौजदारी अदालती व्यवस्था में सुधार किया जा सके और विधायिकाओं को फिर से बहाल किया जा सके।

1960 के दशक के दौरान, तेजी से उठ खड़े हो रहे विरोधी आंदोलनों से निपटने के एक उपाय के तौर पर, **फोर्ड फाउण्डेशन** ने **जनहित कानून** के निर्माण की दिशा में एक अग्रणी भूमिका अदा की। इस काननू के तहत कानूनी संस्थाएं गठित की गयीं, कानून के स्कूलों में चिकित्सकीय कार्यक्रम चालू किये गये, विशिष्टीकृत कानूनी समीक्षाएं की जाने लगीं और एक उपयुक्त विचारधारा लागू की गयीं। मुकदमेबाजी से संबंधित जो संगठन उठ खड़े हुए वे थे **वीमेन्स लॉ फंड, इनवाइरनमेंटल डिफेंस फंड, नेचुरल रिसोर्सेज डिफेंस काउसिंल** और ढेर सारे **लीगल डिफेंस एंड एड्यूकेशन फंडस (एल डी ई एफस)** जिनमें प्योरटोरिको के एल डी ई एफ, मेक्सिको–अमेरिका के एल डी ई एफ और **नेटिव अमेरिका** के **एल डी ई एफ** भी शामिल थे। **नेशनल एसोसिएशन फॉर द एडवांसमेंट ऑफ कलइ पीपुल लीगल डिफेंस एंड एड्यूकेशन फंड** तथा **अमेरिकन सिविल लिबर्टीज यूनियन** जैसे पुराने संगठन भी फाउण्डेशन की फडिंग पर आश्रित हो गये।

कांफ्रेंसों, रिपोर्टों, और प्रायोजित अनुसंधानों एवं किताबों के जरिये प्रचारित–प्रसारित की जाने वाली फाउण्डेशन–विचारधारा का मानना है कि उग्रपरिवर्तनवादी विरोध–प्रदर्शन बहुलवाद की अपर्याप्तताओं के सूचक हैं। सुविधावंचित समूहों

मदर टेरेसा और उनके उत्तराधिकारियों का "मिशन" : सेवा का सच!

● भूपेश कुमार सिंह

पिछले वर्ष, भारत रत्न, नोबेल पुरस्कार विजेता **मदर टेरेसा** के अन्तिम समारोह में उन्हें श्रद्धांजलि देने दुनिया भर की विभूतियां और राष्ट्राध्यक्ष गण कलकत्ता में उमड़ पड़े। महीनों तक अन्तरराष्ट्रीय मीडिया में मदर की सादगी, सौम्यता, सेवा, समर्पण और उनके उदात्त मिशन की महानता की चर्चा रही।

मदर टेरेसा एक विशाल संस्था की अधिष्ठात्री और सत्तातंत्र द्वारा सुपूजित थीं। जाहिरा तौर पर उनकी जगह लेने वाली **सिस्टर निर्मला** भी अब एक काफी बड़ी हस्ती हैं। मदर टेरेसा की मृत्यु के बाद **'टाइम्स ऑफ इण्डिया'** ने **सिस्टर निर्मला** की प्रेस वार्ता का एक समाचार 13 सितम्बर, 1997 को प्रकाशित किया (**'पावर्टी इज़ गिफ्ट ऑफ गॉड', सेज़ निर्मला**)। यहां पहले हम इस समाचार का अविकल अनुवाद दे रहे हैं:

कलकत्ता: मिशनरीज ऑफ चैरिटी की सुपीरियर जनरल सिस्टर निर्मला ने यहां शुक्रवार को अपने पहले पत्रकार सम्मेलन में कहा, ''गरीबी ईश्वर का उपहार है और यह हमेशा बनी रहेगी। उन्होंने स्पष्ट किया कि यदि दुनिया से गरीबी का उन्मूलन हो जाये तो ''हम बेरोजगार हो जायेंगे।''

'मिशनरीज ऑफ चैरिटी' के काम के बारे में पूछे जाने पर सिस्टर निर्मला ने, जो इसी वर्ष मार्च में मदर टेरेसा की उत्तराधिकारिणी बनी हैं, बताया, ''हम गरीबों की सिर्फ सहायता कर सकते हैं।'' गरीबी ईश्वर का उपहार है, इस कथन का स्पष्टीकरण पूछे जाने पर कहा कि गरीबों को ''अपनी गरीबी का सही ढंग से इस्तेमाल करना चाहिए।''

गरीबी के इस्तेमाल का सही रास्ता यह है कि ''वे अपनी गरीबी को स्वीकार करें और जो कुछ भी ईश्वर ने उन्हें दिया है उससे सन्तुष्ट रहें,'' उन्होंने इसके आगे कहा।

गरीबी को स्वीकार करने के बारे में पूछे जाने पर सिस्टर निर्मला ने कहा कि गरीबों को ''कलपना-कराहना नहीं चाहिए।'' सरकार के गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम और उसके बारे में मिशनरीज ऑफ चैरिटी की राय पूछे जाने पर सिस्टर निर्मला ने कहा कि यह सरकार का मामला है और बताया कि यदि गरीबी खतम हो जायेगी तो वे अपनी नौकरियां गंवा बैठेंगी।

सिस्टर निर्मला का कहना था कि मदर टेरेसा के जरिए, ईश्वर ने मिशनरीज आफ चैरिटी के रूप में गरीबों की सेवा के साधन प्रदान किये हैं। उन्होंने कहा कि गरीबी हमेशा बनी रहेगी और मिशनरीज ऑफ चैरिटी भी हमेशा गरीबों की सेवा करती रहेगी।

यह पूछे जाने पर कि मिशनरीज ऑफ चैरिटी अस्पताल क्यों नहीं बनवाती है, सिस्टर निर्मला ने स्पष्ट किया कि यह उनका काम नहीं है। उनका मकसद सिर्फ सन्त बनना है। मदर टेरेसा ने कहा था कि मिशनरीज ऑफ चैरिटी का उद्देश्य मदर चर्च के लिए सन्त उपलब्ध कराना है और गरीबों की सेवा इसका साधन है।...

'मिशनरीज ऑफ चैरिटी' की 'फण्डिंग' के बारे में पूछे गये प्रश्नों का उत्तर देते हुए सिस्टर निर्मला का रवैया रक्षात्मक और टालने वाला था। उन्होंने कहा कि लोग जब पैसा देते हैं तो यह ईश्वर के प्यार के लिए होता है। ''हम नहीं जानते कि यह कहां से आता है,'' उन्होंने कहा।...

उपरोक्त साक्षात्कार अपने आप में ही काफी कुछ स्पष्ट करने वाला है। वैसे इतना स्पष्ट है कि सिस्टर निर्मला अभी इस पूरे खेल की कुशल खिलाड़ी नहीं बन सकी हैं, तभी उनका उपरोक्त साक्षात्कार न केवल मिशनरीज ऑफ चैरिटी की अबतक उत्पादित-विनिर्मित छवि को ध्वस्त करता है, वरन् ''लाभहीन क्षेत्र'' (नॉन-प्रॉफिट सेक्टर) के पीछे क्रियाशील पूंजी के कुत्सित षड्यंत्र की ओर भी इंगित-सा कर जाता है।

साक्षात्कार से स्पष्ट है कि अगर सिस्टर निर्मला को लगे कि सेवा छोड़ किसी अन्य कार्यकलाप द्वारा सन्त भर्ती किये जा सकते हैं तो वे बेहिचक अपनी सेवा का धंधा छोड़ देंगी। यदि कोई संस्था सिर्फ अपने धंधे को चलाते रहने के लिए गरीबी जैसी अमानवीय दुरवस्था के बने रहने की कामना करती है तो उसके कार्य-कलापों को नि:स्वार्थ सेवा भला कैसे कहा जा सकता है? वास्तव में दया-करुणा से पूरित हृदय वाला कोई व्यक्ति क्या यह सोच सकता है कि दुनिया की आबादी का एक बड़ा हिस्सा भोजन, कपड़ों, दवा-इलाज की सुविधाओं से सिर्फ इसलिए वंचित बना रहे कि सेवा का उसका धंधा चलता रहे और वह बेरोजगार न हो। गरीबी को ईश्वरीय उपहार कहकर जब उसे स्वीकारने के उपदेश दिये जाते हैं तो उसका लक्ष्य यही होता है कि गरीबों को धार्मिक चेतना के भुलावे में रखकर शोषकों के सामने सुलभ शिकार के रूप में प्रस्तुत किया जा सके और यह कि वे पूरी व्यवस्था को देख पाने और नष्ट कर पाने के लिए कभी क्रियाशील न हो सकें।

गरीबी की अपरिहार्यता के पक्ष में भांति-भांति के तर्क गढ़ने वाली सिस्टर निर्मला ने अपनी संस्था के आर्थिक स्रोतों के बारे में टालू रुख अपनाया। स्मरणीय है कि मदर टेरेसा के सामने भी जब यह प्रश्न आया कि वे साम्राज्यवादियों और यहां तक कि रक्तपिपासु तानाशाहों तक से सहायता क्यों लेती हैं, तो उन्होंने भी दो टूक शब्दों में कहा था कि उन्हें इससे कोई मतलब नहीं कि उनके मकसद में लगने वाले पैसे का स्रोत क्या है।

सच यह है कि गरीबी को मिटाना या बनाये रखना—दोनों ही किसी मदर टेरेसा, सिस्टर निर्मला या किसी मिशनरीज या सेवाव्रती सर्वोदयी, सन्त-महात्मा आदि के बस की बात नहीं है। गरीबी पूंजीवादी उत्पादन प्रणाली का—सुनिश्चित सामाजिक सम्बन्धों का उप-उत्पाद (बाइ-प्रोडक्ट) है। मिशनरीज ऑफ चैरिटी या सिस्टर निर्मला उसी विश्व-व्यवस्था का एक औजार मात्र हैं, जिसके अन्तर्गत पूंजी के मुख्य क्रीड़ांगन से परे सुदूर एशिया में भूमण्डलीय तंत्र के स्वामी भांति-भांति की संस्थाएं खड़ी करते हैं। इनमें से कोई संस्था गरीबों को भाग्यवाद का पाठ पढ़ाती है, कोई पूंजीवादी सुधारवाद का और कोई सुधारों की मांग वाले आन्दोलनों तक की रहनुमाई करके इसी व्यवस्था के 'सेफ्टीवॉल्व' और विभ्रम-उत्पादक मशीनरी का काम करती है। कुल मिलाकर इनका काम है जन-क्रान्तियों की चेतना के विकास के मार्ग में भांति-भांति से अवरोध उत्पन्न करना!

जोन रोयलोव्स के अनुसार, अपनी तमाम कमजोरियों और शक्तिशाली प्रतिरोध आन्दोलनों के बावजूद यदि पूंजीवाद ध्वस्त नहीं हुआ है तो इसके पीछे इसके लाभरहित क्षेत्र (नॉन-प्रॉफिट सेक्टर) यानी मिशनरीज व तमाम अन्य स्वयंसेवी संस्थाओं की सक्रिय भूमिका है। अकेले संयुक्त राज्य अमेरिका में इस क्षेत्र में 400 बिलियन डालर की पूंजी लगी हुई है। इसपर न कोई आयकर देना होता है, न ही इसका कोई हिसाब-किताब रखना होता है। इसमें राकफेलर और फोर्ड फाउण्डेशन के धन से लेकर अकिंचन नागरिकों द्वारा चर्च को दान में दिये सिक्के तक शामिल हैं। इस पूरे लाभरहित क्षेत्र का मुख्य उद्देश्य वस्तुत: पूंजीवादी सामाजिक-आर्थिक प्रणाली को बनाये रखना है।

लाभ रहित क्षेत्र की जो संस्थाएं शिक्षण संस्थानों-अस्पतालों आदि का (और भारत में मन्दिरों का भी) निर्माण करती हैं, वे आयकर मुक्त नियोजन द्वारा समाज में शक्तिशाली स्थान अर्जित करती हैं जो उनकी सकल पूंजी की शक्ति से इतर किस्म की होती हैं। साथ ही शिक्षण संस्थाओं के माध्यम से वे समाज के बौद्धिक तबके को भी प्रलोभित-नियंत्रित करती हैं। इस कोटि के छद्म कल्याणकारी संस्थान समाज के वंचित तबकों में से कुछ को वे सेवाएं और सुविधाएं उपलब्ध कराते हैं जो अन्यथा बाजार-व्यवस्था उन्हें नहीं दे सकती थी। इससे वंचित आबादी की चेतना कुन्द करने का काम किया जाता है। ये संस्थान पूंजीवाद की दूसरी सेवा यह करते हैं कि ये शासक वर्गों की नाकारा संतानों को जो पूंजीवाद के लिए अनुपयोगी सिद्ध होते हैं तथा अन्य वर्गों के असन्तुष्ट एवं विद्रोह की संभावना से युक्त लोगों को सेवायोजित कर एक ऐसी औषधि बनाते हैं जो पूंजीवाद का नजला-जुकाम ठीक करती है।

जैसे **काले लोगों, चिकामो** समुदाय, महिलाओं, बच्चों एवं गरीबों को उनके अधिकार दिलाने में मदद किये जाने की जरूरत है। गौरतलब है कि यहां गरीबों को एक अलग अल्पसंख्यक समूह माना जाता है। और गरीबी, सैन्यवाद, नस्लवाद तथा पर्यावरणीय विनाश को पूंजीवादी व्यवस्था के बाइप्रॉडक्ट मानने वाले किसी भी विचार को सिरे से ही खारिज कर दिया जाता है।

फाउण्डेशनों ने अपने सुविचारित, व्यावहारिक लक्ष्यों को हासिल करने की दिशा में आगे बढ़ने हेतु वर्तमान में कार्यरत संगठनों में भी खूब पैसा लगाया है। परन्तु वैसे संगठनों को एक पाई भी नहीं दिया है जो यह चाहते हैं कि **संयुक्त राज्य अमेरिका** के **काले लोग** भी अपने आप को विश्वव्यापी उपनिवेशवाद-विरोधी जन-उभारों का हिस्सा समझें। अलबत्ता **नेशनल अर्बन लीग, एन ए ए सी पी, एन ए ए सी पी/ एल डी ई एफ,** और **सदर्न रिजनल कांउसिल** जैसे नरमपंथी काले लोगों के संगठनों की फडिंग की गयी है: इसके उग्रपरिवर्तनवादी समूहों को या तो नजरंदाज कर दिया गया है या दमित।

फाउण्डेशन ऐसे गठबंधनों को प्रोत्साहित करते हैं जो यथास्थिति बनाये रखने के पक्षधर हैं। इसी नीति के तहत 1967 में, नागरिक अधिकार संगठनों, फाउण्डेशनों, और बड़े कारपोरेशनों के बीच एक गठबंधन के रूप में **नेशनल अर्बन कोलीशन (एन यू सी)** की स्थापना की गयी। इसके पहले कारपोरेशनों का मानव-प्रेम आमतौर पर जनसंपर्कों, उत्पाद-प्रोत्साहन, कर्मचारी प्रशिक्षण और इसी तरह के अन्य उद्देश्यों तक ही सीमित था। परन्तु 1960 के दशक की शुरुआत होते ही अधिकांश बड़े कारपोरेशनों ने ऐसे फाउण्डेशन गठित कर लिए जो **फोर्ड, कारनेगी, रॉकफेलर** आदि के सुरताल में पूंजीवाद के पक्ष में *आमतौर* पर सहयोग करने लगे। वे **इण्डिपेण्डेण्ट सेक्टर** के सदस्य भी बन गये। वैसे कारपोरेट फंडों के जनकल्याणकारी इस्तेमाल की वैधता पर स्टॉकधारक तो अक्सर सवाल उठाते रहते हैं, परन्तु वामपंथी इस "मुनाफारहित क्षेत्र" के इस नये पहलू के महत्व को आमतौर पर नजरअंदाज ही करते रहते हैं।

फोर्ड फाउण्डेशन के नेतृत्व में **एन यू सी** का एक कार्यक्रम **कम्युनिटी डेवलपमेंट कारपोरेशनों** की स्थापना करना था, जो "**काले** लोगों की सत्ता" के नारे को एक स्वीकार्य "**काले** लोगों के पूंजीवाद" के नारे के रूप में तब्दील कर देने के एक प्रयास के रूप में था। इस तरह के उपक्रम, जो सरकार से लेकर, कारपोरेशनों और फाउण्डेशनों तक वित्तीय गठबंधन करते हैं, कंगाली-बदहाली वाले क्षेत्रों में- चाहे वे गोरों के हो या कालों के, शहरी हों या ग्रामीण- छोटे-छोटे व्यवसाय और उद्योग चालू कर देते हैं। हालांकि ऐसे क्षेत्रों में उनके निवेश के लिहाज से उपलब्धि निहायत मामूली ही होती है, फिर भी उनकी उपलब्धि लोगों को आत्मतुष्ट और शांत बनाये रखने, नरमपंथी नेतृत्व पैदा करने और व्यक्तियों को सामाजिक रूप से गतिशील बनाने में तो देखी ही जा सकती है।

फाउण्डेशन-कारपोरेशन गठबंधन का एक दूसरा प्रोजेक्ट **अटलांटा** में **नॉन-वायलेंट सोशल चेंज** के लिए **मार्टिन लूथर किंग जूनियर केन्द्र** की स्थापना करना था। इसको बड़े-बड़े फाउण्डेशनों के साथ-साथ **फोर्ड मोटर कंपनी, अटलांटिक रिचफील्ड, लेवी स्ट्रास, अमोको, जनरल मोटर्स, ह्यूबलिन, कॉर्निंग, मोबिल, वेस्टर्न इलेक्ट्रिक, प्रॉक्टर एंड गैम्बल, यू एस स्टील, मॉन्सैंटो, मॉरगन गारंटी ट्रस्ट** आदि के कारपोरेट फाउण्डेशनों से भी वित्तीय सहायता प्राप्त हुई। अहानिकार कार्यक्रम जैसे दैनंदिन देखभाल केन्द्र, आवासीय पुनर्वास और **डॉ. किंग** का जन्मदिन कैसे मनाया जाये- इससे संबंधी सूचनाएं जुटाने के साथ-साथ दो और विस्मयकारी प्रोजेक्ट लिये गये। इनमें से पहला है **किंग** के **जन्मदिन** को सैनिक रीतिविधान के साथ सैनिक अड्डों पर मनाने की परंपरा डालना। और दूसरा है "द फ्री एंटरप्राइज सिस्टम: एन एजेंट फॉर नॉन-वॉयलेंट सोशल चेन्ज" शीर्षक से एक वार्षिक व्याख्यान माला का संयुक्त आयोजन करना।

दूसरे अल्पसंख्यक आंदोलनों को स्टैण्डर्ड वाशिंगटन लॉबी के सांचे में ढाल दिया गया है। **फोर्ड फाउण्डेशन** ने **साउथवेस्ट काउंसिल ऑफ लॅ रज़ा** और **नेशनल काउंसिल ऑफ लॅ रज़ा** की स्थापना की, जहां से एक बार चिकानो लोगों के **साउथवेस्ट** में उग्र आन्दोलन उठ खड़े हुए थे।

विरोध और समर्थन करने वाले संगठनों के लिए नेतृत्व संबंधी प्रशिक्षण और तकनीकी सहायता के कार्यक्रम भी व्यावहारिक लक्ष्यों पर जोर देते हैं। फाउण्डेशनों का दावा है कि उनके कार्यक्रम "बहुलवाद"(प्लूरलिज्म) को बढ़ावा देने के लिए हैं। परन्तु उनका मुख्य काम फाउण्डेशन-कारपोरेशन नेटवर्क को और विस्तृत और मजबूत बनाना ही होता है। कारण कि राजनीति में किसी भी रूप में जनता की भागीदारी और जनसाधारण पर जोर नहीं दिया जाता, और राजनीतिक बहस-मुबाहिसे पर फाउण्डेशन समर्थित नीतियों के विशेषज्ञ लगभग पूरी तरह अपना वर्चस्व बनाये हुए हैं।

बड़े-बड़े फाउण्डेशन हमेशा से अपने अन्तर्राष्ट्रीय हित रखते आये हैं। **द्वितीय विश्व युद्ध** से पहले उनकी विदेश नीति **अमेरिकी** सरकार से कहीं अधिक सक्रिय थी, जो **काउंसिल ऑन फॉरेन रिलेशन्स** जैसे संगठनों और **रॉकफेलर फाउण्डेशन** एवं **कारनेगी इनडाउमेंट** जैसे विदेश नीति के उत्कृष्ट *थिंक टैंकों* के मार्फत कार्यरत थी। **राष्ट्रसंघ** के विचार और फंड काफी हद तक फाउण्डेशन और रॉकफेलर परिवार के मानव प्रेम से ही नि:सृत होते हैं।

लातिन अमेरिका में चल रही अस्थिरता का स्वागत तो "हाई कॉप्स", **सी आइ ए** और सेना ने किया ही है, साथ ही ऐसे तमाम फाउण्डेशन-समर्थित प्रोजेक्टों द्वारा भी स्वागत किया गया है जो सीधे या परोक्ष रूप से इन मुनाफारहित क्षेत्र से फंड प्राप्त करते रहते हैं। ऐसी सहायता गैर-कम्युनिस्ट जमीनी संगठनों (खासतौर से "ईसाई जनतांत्रिक" संगठनों) को, **संयुक्त राज्य अमेरिका** के लिए भावी नेता प्रशिक्षित करने, तथा यूनिवर्सिटी कार्यक्रमों को संचालित करने के लिए एवं छात्रों को दी जाती है।

फाउण्डेशनों ने दुनिया के दूसरे भागों के लिए '**अमेरिकाज वाच**' जैसे संगठन भी खड़े किये हैं, जो सारे के सारे इस मूल अवधारणा के तहत काम करते हैं कि विद्रोह अंशत: इस कारण उठ खड़े होते हैं कि बहुतेरी सरकारें शायद अपनी बेढंगी चाल के कारण या अज्ञानता में या भ्रष्टाचार के चलते, मानवाधिकारों की कद्र नहीं करतीं। अत: **अमेरिकास वाच** अलग-अलग होने वाले मानवाधिकार-उल्लघंन की घटनाओं की ओर मीडिया और अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों का ध्यान आकर्षित करता रहता है। परन्तु यह इस बात पर कतई गौर नहीं करता रहता कि दमन, उत्पीड़न और विनाश सरकार की नीति के चलते हो रहा है, या जो तकनीकी सहायता कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं वे ही यातना की तकनोलॉजी का प्रसार किये जा रहे हैं।

पूर्वी यूरोप और **भूतपूर्व सोवियत संघ** में फाउण्डेशन, उदाहरण के तौर पर, **ईस्टर्न यूरोपियन कल्चरल फाउण्डेशन** लम्बे समय से व्यवस्था-विरोधियों की मदद करते आ रहे थे, तथा वहां के छात्रों एवं सरकारी अधिकारियों को प्रभावित करने के लिए आदान-प्रदान कार्यक्रम चला रहे थे। और जब कम्युनिष्ट (वस्तुत: संशोधनवादी-सं) सरकारों पर ग्रहण लगने लगा, तो अमेरिका के मुनाफारहित क्षेत्र ने सिर्फ इतना ही नहीं किया कि वहां अलग-अलग व्यक्तियों को अपने मुनाफारहित कारोबार से हरप्रकार की मदद देनी शुरू कर दी, बल्कि वहां अपनी छवि में एक पूरी दुनिया ही रच डालने का प्रयास शुरू कर दिया है। ऐसा वह इन देशों के संविधान लिखने, नागरिक कानूनों एवं विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में संशोधन करने, तथा पहले सरकारी जिम्मेदारियों के तहत पूरे किये जाते रहे खैराती, सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक कामों को अब प्रत्येक राष्ट्र में एक मुनाफारहित क्षेत्र की स्थापना के जरिये संपादित करने की गरज से अपने विशेषज्ञ भेजकर कर रहा है। अब इन उद्देश्यों के लिए परंपरागत फंडदाताओं के साथ **ज्यार्ज सोरोस** द्वारा गठित फाउण्डेशनों की एक पूरी फौज शामिल हो गयी है। इसके

साथ ही, **अमेरिकी** सरकार भी, अपने आप को इन फाउण्डेशनों की तर्ज पर ढालती हुई, 1983 में **अमेरिकी कांग्रेस** द्वारा गठित **नेशनल इनडाउमेण्ट फॉर डिमॉक्रसी** के मार्फत दूसरे देशों के राजनीतिक संगठनों को फंड प्रवाहित करने के काम में लग गयी है, और उन सारे कामों को खुले तौर पर कर रही है जिन्हें **सी आई ए** छिपे तौर पर करती है। मुनाफारहित क्षेत्र का यह नया करोबार बाजारीकरण के उस झटके को सहनीय बनाने की एक कोशिश के तौर पर है जिसने न सिर्फ बेरोजगारी और निराश्रयता पैदा की है, बल्कि तमाम महत्वपूर्ण सांस्कृतिक और सामाजिक संस्थाओं को धराशायी भी कर डाला है।

पर्यावरणीय आन्दोलन भी कारपोरेट क्षेत्र के "व्यवसाय के निरापद रूप से चलते रहने" में खतरा बनता जा रहा है, खासतौर से इस कारण कि पर्यावरणीय विनाश को कारपोरेट गतिविधियों से जोड़ा जाने लगा है। अत: इसके उपाय के तौर पर, फाउण्डेशन जगत की ओर से "टिकाऊ विकास" और टिकाऊ विकास की विचारधारा को लेकर ढेरों संगठन, *थिंक टैंक*, विश्वविद्यालय संस्थान और कांफ्रेंस गठित किये जा रहे हैं और उनकी फंडिंग की जा रही है।

जून 1992 में **रियो डि जेनरो** में **पर्यावरण और विकास** पर **राष्ट्रसंघ** द्वारा आयोजित **कांफ्रेंस** के प्रत्येक पहलू पर फाउण्डेशनों का भारी प्रभाव छाया रहा। फाउण्डेशनों ने भले ही **ग्लोबल फोरम** के तौर पर इस "जमीनी मंच" का गठन नहीं किया, फिर भी इसमें शिरकत करने वाले तमाम गैर-सरकारी संगठनों की फंडिंग की। यहां तक कि सरकारी तौर पर भाग लेने आये प्रतिनिधियों के लिए फाउण्डेशन नेटवर्क ने ट्यूटर की भी भूमिका निभायी और "बातचीत में पूरी तरह भागीदारी करने के लिए आवश्यक संसाधनों की कमी वाले विकासशील देशों की सरकारों को तकनीकी सहायता प्रदान की, तथा उन सरकारों को बातचीत के मूल पाठ उपलब्ध कराये जो समझौते के लिए आवश्यक कुशल भाषा में तैयार किये जाने वाले मसविदे के मुद्दों से भलीभांति परिचित नहीं थे।"[3]

"नागरिक भागीदारी" को लेकर फाउण्डेशन जगत का सरोकार अब भूमंडलीय बन चुका है। पहले से चलाये जाते रहे नेतृत्व-प्रशिक्षण कार्यक्रमों की भांति ही अब यह निश्चय किया जा चुका है कि लोगों को व्यावहारिक, बुद्धिसंगत लक्ष्यों को हासिल करने की दिशा में प्रभावी बनाने के लिए प्रशिक्षित किया जायेगा। अब सारी दुनिया में नागरिक भागीदारी और प्रभाव बढ़ाने के लिए "**सिविस (सी आइ वी आइ सी यू एस) वर्ल्ड अलाइन्स फॉर सिटिजन पार्टिसिपेशन** नाम से एक नये संगठन का गठन किया गया है-- जिसमें अनुदानदाता और अनुदान प्राप्तकर्ता दोनों ही सदस्य होंगे...। वर्तमान में इसका प्रशासकीय कार्यालय **वाशिंगटन डीसी** के **इण्डिपेण्डेण्ट सेक्टर** में स्थित है।[4]"

यह "तीसरे क्षेत्र" की सुरक्षा कवच संबंधी गतिविधियों की एक छोटी सी बानगी भर है। इसने पूंजीवाद के लिए काफी उपयोगी और बढ़िया काम शुरू किया है। बहरहाल, यह अलग सवाल है कि इससे इस ग्रह के आर्थिक पर्यावरणीय, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों पर मंडरा रही विनाश की महाविपदा टाली जा सकेगी या नहीं। वैसे देखने में तो ऐसा ही लग रहा है कि वर्तमान व्यवस्था का आमूल परिवर्तनवादी विकल्प ढूंढने, विकसित करने और उसे लागू करने की ऊर्जा इस तीसरे क्षेत्र के सुरक्षा-कवच द्वारा बिखरा सी दी गयी हैं।

टिप्पणियां:

1. **काउंसिल ऑन फाउण्डेशन संयुक्त राज्य अमेरिका** और दूसरे देशों में कार्यरत 1300 फाउण्डेशनों का एक संघ है, जिसकी स्थापना 1949 में हुई। यह **काउंसिल** नेतृत्व और अनुसंधान कार्यक्रमों के तहत अनुदान प्राप्त करने वालों की मदद करती है। हाल ही में इसने शिक्षा, मानव सेवाओं, विज्ञान-अनुसंधान, कलाओं और शहरी विकास के प्रोजेक्टों के लिए करीब 6 अरब डॉलर अनुदान दिये हैं।

काउंसिल ऑन फाउण्डेशन, *फैक्टशीट,* 1195

2. **बी.होवे, "द इमर्जेन्स ऑफ साइन्टिफिक फिलैन्थ्रॉपी" आर्नोव, आर.** (संपा.) *फिलैन्थ्रॉपी एंड कल्चरल इम्पीरियलिज्म* **(बोस्टन: जी. के. हॉल,** 1980**)**, पृ.29

3. **जे. माउगॅन, "द रोड फ्रॉमरियो",** द *फोर्ड फाउण्डेशन रिपोर्ट,* **ग्रीम** 1992, पृ.16

4. **"वर्ल्ड अलाइअन्स,"** *फाउण्डेशन न्यूज,* सित./अक्तू. 1993, पृ.10

(स्रोत: *मंथली रिव्यू* वॉल्यूम 47 नं.-4 सित. 1995 पृ. 16-25)

अनुवाद : **विश्वनाथ मिश्र**

दायित्वबोध

आगामी अंक के कुछ प्रमुख आकर्षण

अन्तोनियो ग्राम्शी का लेख : **'बुद्धिजीवी'**

बर्तोल्त ब्रेख्त की बीस छोटी कहानियां

शहादत की वर्षगांठ (23 मार्च) के अवसर पर इतिहास के दुर्लभ दस्तावेज **'भगतसिंह की जेल नोटबुक'** का एक परिचय

— *ले. मित्रोखिन*

पाश के कविकर्म का एक पुनर्मूल्यांकन

— *कात्यायनी*

चीन की सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दो बहुमूल्य दस्तावेज

शशिप्रकाश की बीस कविताएं

बहस के लिए—
स्वयंसेवी संस्थाओं के चरित्र, उद्देश्य और कार्य-प्रणाली पर कुछ और जानने योग्य तथ्य प्रस्तुत करने वाला लेख *तथा*

मदर टेरेसा और उनका मिशन: मिथक और यथार्थ

राजनीतिक अर्थशास्त्र के मूलभूत सिद्धान्त के अन्तर्गत *समाजवादी सिद्धान्तों के अनुसार लोगों के बीच आपसी सम्बन्ध स्थापित करो (चौदहवीं किस्त)*

विचारोत्तेजक सम्पादकीय,
कुछ और महत्वपूर्ण लेख
तथा
राजनीतिक टिप्पणियां

महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति अमर रहे

—"हुङछी" (लाल झण्डा) का सम्पादकीय अंक 8, 1966

महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति (1966-76) के तीसरे दशाब्दी वर्ष के अवसर पर 'दायित्वबोध' में नवम्बर '96 फरवरी-'97 अंक से हमने इस युगान्तरकारी सामाजिक प्रयोग के कुछ महत्वपूर्ण दस्तावेजों और लेखों की श्रृंखला का प्रकाशन शुरू किया है। इस श्रृंखला की चौथी कड़ी में हम इस बार दो लेख—"हुङछी" (लाल झण्डा) के 1966, अंक 8 में प्रकाशित सम्पादकीय **"महान सर्वहारा सांस्कृतिक अमर रहे"** तथा दूसरा "सरकुलर" के प्रकाशन की दूसरी जयन्ती के उपलक्ष में "रनमिन रपाओ", "हुङछी" और "च्येफाङच्युन पाओ" के सम्पादकीय विभागों द्वारा 17 मई 1968 को लिखा गया लेख **"एक युगान्तरकारी दस्तावेज"**—प्रकाशित कर रहे हैं। — सम्पादक

अध्यक्ष माओ त्से-तुङ और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय कमेटी के प्रत्यक्ष नेतृत्व में, एक महान जनव्यापी सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति, जो इतिहास में अपना सानी नहीं रखती, धरती को दहला देने वाली भूकम्पकारी शक्ति के साथ अत्यन्त तीव्र और प्रचण्ड रूप से विकसित होती जा रही है।

माओ त्से-तुङ के विचारों का महान लाल झण्डा बुलन्द रखते हुए मजदूरों, किसानों, सैनिकों, क्रान्तिकारी कार्यकर्ताओं और क्रान्तिकारी बुद्धिजीवियों का जन-समुदाय, पूंजीपति वर्ग के उन प्रतिनिधियों का, जो मौका पाकर हमारी पार्टी में आ घुसे हैं, सभी प्रकार के दैत्यों का, तथा सभी प्रकार की पतनशील पूंजीवादी और सामन्तवादी विचारधाराओं का सफाया कर रहा है। राजनीतिक, विचारधारात्मक और सांस्कृतिक मोर्चों पर एक अभूतपूर्व रूप से अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न हो गई है।

यह एक अत्यंत तीव्र और जटिल वर्ग-संघर्ष है, जिसका उद्देश्य है ऊपरी ढांचे में, विचारधारा के क्षेत्र में मौजूद तमाम सर्वहारा तत्वों का पोषण करना तथा तमाम पूंजीवादी तत्वों को नेस्तनाबूद कर देना – यह पूंजीवाद की पुनर्स्थापना के लिए प्रयत्नशील पूंजीपति वर्ग तथा पूंजीवाद की पुनर्स्थापना न होने देने के लिए संकल्पबद्ध सर्वहारा वर्ग के बीच का एक जीवन-मरण का संघर्ष है। इस संघर्ष का असर इस मसले पर पड़ेगा कि हमारे देश में सर्वहारा अधिनायकत्व को और समाजवाद के आर्थिक आधार को सुदृढ़ बनाना और विकसित करना सम्भव है अथवा नहीं; तथा हमारी पार्टी और हमारा देश अपना रंग बदलेंगे अथवा नहीं। इसका असर हमारी पार्टी और हमारे देश के भाग्य व भविष्य पर तथा विश्व क्रान्ति के भाग्य व भविष्य पर भी पड़ेगा। यह अत्यन्त आवश्यक है कि इस संघर्ष को कोई मामूली घटना न समझा जाए।

इस बात की क्या जरूरत है कि एक सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति शुरू की जाय? यह क्रान्ति आखिर इतनी अधिक महत्वपूर्ण क्यों है?

कामरेड माओ त्से-तुङ ने सर्वहारा अधिनायकत्व के अन्तरराष्ट्रीय ऐतिहासिक अनुभवों का बड़े वैज्ञानिक ढंग से सारांश निकाला है तथा यह सिद्धान्त प्रस्तुत किया है कि समाजवादी समाज में अन्तरविरोधों, वर्गों और वर्ग-संघर्ष का अस्तित्व मौजूद रहता है। वे हमें बार-बार याद दिलाते हैं कि हम वर्ग-सघंर्ष को कभी न भूलें, राजनीति को सर्वोपरि रखना कभी न भूलें, और सर्वहारा अधिनायकत्व को सुदृढ़ बनाना कभी न भूलें, तथा हर सम्भव उपाय अपनाकर संशोधनवादियों द्वारा नेतृत्व हथियाए जाने और पूंजीवाद की पुनर्स्थापना किए जाने की रोकथाम करें। उन्होंने बताया है कि राजनीतिक सत्ता को उखाड़ फेंकने से पहले अनिवार्य रूप से इस बात की कोशिश की जाती है कि ऊपरी ढांचे और विचारधारा पर अपना प्रभुत्व कायम कर दिया जाय, ताकि लोकमत तैयार किया जा सके, तथा यह बात क्रान्तिकारी वर्गों और प्रतिक्रान्तिकारी वर्गों दोनों ही पर लागू होती हैं इस बुनियादी प्रस्थान-बिन्दु के आधार पर, कामरेड माओ त्से-तुङ ने आह्वान किया है कि हम सर्वहारा तत्वों का पालन-पोषण करने के लिए और पूंजीवादी तत्वों को नेस्तनाबूद कर देने के लिए विचारधारा के क्षेत्र में वर्ग-संघर्ष चलाएं।

यह एक महान सत्य है, मार्क्सवाद-लेनिनवाद का एक महान विकसित रूप है।

इतिहास यह बताता है कि पूंजीपति वर्ग ने सामन्ती जमीनदार वर्ग के हाथ से सत्ता छीनने से पहले विचारधारा पर अपना प्रभुत्व कायम कर लिया था और लोकमत तैयार कर लिया था। "नवजागरण" काल से योरप के पूंजीपति वर्ग ने अविचल रूप से सामन्ती विचारधारा की आलोचना की तथा पूंजीवादी विचारधारा का प्रचार-प्रसार किया। कई सौ वर्षों तक लोकमत तैयार करने के बाद कहीं 17वीं और 18वीं शताब्दी में योरप के अनेक देशों में पूंजीपति वर्ग एक के बाद एक राजनीतिक सत्ता पर कब्जा जमा पाया तथा अपना अधिनायकत्व कायम कर सका।

मार्क्स और एंगेल्स ने कम्युनिज्म के सिद्धांतों का प्रचार करना एक शताब्दी से अधिक पहले शुरू कर दिया था। उन्होंने यह इसलिए किया था ताकि सर्वहारा वर्ग द्वारा राजनीतिक सत्ता हथियाए जाने के लिए लोकमत तैयार किया जा सके। रूसी सर्वहारा क्रान्ति अनके दशाब्दियों तक लोकमत तैयार करने के बाद ही राजनीतिक सत्ता हथियाने में सफल हुई। हमारा अपना अनुभव हमारे दिमाग में इससे भी अधिक ताजा है। जब चीनी सर्वहारा वर्ग ने राजनीतिक मंच पर प्रकट होना शुरू किया, उस समय वह एक कमजोर और निहत्था वर्ग था। आखिर क्रान्ति कैसे शुरू हुई? वह चीन में मार्क्सवाद-लेनिनवाद का प्रचार-प्रसार होने और साम्राज्यवाद व उसके गुर्गों की कलई खुलने के साथ-साथ शुरू हुई। चीनी सर्वहारा वर्ग द्वारा राजनीतिक सत्ता हथियाने के लिए किया गया संघर्ष वस्तुत: चार मई की सांस्कृतिक क्रान्ति से शुरू हुआ।

अन्ततोगत्वा, चीनी सर्वहारा वर्ग द्वारा राजनीतिक सत्ता हथियाए जाने का इतिहास माओ त्से-तुङ के विचारों द्वारा मजदूरों, किसानों और सैनिकों के विशाल जन-समुदाय को लैस कर लेने का इतिहास है। आम जनता ठीक ही कहती है: "माओ त्से-तुङ के विचार न होते, तो नए चीन का अस्तित्व भी न होता।" मार्क्सवाद-लेनिनवाद को चीनी क्रान्ति के अमल के साथ जोड़कर, महान क्रान्तिकारी ध्वज वाहक कामरेड माओ त्से-तुङ ने चीनी क्रान्ति की पूरी शक्ल ही बदल डाली। ऐतिहासिक अनुभव से यह जाहिर हो जाता है कि माओ त्से-तुङ के विचारों ने हमारे अन्दर यह सामर्थ्य पैदा कर दी कि हम आम जनता का अधिकाधिक समर्थन प्राप्त कर सकें, सशस्त्र सेनाएं और तोप-बन्दूकें रख सकें, एक के बाद एक क्रान्तिकारी आधार-क्षेत्र कायम कर सकें, थोड़ा-थोड़ा करके राजनीतिक सत्ता पर कब्जा कर सकें, तथा अन्त में समूचे देश की राजनीतिक सत्ता पर कब्जा कर सकें।

राजनीतिक सत्ता पर कब्जा कर लेने के बाद,

सर्वहारा वर्ग शासक वर्ग बन गया है तथा जमीन्दार वर्ग और पूंजीपति वर्ग शासित वर्ग बन गए हैं। जमन्दार वर्ग और प्रतिक्रियावादी पूंजीपति वर्ग, दूसरों के शासित बनने या अपने वर्ग का अन्त कर देने को हरगिज चुपचाप बर्दाश्त नहीं करेंगे। वे लगातार इस बात के सपने देख रहे हैं कि सर्वहारा अधिनायकत्व का तख्ता उलट कर पूंजीवाद की पुनर्स्थापना कर दी जाय, ताकि वे फिर एक बार मेहनतकश जनता पर सवारी गांठ सकें। उनके अन्दर अब भी भारी शक्ति मौजूद है। उनके पास पैसा है, व्यापक सामाजिक रसूख और अन्तरराष्ट्रीय सम्पर्क है, तथा प्रतिक्रान्ति करने का अनुभव है। खास तौर पर शोषक वर्गों की विचारधारा की अब भी काफी भारी खपत है। क्रान्तिकारी पांतों के कुछ ढुलमुल तत्वों के इस विचारधारा के प्रभाव से पथभ्रष्ट होने और प्रतिक्रान्तिकारी बन जाने की सम्भावना बनी रहती है। यही नहीं, निम्न-पूंजीपति वर्ग के सहज रूप से पड़ने वाले प्रभाव से लगातार पूंजीवाद का जन्म होता रहता है। राजनीतिक सत्ता प्राप्त कर लेने के बाद भी सर्वहारा वर्ग के सामने उसे खो बैठने का खतरा बना रहता है। समाजवादी व्यवस्था की स्थापना हो जाने के बाद भी उसके सामने पूंजीवादी व्यवस्था की पुनर्स्थापना का खतरा बना रहता है। अगर इस बात की ओर गंभीरतापूर्वक ध्यान न दिया गया और आवश्यक कदम न उठाए गए, तो इसके परिणामस्वरूप हमारी पार्टी और हमारे देश का रंग बदल जाएगा तथा हमारे देश के करोड़ों लोगों को अपनी जिन्दगी से हाथ धोना पड़ेगा।

उत्पादन के साधनों की मिलकियत का समाजवादी रूपान्तर हो जाने के बाद, पूंजीवादी व सामन्तवादी विचारधाराएं सत्ताच्युत जमीन्दार वर्ग व पूंजीपति वर्ग का अत्यन्त महत्वपूर्ण गढ़ बन जाती हैं। पुनर्स्थापना के उनके प्रयत्नों का लक्ष्य होता है सबसे पहले विचारधारा पर कब्जा जमाना तथा अपने पतनशील विचारों को हर सम्भव तरीके से जनता की आंखों में धूल झोंकने के लिए इस्तेमाल करना। विचारधारा पर कब्जा जमाना तथा लोकमत को अपने सांचे में ढालना, ये दोनों बातें पूंजीपति वर्ग द्वारा सर्वहारा अधिनायकत्व का तख्ता उलटने के लिए की गई तैयारी की द्योतक हैं और जब स्थिति परिपक्व हो जाती है, तो वे किसी न किसी तरीके से राजविप्लव करके राज्यसत्ता हथियाने की कोशिश करते हैं।

सोवियत संघ ने समाजवादी उत्पादन-सम्बन्धों की स्थापना के बाद गम्भीरता के साथ सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति नहीं चलाई। पूंजीवादी विचारधारा को खुली छूट मिल गई तथा वह लोगों के दिमागों को भ्रष्ट करने लगी और अदृश्य रूप से समाजवादी उत्पादन-सम्बन्धों की जड़ काटने लगी। स्तालिन के देहान्त के बाद, ख्रुश्चेवी संशोधनवादी ग्रुप ने लोकमत को और अधिक निर्लज्जतापूर्वक अपने प्रतिक्रान्तिकारी सांचे में ढाल दिया। इस ग्रुप ने इसके फौरन बाद ही सर्वहारा अधिनायकत्व का तख्ता उलट देने के लिए एक "राजप्रासादीय" विप्लव रच डाला तथा पार्टी, फौज और सरकारी सत्ता को हथिया लिया।

1956 की हंगेरियाई प्रतिक्रान्तिकारी घटना में, प्रतिक्रान्तिकारियों ने भी उपद्रव करने और दंगा-फसाद करने के लिए सड़कों पर निकल आने से पहले लोकमत तैयार कर लिया था। इस प्रतिक्रान्तिकारी घटना की साजिश साम्राज्यवाद ने रची थी और इसे पेतोफी क्लब के कम्युनिस्ट-विरोधी बुद्धिजीवियों के एक ग्रुप द्वारा शुरू किया गया था। इमरी नाज को, जो उस समय तक कम्युनिस्ट पार्टी का बिल्ला लगाए हुए था, "राजा का लिबास पहना दिया गया" और वह प्रतिक्रान्तिकारियों का सरगना बन बैठा।

सर्वहारा अधिनायकत्व के अन्तरराष्ट्रीय ऐतिहासिक अनुभव से यह जाहिर होता है कि यह अधिनायकत्व तब तक सुदृढ़ नहीं बन सकता और समाजवादी व्यवस्था तब तक सुदृढ़ नहीं बन सकती जब तक एक सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति नही चलाई जाती और पूंजीवादी विचारधारा को नेस्तनाबूद करने के लिए अविचल रूप से प्रयत्न नहीं किया जाता। पूंजीवादी विचारों के बेरोकटोक फैलने से अनिवार्य रूप से सर्वहारा अधिनायकत्व का तख्ता उलटने की हालत पैदा हो जाती है और पूंजीपति वर्ग के ख्रुश्चेव जैसे प्रतिनिधियों का उदय हो जाता है, जो एक "राजप्रासादीय" विप्लव या फौजी विप्लव से अथवा दोनों का एक साथ इस्तेमाल करके राजनीतिक सत्ता को हथिया लेंगे। अगर सर्वहारा अधिनायकत्व को सुदृढ़ बनाना हो, अगर सर्वहारा अधिनायकत्व वाले देश को समाजवाद और कम्युनिज्म की दिशा मे आगे बढ़ाना हो तो सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति अनिवार्य रूप से चलानी चाहिए; सर्वहारा वर्ग की विचारधारा का पोषण करना चाहिए और पूंजीवादी विचारधारा को नेस्तनाबूद कर देना चाहिए, तथा संशोधनवाद की विचारधारात्मक जड़ों को पूरी तरह उखाड़ फेंकना चाहिए और मार्क्सवाद-लेनिनवाद की, माओ त्से-तुङ विचारों की जड़ें दृढ़ता के साथ जमा देनी चाहिए।

समाजवादी क्रान्ति और समाजवादी निर्माण की यह मांग है कि काम के अनेक क्षेत्रों में पुरजोर प्रयत्न किए जाए। इस कार्य में एक लाल कार्यदिशा अवश्य मौजूद रहनी चाहिए, जो सर्वहारा वर्ग और पूंजीपति वर्ग के बीच के वर्ग-संघर्ष, समाजवादी रास्ते और पूंजीवादी रास्ते के बीच के संघर्ष, तथा विचारधारा के क्षेत्र में सर्वहारा वर्ग और पूंजीपति वर्ग के बीच के वर्ग-संघर्ष के अलावा और कुछ नहीं है।

कामरेड माओ त्से-तुङ ने हमें सिखाया है:

सर्वहारा वर्ग और पूंजीपति वर्ग के बीच का वर्ग-संघर्ष, विभिन्न राजनीतिक शक्तियों के बीच का वर्ग-संघर्ष तथा विचारधारात्मक क्षेत्र में सर्वहारा वर्ग और पूंजीपति वर्ग के बीच का वर्ग-संघर्ष- ये सभी एक लम्बे समय तक टेढ़ेमेढ़े रास्ते तय करते हुए चलते रहेंगे, और यहां तक कि कभी-कभी अत्यन्त तीक्ष्ण भी हो जाएंगे। सर्वहारा वर्ग दुनिया को अपने विश्व-दृष्टिकोण के मुताबिक बदलना चाहता है; इसी तरह पूंजीपति वर्ग भी दुनिया को अपने विश्व-दृष्टिकोण के मुताबिक बदलना चाहता है। इस सम्बन्ध में, यह सवाल वास्तव में अभी तक हल नहीं हो पाया है कि अन्त में कौन जीतेगा, समाजवाद अथवा पूंजीवाद। ("जनता के बीच के अन्तरविरोधों को सही ढंग से हल करने के बारे में")

सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति का उद्देश्य इस सवाल का फैसला करना है कि विचारधारा के क्षेत्र में सर्वहारा वर्ग और पूंजीपति वर्ग इन दोनों में से "कौन जीतेगा"। यह एक दीर्घकालीन और कठिन ऐतिहासिक कार्य है, जो जीवन के हर क्षेत्र में विद्यमान है।

कुछ साथी यह समझते हैं कि सर्वहारा वर्ग और प्रतिक्रियावादी पूंजीपति वर्ग के बीच समाचारपत्रों में होने वाले वाद-विवाद बड़े-बड़े विद्वानों के बीच के महज "मामूली कागजी वाग्युद्ध" हैं। कुछ साथी अपने काम में इतने ज्यादा डूबे रहते हैं कि उन्हें विचारधारा और संस्कृति के मोर्चों पर होने वाले संघर्ष का पता ही नहीं, तथा वे विचारधारा के क्षेत्र में होने वाले वर्ग-संघर्ष की ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते। यह रवैया सरासर गलत और बेहद खतरनाक है। अगर पूंजीवादी विचारधारा को अपनी मनमानी करने का मौका मिल गया, तो सर्वहारा अधिनायकत्व पूंजीपति वर्ग का अधिनायकत्व बन जाएगा, तथा समाजवादी व्यवस्था एक पूंजीवादी व्यवस्था अथवा एक अर्ध-उपनिवेशी, अर्धसामन्ती व्यवस्था बन जाएगी। हमें ऐसे लोगों को बुलन्द आवाज में बता देना चाहिए: साथियो! दुश्मन अपनी तलवार की धार तेज कर रहा है; वह हमारे सिर उड़ा देना चाहता है; वह हमारी राजसत्ता का तख्ता उलट देना चाहता है। यह क्या बात है कि तुम इसे देख कर भी अनदेखी कर रहे हो और सुनकर भी अनसुनी कर रहे हो?

राजनीतिक सत्ता पर कब्जा करना और उसे सुदृढ़ बनाना यह बन्दूक और कलम दोनों ही पर निर्भर है। अगर हम क्रान्तिकारी कार्य की हिफाजत करना चाहते हों और उसे आगे बढ़ाना चाहते हों, तो हमें न सिर्फ बन्दूक को मजबूती के साथ पकड़े रहना चाहिए, बल्कि पूंजीपति वर्ग की लेखनी को नष्ट कर देने और उसका सफाया कर देने के लिए सर्वहारा वर्ग की कलम भी उठा लेनी चाहिए। केवल समूची पूंजीवादी विचारधारा का सफाया करके ही हम सर्वहारा वर्ग की राजनीतिक सत्ता को सुदृढ़ बना सकते हैं तथा सर्वहारा वर्ग की बन्दूक को अधिकाधिक मजबूती के साथ पकड़े रह सकते हैं।

विचारधारा और संस्कृति के मोर्चों पर जो वर्ग-संघर्ष हो रहा है, उसे ध्यान से देखने के बाद

हमारा हृदय सिहर उठता है।

विचारधारा और संस्कृति के मोर्चों पर सर्वहारा वर्ग और पूंजीपति वर्ग के बीच, मार्क्सवादी और मार्क्सवाद-विरोधी विचारों के बीच का संघर्ष जन लोकतंत्र चीन की स्थापना के बाद से अब तक एक क्षण के लिए भी बन्द नहीं हुआ। समाजवादी उत्पादन-सम्बन्धों की स्थापना के बाद, विचारधारा के क्षेत्र में होने वाला यह वर्ग-संघर्ष अधिकाधिक गहरा, अधिकाधिक जटिल और अधिकाधिक तीव्र होता गया है।

1957 में पूंजीवादी दक्षिणपंथियों ने पार्टी व समाजवाद पर पागलपन के साथ प्रहार करना शुरू कर दिया। प्रतिक्रियावादी राजनीतिज्ञों का गठजोड़, जिसके सरगना चाङ पो-च्युन और लो लुङ-ची थे, जब खुलेआम हम पर प्रहार करने लगा, तो उससे पहले ही पूंजीवादी दक्षिणपंथी बुद्धिजीवियों ने चारों ओर बहुत सी जहरीली घासपात उगा ली थी; एक के बाद एक, बहुत सी प्रतिक्रान्तिकारी धारणाओं, राजनीतिक प्रोग्रामों, तथा फिल्मों व उपन्यासों का उदय हुआ। जाहिर था कि यह सब पूंजीवादी दक्षिणपंथियों द्वारा राजनीतिक सत्ता हथियाने के उद्देश्य से लोकमत तैयार करने के लिए की गई कोशिश थी।

पार्टी की केन्द्रीय कमेटी और अध्यक्ष माओ के विवेकपूर्ण नेतृत्व में, चीनी जनता ने पूंजीवादी दक्षिणपंथियों के इस वहशियाना प्रहार का मुहतोड़ जबाव दिया तथा राजनीति और विचारधारा के मोर्चों पर एक महत्वपूर्ण विजय प्राप्त की।

उसके बाद 1958 में, समाजवादी निर्माण की आम कार्यदिशा का महान लाल झण्डा बुलन्द रखते हुए, चीनी जनता ने असीमित उत्साह और शक्ति के साथ काम के हर क्षेत्र में लम्बी छलांग लगाई तथा एक बड़े पैमाने पर जन-कम्यूनों की स्थापना की। साथ ही मजदूरों, किसानों व सैनिकों के जन-समुदाय ने बड़े जोश के साथ अध्यक्ष माओ की रचनाओं का सृजनात्मक ढंग से अध्ययन किया और उनके विचारों को सृजनात्मक ढंग से लागू किया। विचारधारा और संस्कृति के मोर्चों पर भी एक क्रान्ति का सूत्रपात हो गया।

1959 से 1962 तक, चीन को सोवियत संशोधनवादियों द्वारा किए गए विश्वासघात के परिणामस्वरूप और तीन वर्ष तक लगातार गम्भीर प्राकृतिक संकट आने के परिणामस्वरूप, अस्थायी रूप से आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। लेकिन क्रान्तिकारी चीनी जनता कठिनाइयों से डरी नहीं। उसने पार्टी की केन्द्रीय कमेटी और अध्यक्ष माओ के विवेकपूर्ण नेतृत्व में कठोर परिश्रम किया और वह साहसपूर्वक आगे बढ़ती गई। कुछ ही वर्षों में उसने कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कर ली और एक शानदार परिस्थिति पैदा कर दी। लेकिन आर्थिक कठिनाइयों के इन वर्षों में एक के बाद एक दैत्य और दानव अपनी गुफा से बाहर निकलते रहे। प्रतिक्रियावादी पूंजीपति वर्ग द्वारा पार्टी और समाजवाद पर किये जाने वाले प्रहारों ने अत्यंत भीषण रूप धारण कर लिया।

दार्शनिक अध्ययन के क्षेत्र में याङ श्येन-चन ने बड़ी निर्लज्जता के साथ विचार और वास्तविकता की एकरूपता को न मानने की भ्रान्त धारणा फैलाकर यह कोशिश की कि मजदूरों, किसानों और सैनिकों के जन-समुदाय को अपनी मनोगत पहलकदमी का पूर्ण विकास न करने दिया जाए और लम्बी छलांग का विरोध किया जाए। इसके बाद उसने "दो के एक में मिल जाने" के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया, तथा इस प्रकार एक ऐसी अत्यन्त प्रतिक्रियावादी राजनीतिक कार्यदिशा के लिए दार्शनिक "आधार" तैयार कर डाला जो साम्राज्यवाद, प्रतिक्रियावादियों और आधुनिक संशोधनवाद के साथ हमारे सम्बन्धों के क्षेत्र में संघर्ष को खत्म कर देने, दूसरे देशों की जनता के क्रान्तिकारी संघर्षों को सहायता व समर्थन कम कर देने, निजी इस्तेमाल के लिए छोड़े गए खेतों और स्वतंत्र बाजारों का विस्तार करने, ऐसे छोटे-छोटे कारोबारों की तादाद बढ़ा देने जो अपने नफे-नुकसान के लिए पूरी तरह खुद ही जिम्मेदार हों, तथा उत्पादन का कोटा परिवारों के आधार पर निर्धारित करने का पक्षपोषण करती है। पूंजीपति वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाले तथाकथित "धुरधंर विद्वानों" ने, जो मौका पाकर पार्टी में आ घुसे थे, "अधकचरेपन", "आवश्यकता से अधिक सरलीकरण" और "कार्यसाधकतावाद" के ये तीन डंडे घुमाते हुए मजदूरों, किसानों व सैनिकों का इस बात के लिए विरोध किया कि वे अध्यक्ष माओ की रचनाओं का सृजनात्मक ढंग से अध्ययन करें और उनके विचारों को सृजनात्मक ढंग से लागू करें। यही नहीं, अपने पद और अपनी सत्ता का इस्तेमाल करते हुए उन्होंने समाचार-पत्रों को इस बात से रोका कि वे मजदूरों, किसानों और सैनिकों के लिखे हुए दार्शनिक लेख प्रकाशित करें। साथ ही, दर्शन-शास्त्र के इतिहास का अध्ययन करने की आड़ लेकर, कुछ पूंजीवादी "विशेषज्ञों" ने "स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व" के विचारों का प्रचार-प्रसार किया और कनफ्यूशियस की तारीफ के पुल बांध दिए तथा इस गड़े मुर्दे की आड़ में अपने समूचे पूंजीवादी विचार समूह का प्रचार-प्रसार किया।

आर्थिक अध्ययन के क्षेत्र में, सुन ये-फाङ और उसकी टोली ने संशोधनवादी भ्रान्त धारणाओं का एक पूरा का पूरा समूह ही पेश कर डाला। उन्होंने माओ त्से-तुङ के विचारों को और राजनीति को सर्वोपरि रखने का विरोध किया तथा मुनाफे और धन को सर्वोपरि रखना चाहा। उन्होंने समाजवादी उत्पादन-सम्बन्धों को बदलने की तथा समाजवादी कारोबारों को पूंजीवादी कारोबारों में बदलने की नाकाम कोशिश की।

ऐतिहासिक अध्ययन के क्षेत्र में, मुट्ठीभर पूंजीवादी "धुरंधर विद्वानों" ने 1958 में ऐतिहासिक अध्ययन के क्षेत्र में शुरू किए गए क्रान्तिकारी परिवर्तनों पर अन्धाधुन्ध प्रहार किया। उन्होंने ऐतिहासिक अनुसन्धान के क्षेत्र में मार्क्सवाद-लेनिनवाद और माओ त्से-तुङ के विचारों को सर्वोपरि रखने का विरोध किया तथा यह धारणा फैलाई कि ऐतिहासिक सामग्री ही सब कुछ होती है। उन्होंने वर्ग-संघर्ष के मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त का विरोध करने के लिए अपने तथाकथित "ऐतिहासिकतावाद" का इस्तेमाल किया। उन्होंने इतिहास के क्षेत्रों में काम करने वाले उन क्रान्तिकारी अनुसंधानकर्ताओं से भारी नफरत की जो शहंशाहों, बादशाहों, सेनापतियों और प्रधानमंत्रियों का आलोचनात्मक मूल्यांकन करते हैं तथा किसानों और किसान-युद्धों को अहमियत देते हैं। उन्होंने शहंशाहों, बादशाहों, सेनापतियों और प्रधानमंत्रियों की तो तारीफ के पुल बांध दिए जबकि किसानों और किसान-युद्धों को बड़ी सरगरमी के साथ कलंकित किया। वे ऐतिहासिक अध्ययन के क्षेत्र में काम करने वाले पूंजीवादी "राजतत्रंवादी" हैं। उनमें से कुछ लोग तो कट्टर कम्युनिस्ट-विरोधी हैं। उन्हीं में ऊ हान और च्येन पो-चान भी शामिल हैं।

साहित्य व कला के क्षेत्र में, पूंजीपति वर्ग के प्रतिनिधियों ने साहित्य व कला के लिए समूची संशोधनवादी कार्यदिशा का, जो अध्यक्ष माओ की कार्यदिशा से विपरीत है, प्रचार-प्रसार करने में कोई कसर नहीं छोड़ी तथा अपनी तथाकथित 1930-40 की परम्पराओं का जोरों के साथ प्रचार-प्रसार किया। "ईमानदारी के साथ लिखने" के बारे में "यथार्थ के प्रशस्त पथ" के बारे में, "यथार्थवाद में गहराई लाने" के बारे में "विषय-वस्तु के निर्णयात्मक तत्व होने का विरोध करने" के बारे में, ''मध्यम पात्रों'' के बारे में, ''बारूद की गन्ध'' का विरोध करने के बारे में, "विभिन्न धाराओं का युग भावना के रूप मे एकीकरण करने" के बारे में, तथा "क्लासिकी साहित्य का परित्याग करने और कट्टरपंथीपन के प्रति विद्रोह करने" के बारे में, उनके सिद्धान्त एक खास किस्म के थे। इन सिद्धान्तों के "मार्गदर्शन" में बिल्कुल भोंड़े, पार्टी-विरोधी, समाजवाद-विरोधी नाटक-आपेराओं, उपन्यासों व फिल्मों, तथा सिनेमा व साहित्य के इतिहासों की एक बाढ़ सी आ गई।

शिक्षा के क्षेत्र में, पूंजीपति वर्ग के प्रतिनिधियों ने अध्यक्ष माओ द्वारा प्रस्तुत की गई शिक्षा-नीति का विरोध करने की भरपूर कोशिश की; इस नीति का उद्देश्य है शिक्षा प्राप्त करने वाले का नैतिक, बौद्धिक व शारीरिक विकास करना तथा उसे समाजवादी विचारों से लैस एक सुसंस्कृत मेहनतकश बना देना। उन्होंने कुछ समय काम, कुछ समय पढ़ाई करने की शिक्षा-प्रणाली का विरोध करने तथा सोवियत संघ के संशोधनवादियों के शिक्षा "सिद्धांतों" और शिक्षा-प्रणालियों का प्रचार-प्रसार करने की हरचन्द कोशिश की। उन्होंने नौजवान पीढ़ी को हमसे छीन कर उस पर अपना प्रभाव जमाने की जी-तोड़ कोशिश की, इस व्यर्थ आशा से कि, वे नौजवानों को पूंजीपति वर्ग के

उत्तराधिकारियों के रूप में प्रशिक्षित कर सकेंगे।

पत्रकारिता के क्षेत्र में पूंजीपति वर्ग के प्रतिनिधियों ने पत्रकारिता की पथ-प्रदर्शक भूमिका का विरोध करने की भरपूर कोशिश की तथा "ज्ञान-प्रसार" की पूंजीवादी धारणा की पैरवी की। उन्होंने पत्रकारिता के क्षेत्र में मार्क्सवाद-लेनिनवाद और माओ त्से-तुङ के विचारों के नेतृत्व का गला घोंटने की नाकाम कोशिश की, यह उम्मीद करते हुए कि वर्जित पूंजीवादी सामग्री का स्वतंत्र रूप से प्रचार-प्रसार किया जा सकेगा तथा पत्रकारिता के क्षेत्र को हमारे कब्जे से छीना जा सकेगा।

इस प्रतिकूल धारा में सबसे अधिक प्रतिक्रियावादी और कट्टरतावादी तत्व पार्टी-विरोधी "तीन परिवार वाले गांव" का गिरोह था। इस गिरोह के लोगों ने अपने अनेक अड्डे बना लिए थे— समाचारपत्रों, पत्रिकाओं, गोष्ठियों और प्रकाशन संस्थाओं में। उनके लम्बे हाथ सांस्कृतिक जगत के कोने-कोने में पहुंच गए, जहां उन्होंने कुछ नेतृत्वकारी पदों को भी हथिया लिया। हर प्रतिक्रियावादी चीज को वे बड़ी आसानी से सूंघ लेते थे, तथा अपनी रचनाओं के अन्दर वे राजनीतिक वातावरण की हर प्रतिक्रियावादी चीज के साथ अत्यन्त घनिष्ठता के साथ तुरंत तालमेल कायम कर लेते थे। उन्होंने एक निर्देशन के अनुसार, एक सुसंगठित तरीके से, एक योजना के अनुरूप काम करते हुए और एक निश्चित उद्देश्य को सामने रख कर, पूंजीवाद की पुनर्स्थापना करने और सर्वहारा अधिनायकत्व का तख्ता उलट देने के लिए लोकमत तैयार किया।

इस प्रतिकूल धारा में मुख्य भूमिका वे लोग अदा कर रहे थे जो पूंजीपति वर्ग के प्रतिनिधि थे, लेकिन जो पार्टी के भीतर मौका पाकर आ घुसे थे। उन्होंने "लाल झण्डे" फहराते हुए लाल झण्डे का विरोध किया, तथा मार्क्सवाद-लेनिनवाद और माओ त्से-तुङ के विचारों का लबादा ओढ़कर मार्क्सवाद-लेनिनवाद और माओ त्से-तुङ के विचारों का विरोध किया। मार्क्सवाद के "धुरंधर विद्वानों" तथा पार्टी की नीतियों का स्पष्टीकरण करने वाले "धुरंधर विद्वानों" की पोशाक पहन कर, उन्होंने बड़ी बेहयाई के साथ जहर फैलाया और आम जनता की आंखों में धूल झोंकी। उन्होंने अपने पदों व अपने हाथ में मौजूद सत्ता का इस्तेमाल करके एक तरफ तो सभी किस्म के दैत्यों व दानवों को खुली छूट दे दी तथा दूसरी तरफ सर्वहारा वामपंथियों के जवाबी प्रहारों को दबा दिया। वे लोग मुट्ठीभर षड्यंत्रकारी हैं, जो कम्युनिज्म का साइनबोर्ड लगाए फिरते हैं, लेकिन इसकी आड़ लेकर जो वास्तव में पार्टी-विरोधी और समाजवाद-विरोधी जहर फैलाते हैं। वे लोग एक बेहद खतरनाक किस्म का गिरोह हैं।

1959 से ही हम पूंजीपति वर्ग द्वारा किए गए प्रहारों का लगातार डटकर मुकाबला करते रहे हैं। खासतौर पर पिछले नवम्बर से, जब कामरेड याओ वन-य्वान ने "'हाए रुइ की अपने पद से बरखास्तगी' नामक नए ऐतिहासिक नाटक के बारे में" शीर्षक अपना लेख प्रकाशित कराया तथा महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति का बिगुल बजाया, तब से पूंजीपति वर्ग के खिलाफ एक जनव्यापी जवाबी हमला शुरू हो गया।

इस जवाबी हमले में मजदूरों, किसानों, सैनिकों, क्रान्तिकारी बुद्धिजीवियों के व्यापक जन-समुदाय की राजनीतिक चेतना का स्तर एक अभूतपूर्व ऊंचाई पर पहुंच गया है और उनकी जुझारू शक्ति बेहद बढ़ गई है। आम जनता द्वारा किए गए संघर्षों ने "तीन परिवार वाले गांव" के पार्टी-विरोधी गुट को नेस्तनाबूद कर दिया और उसकी जड़ों को उखाड़ फेंक दिया। उसकी जड़ें और कहीं नहीं बल्कि पार्टी की भूतपूर्व पेकिङ नगर कमेटी में ही मौजूद थीं। कम्युनिस्ट पार्टी की भूतपूर्व पेकिङ नगर कमेटी के नेतृत्व के अधीन एक अंधकारपूर्ण पार्टी-विरोधी और समाजवाद-विरोधी कार्यदिशा का बोलबाला था। उसके कुछ नेतृत्वकारी सदस्य मार्क्सवादी-लेनिनवादी नहीं बल्कि संशोधनवादी थे। उन्होंने बहुत से बुनियादी स्थलों और माध्यमों को अपने कब्जे में कर लिया था और सर्वहारा वर्ग पर अपना अधिनायकत्व लागू करने का प्रयत्न किया था। वे लोग कैरियरवादियों और षड्यंत्रकारियों का एक गिरोह बन गए थे। लेकिन उनके षड्यंत्रों को बेनकाब कर दिया गया और उन्हें शिकस्त दे दी गई। हमारी पार्टी की केन्द्रीय कमेटी ने पेकिङ नगर पार्टी-कमेटी का पुनर्गठन किया और एक नई पार्टी-कमेटी कायम कर दी। यह फैसला अत्यन्त बुद्धिमत्तापूर्ण और बिलकुल सही था। यह माओ त्से-तुङ के विचारों की एक नई विजय थी।

गत वर्ष जब से हमने बड़े पैमाने पर जवाबी हमला शुरू किया, तभी से पूंजीपति वर्ग के उन प्रतिनिधियों में भारी खलबली मच गई है जो मौका पाकर पार्टी के भीतर आ घुसे थे और "लाल झण्डों" को फहरा कर लाल झण्डे का विरोध कर रहे थे। उन्होंने पूंजीवादी दक्षिणपंथियों का समर्थन करने और उन्हें बचाने के लिए तथा सर्वहारा वर्ग के वामपंथियों का दमन करने और उन पर प्रहार करने के लिए बड़ी जल्दबाजी के साथ पांच "तावीजों" का आविष्कार कर डाला।

उनमे से एक "तावीज" का नाम है "खुलकर बात कहने देना।"

पूंजीपति वर्ग के उन प्रतिनिधियों ने, जो मौका पाकर पार्टी के भीतर आ घुसे थे और जिन्होंने "लाल झण्डों" को फहरा कर लाल झण्डे का विरोध किया, पार्टी की "खुलकर बात कहने देने" की नीति की वर्ग-अन्तर्वस्तु को खत्म करके और उसे एक पूंजीवादी उदारवादी नीति के रूप में विकृत करके उसे तोड़ने-मरोड़ने की पुरजोर कोशिश की। उन्होंने केवल पूंजीवादी दक्षिणपंथियों को ही "अपनी बात कहने" की इजाजत दी तथा सर्वहारा वर्ग के वामपंथियों को इस प्रतिद्वन्द्विता में शामिल नहीं होने दिया। उन्होंने केवल पूंजीवादी दक्षिणपंथियों को ही प्रहार करने की इजाजत नहीं दी। उन्होंने दक्षिणपंथियों को अपनी बात यथासंभव "खुलकर" कहने की इजाजत दी, जबकि वामपंथियों द्वारा जवाबी प्रहार करने के लिए भेजी गई पाण्डुलिपियों को या तो अलग रख दिया अथवा उनके लेखकों को इस बात के लिए मजबूर किया कि वे अपनी रचनाओं को उनके विचारों के अनुरूप फिर से लिख दें। उन्होंने कहा कि "हाए रुइ की अपने पद से बरखास्तगी" नामक रचना की राजनीतिक दृष्टि से आलोचना नहीं की जानी चाहिए, वरना इससे "खुलकर बात कहने देने" की नीति पर असर पड़ेगा तथा तब लोग बोलने की हिम्मत नहीं कर पाएंगे। हम इन रईसजादों से पूछना चाहते हैं: क्या तुमने बहुत धीमे से "खुलकर बात कही" है? क्या तुमने पार्टी पर एक खड्गधारी और तीर-कमानधारी योद्धा की तरह राजनीतिक प्रहार नहीं किया है? आखिर तुमने सर्वहारा वर्ग को इस बात से क्यों रोका कि वह पूंजीवादी दक्षिणपंथियों पर राजनीतिक जवाबी प्रहार करने के लिए "खुलकर अपनी बात कहे"? वास्तव में "खुलकर बात कहने देने" की नीति के द्वारा तुमने पूंजीपति वर्ग को तो हरी रोशनी दिखाकर आगे बढ़ने का संकेत दिया और सर्वहारा वर्ग को लाल रोशनी दिखाकर रुक जाने का संकेत दिया।

दूसरे "तावीज" का नाम है "विध्वंस से पहले निर्माण"।

जब सर्वहारा वर्ग ने पूंजीपति वर्ग के प्रहार का जवाब दिया, तो "द्वन्द्ववादी" होने का ढोंग रचते हुए, पूंजीपति वर्ग के उन प्रतिनिधियों ने जो मौका पाकर पार्टी के भीतर आ घुसे थे तथा "लाल झण्डों" को फहरा कर लाल झण्डे का विरोध कर रहे थे, यह चीख-पुकार मचाई कि "विध्वंस से पहले निर्माण" होना चाहिए। और "विध्वंस से पहले निर्माण" का बहाना बनाकर उन्होंने सर्वहारा वर्ग के प्रतिक्रियावादी राजनीतिक दुर्ग पर प्रहार करने की इजाजत नहीं दी। "विध्वंस से पहले निर्माण" की धारणा द्वन्द्ववादी सिद्धान्तों और माओ त्से-तुङ के विचारों का विरोध करती है। कामरेड माओ त्से-तुङ ने हमें बार-बार यह सिखाया है कि विध्वंस के बिना निर्माण हरगिज नहीं हो सकता। पहले तो विध्वंस ही होना चाहिए। विध्वंस का मतलब है क्रान्ति, इसका मतलब है आलोचना। विध्वंस के लिए अनिवार्य रूप से तर्क की आवश्यकता होती है और तर्क अपने आप में ही एक निर्माणकार्य है। मार्क्सवाद-लेनिनवाद और माओ त्से-तुङ के विचार ये सभी, पूंजीवादी विचारधारा, दक्षिणपंथी अवसरवाद और "वामपंथी" अवसरवाद को खत्म करने के संघर्ष के दौरान ही विकसित हुए हैं। निर्माण से पहले विध्वंस की प्रक्रिया के दौरान निर्माण- यही इतिहास का द्वन्द्ववादी सिद्धान्त है। क्या मार्क्सवाद-लेनिनवाद और माओ त्से-तुङ के विचार— जो युग-युगांतर की सबसे महान सच्चाइयां हैं— निर्माण नहीं हैं? हम उक्त पूंजीवादी रईसजादों से

पूछना चाहते हैं, आखिर तुम लोग किस चीज का निर्माण करना चाहते हो? जाहिर है कि तुम केवल पूंजीवादी प्रतिक्रियावादी विचारधारा का निर्माण करना चाहते हो, सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी विचारधारा का नहीं। जब सर्वहारा वर्ग ने मार्क्सवाद-लेनिनवाद और माओ त्से-तुङ के विचारों का इस्तेमाल करके, पूंजीपति वर्ग के प्रहारों से डटकर लोहा लिया तथा पूंजीवादी विचारधारा को नष्ट करने से के लिए कमर कस ली, उसके बाद, आपके द्वारा मचाई गई "विध्वंस से पहले निर्माण" की चीख-पुकार का मकसद बिलकुल यही था कि दक्षिणपंथियों की तो हिफाजत की जाय और वामपंथियों को जवाबी प्रहार करने से रोक दिया जाए। यह सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति का विरोध करना था।

तीसरे "तावीज" का नाम है "वामपंथी निरंकुश-विद्वानों" का विरोध करना और उनकी बढ़ोत्तरी न होने देना।

जब भी सर्वहारा वर्ग के वामपंथियों ने पूंजीवादी प्रहारों का जवाब दिया, तो पूंजीपति वर्ग के उन प्रतिनिधियों ने, जो मौका पाकर पार्टी के भीतर आ घुसे थे और "लाल झण्डों" को फहरा कर लाल झण्डे का विरोध कर रहे थे, बड़े "सूक्ष्मदर्शी" और "गहन" होने का ढोंग रचते हुए वामपंथियों को "भोंड़ा" और "डण्डे" की भूमिका अदा करने वाला बताकर उनकी निन्दा की। पूंजीपति वर्ग के प्रहारों के खिलाफ मौजूद भारी जवाबी हमले के दौरान, उन्होंने फिर "वामपंथी निरंकुश-विद्वानों" का विरोध करने और उनकी बढ़ोत्तरी न होने देने के तावीज का इस्तेमाल किया तथा इस प्रकार सर्वहारा वर्ग के वामपंथियों को आगे न बढ़ने देने और उनका दमन करने की नाकाम कोशिश की। इसकी इजाजत हरगिज नहीं दी जा सकती थी। हम कहते हैं कि "निरंकुश विद्वान" का लेबिल तुम पूंजीवादी प्रतिनिधियों और "विद्याध्ययन के क्षेत्र में काम करने वाले धुरंधर विद्वानों" के लिए बिलकुल ठीक बैठता है। मौका पाकर पार्टी के भीतर घुसपैठ करने वाले तथा पूंजीवादी निरंकुश विद्वानों का बचाव करने वाले और उन्हें शह देने वाले नवाबजादो, वास्तव में तुम ही परले दर्जे के निरंकुश पार्टी-अधिनायक और निरंकुश विद्वान हो- ऐसे निरंकुश व्यक्ति जो अखबरों और किताबों को नहीं पढ़ते, जो आम जनता से सम्बन्ध तोड़ चुके हैं और ज्ञान से वंचित हैं, तथा जो अपनी शक्ति का इस्तेमाल करके दूसरों पर हावी होना चाहते हैं। सर्वहारा वर्ग के वामपंथी सदैव मार्क्सवाद-लेनिनवाद की सच्चाई पर, माओ त्से-तुङ के विचारों की सच्चाई पर जोर देते हैं, तथा पूंजीवादी विचारधारा की आलोचना करते समय वैज्ञानिक धारणाओं और प्रमाणों पर निर्भर रहते हैं। सर्वहारा वर्ग के वामपंथियों और "निरंकुश विद्वानों" में कोई समानता नहीं है। हमें तुम जैसे तमाम पूंजीवादी "निरंकुश विद्वानों" तथा मुट्ठीभर परले दर्जे के निरंकुश पार्टी-अधिनायकों और निरंकुश विद्वानों की बड़े पैमाने पर भरपूर निन्दा करनी चाहिए। वामपंथियों को "डण्डा" कह कर बदनाम करने वाले नबावजादो, कान खोल कर सुन लो: वामपंथी लोग सर्वहारा वर्ग के फौलादी डण्डे हैं, बेशकीमती हथियार हैं और हम इस डण्डे से पुरानी दुनिया की धज्जियां उड़ा देंगे, तुम जैसे परले दर्जे के निरंकुश पार्टी-अधिनायकों और निरंकुश विद्वानों को शिकस्त दे देंगे तथा तुम्हारे जैसे पापियों की गुप्त दुनिया को नष्ट कर देंगे। इसी का नाम सर्वहारा अधिनायकत्व होता है।

उनके एक अन्य "तावीज" का नाम है "खालिस इल्मी बहस।"

पार्टी व समाजवाद के खिलाफ पूंजीवादी दक्षिणपंथियों के प्रहारों पर पर्दा डालने के लिए तथा साथ ही सर्वहारा वर्ग के वामपंथियों के जवाबी प्रहारों को कुचल देने के लिए, पूंजीपति वर्ग के उन प्रतिनिधियों ने जो मौका पाकर पार्टी के भीतर आ घुसे हैं और "लाल झण्डों" को फहराते हुए लाल झण्डे का विरोध करते हैं, विचारधारा के क्षेत्र में वर्ग-संघर्ष को एक "खालिस इल्मी बहस" का नाम दिया है। हम इन नवाबजादों से पूछना चाहते हैं: क्या ऊ हान की "हाए रुइ ने सम्राट को फटकार बताई" नामक रचना और "हाए रुइ की अपने पद से बरखास्तगी" नामक रचना में तथा तङ थो, ल्याओ मो-शा और उनकी मण्डली के अन्य लोगों की पार्टी-विरोधी और समाजवाद-विरोधी दोहरी बातों में वास्तव में कोई इल्मी चीज मौजूद है? तथाकथित "खालिस इल्मी बहस" एक धोखाधड़ी है, जिसका इस्तेमाल पूंजीपति वर्ग अक्सर करता है। वर्ग-समाज में "खालिस इल्मी" जैसी कोई चीज नहीं होती; हर इल्मी चीज किसी निश्चित वर्ग के विश्व-दृष्टिकोण पर आधारित होती है, राजनीति के अधीन होती है, तथा किसी न किसी रूप में किसी निश्चित वर्ग की राजनीति और अर्थनीति की सेवा करती है। हमारे वर्तमान भरपूर जवाबी प्रहार के दौरान, पूंजीपति वर्ग के प्रतिनिधियों ने तथाकथित "खालिस इल्मी बहस'' का तावीज बांध लिया तथा राजनीति को प्रमुख स्थान देने के सिद्धान्त का विरोध किया, ताकि पार्टी-विरोधी "तीन परिवार वाले गांव" अथवा "चार परिवार वाले गांव" की गिरोहबाजों की सराय से सम्बन्धित बुनियादी राजनीतिक मसले पर पर्दा डाला जा सके, पूंजीवादी राजनीति को प्रमुख स्थान दिया जा सके और सर्वहारा राजनीति को प्रमुख स्थान देने का विरोध किया जा सके, तथा इस महान संघर्ष को दक्षिणपंथी रास्ते पर धकेला जा सके और इसे एक संशोधनवादी रास्ते पर भटकाया जा सके।

उनका एक अन्य तावीज यह तथाकथित कथन है: "सच्चाई के सामने सब बराबर हैं" "हर आदमी कोई न कोई गलत बात अवश्य कहता है" और "यह सब महज एक ढकोसला है।"

पूंजीपति वर्ग के खिलाफ सर्वहारा वर्ग के जवाबी प्रहार के दौरान, पूंजीपति वर्ग के उन प्रतिनिधियों ने, जो मौका पाकर पार्टी के भीतर आ घुसे थे और "लाल झण्डे" फहराते हुए लाल झण्डे का विरोध कर रहे थे, यह तावीज इसलिए पहना जिससे एक तरफ तो उनके अपने आदमी अपने मोर्चों पर जमे रहें और एक इंच भी पीछे न हटें तथा दूसरी तरफ लोगों के दिमाग में उलझन पैदा हो जाय, ताकि पूंजीपति वर्ग के प्रतिनिधि खुद इस गड़बड़ का फायदा उठा सकें और जवाबी प्रहार करने के मौके का इंतजार करते रहें।

"सच्चाई के सामने सब बराबर हैं" का सरासर पूंजीवादी नारा पूर्ण रूप से एक मिथ्यावादी नारा है। विरोधी वर्गों के बीच समानता कभी नहीं हो सकती। सच्चाई का भी वर्ग-स्वरूप होता है। वर्तमान युग में केवल सर्वहारा वर्ग ही वस्तुगत सच्चाई को आत्मसात कर सकता है क्योंकि उसके वर्ग-हित वस्तुगत नियमों के बिलकुल अनुरूप होते हैं। प्रतिक्रियावादी और पतनशील पूंजीपति वर्ग काफी समय पहले ही सच्चाई से पूरी तरह नाता तोड़ चुका है। उसकी तथाकथित "सच्चाई" महज एक ऐसे झूठ के अलावा और कुछ नहीं है जो युग-प्रवाह और वस्तुगत नियमों के विपरीत है। सर्वहारा वर्ग और पूंजीपति वर्ग के बीच, सर्वहारा विचारधारा और पूंजीवादी विचारधारा के बीच, तथा सर्वहारा सच्चाई और पूंजीवादी झूठ के बीच किसी भी किस्म की कोई समानता नहीं हो सकती। सवाल महज यह है कि पुरवा हवा पछवा हवा पर हावी हो गई है अथवा पछवा हवा पुरवा हवा पर। क्या ऐसे बुनियादी प्रश्नों के बारे में भी हमारे और उनके दृष्टिकोण की समानता की इजाजत दी जा सकती है जैसे पूंजीपति वर्ग के खिलाफ सर्वहारा वर्ग द्वारा संघर्ष करना, पूंजीपति वर्ग पर सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व लागू करना, ऊपरी ढांचे पर, जिसमें संस्कृति के विभिन्न क्षेत्र शामिल हैं, सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व लागू करना, तथा सर्वहारा वर्ग की पांतों से पूंजीपति वर्ग के उन प्रतिनिधियों का लगातार सफाया करते जाना जो मौका पाकर पार्टी के भीतर आ घुसे हैं तथा "लाल झण्डे" फहराते हुए लाल झण्डे का विरोध करते हैं? अनेक दशाब्दियों से सामाजिक-जनवादियों ने और पिछली एक दशाब्दी से कुछ अधिक समय से आधुनिक संशोधनवादियों ने सर्वहारा वर्ग को पूंजीपति वर्ग के साथ समानता का उपभोग करने की इजाजत कभी नहीं दी। "सच्चाई के सामने सब बराबर हैं" का नारा लगाकर पूंजीपति वर्ग के वे प्रतिनिधि जो मौका पाकर पार्टी के भीतर आ घुसे हैं, पार्टी विरोधी और समाजवाद-विरोधी तत्वों को प्रोत्साहन देना चाहते हैं और वामपंथियों के जवाबी प्रहारों को कुचल डालना चाहते हैं। हम इन नवाबजादों से पूछना चाहते हैं: तुम समानता की रट लगाते हो, तो फिर तुमने वामपंथियों के लेख छापने से इन्कार क्यों किया तथा केवल दक्षिणपंथियों की ही बहुत सी विषैली घासपात क्यों प्रकाशित होने दी? यह कैसी समानता है? हम तुम्हें साफ-साफ बता देना चाहते हैं कि हम तुम्हें सर्वहारा वर्ग के साथ किसी भी किस्म

की समानता का उपभोग हरगिज नहीं करने देंगे। तुम्हारे खिलाफ हमारा संघर्ष एक जीवन-मरण का संघर्ष है। तुम्हारे जैसे पार्टी-विरोधी और समाजवाद-विरोधी गिरोहों के लिए सिर्फ अधिनायकत्व की ही जरूरत है।

यह तर्क पेश करना कि "हर आदमी कोई न कोई गलत बात अवश्य कहता है" तथा "यह सब महज एक ढकोसला है", एक भारी षड्यंत्र है। हम समझते हैं कि सबसे पहले विभिन्न वर्गों के बीच, क्रान्ति और प्रतिक्रान्ति के बीच एक विभाजन-रेखा खींच लेनी चाहिए। हो सकता है कि वस्तुगत घटनाओं को समझते समय क्रान्तिकारी वामपंथी कोई न कोई गलती कर बैठें, लेकिन इन गलतियों को पूंजीवादी दक्षिणपंथियों के पार्टी-विरोधी, समाजवाद-विरोधी और प्रतिक्रान्तिकारी बयानों व कारनामों के समकक्ष नहीं रखा जा सकता; ये दोनों बिल्कुल भिन्न हैं। वर्तमान महान सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान मुख्य अन्तरविरोध एक शत्रुतापूर्ण अन्तरविरोध है, जिसके एक पक्ष में तो मजदूरों, किसानों, सैनिकों, क्रान्तिकारी कार्यकर्ताओं और क्रान्तिकारी बुद्धिजीवियों का व्यापक जनसमूह है तथा दूसरे पक्ष में पूंजीपति वर्ग के तुम जैसे मुट्ठीभर पार्टी-विरोधी और समाजवाद-विरोधी प्रतिनिधि हैं। यह क्रान्ति और प्रतिक्रान्ति के बीच का अन्तरविरोध है, दुश्मन और हमारे बीच का एक ऐसा अन्तरविरोध है जो हल नहीं हो सकता। जहां तक तुम्हारे प्रतिक्रान्तिकारी बयानों और कारनामों का सवाल है, हमें उन सबकी निर्दयतापूर्वक आलोचना करनी चाहिए तथा उन पर प्रहार करने के लिए संघर्ष का बिगुल बजा देना चाहिए। इसमें संदेह नहीं कि विद्याध्ययन सम्बन्धी पूंजीवादी विचारों की भी सामान्य रूप से आलोचना की जानी चाहिए, लेकिन उनके प्रति तुम जैसे पार्टी-विरोधी और समाजवाद-विरोधी तत्वों के मुकाबले अलग किस्म का बर्ताव किया जाना चाहिए। साधारण पूंजीवादी विद्वानों से निपटते समय हम उनके लिए पहले की ही तरह समुचित रोजगार मुहैया करते रहेंगे तथा उन्हें इस बात का मौका देंगे कि वे काम के दौरान अपने विश्व-दृष्टिकोण को बदल डालें, बशर्ते कि वे कम्युनिस्ट पार्टी और जनता का विरोध न करते हों। जब भी हम पूंजीपति वर्ग पर जवाबी प्रहार करते हैं, तो पूंजीपति वर्ग के वे प्रतिनिधि जो मौका पाकर हमारी पार्टी में घुस आए हैं, यह चीख पुकार मचाने लगते हैं कि "हर आदमी कोई न कोई गलत बात अवश्य करता है" और "यह सब महज एक ढकोसला है;" उनका मकसद केवल यह होता है कि वामंपंथियों को मजबूती से अपनी मुट्ठी में रखा जाय, वातावरण को दूषित बना दिया जाए और एक भारी घोटाला पैदा करके वामपंथियों पर जवाबी प्रहार किया जाय। उनकी यह कोशिश बिलकुल व्यर्थ साबित होगी। हम अध्यक्ष माओ के मार्गदर्शन में चलते हैं तथा वामपंथियों, मध्यममार्गियों और दक्षिणपंथियों के खिलाफ संघर्ष करते हैं तथा बहुसंख्यक जनता को अपने पक्ष में कर लेते हैं, उसके साथ एकता कायम करते हैं और उसे शिक्षित करते हैं, ताकि महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति को अन्त तक चलाया जा सके।

पूंजीपति वर्ग के उन प्रतिनिधियों के, जो मौका पाकर पार्टी में घुस आए हैं तथा "लाल झण्डे" फहराते हुए लाल झण्डे का विरोध करते हैं, इन सभी तावीजों का मकसद सिर्फ एक ही है- सर्वहारा वर्ग पर अपना अधिनायकत्व लागू करना। उन्होंने संस्कृति के विभिन्न क्षेत्रों में कुछ नेतृत्वकारी पदों पर कब्जा तक कर लिया है और हम पर अपना अधिनायकत्व भी लागू कर दिया है। ये सभी पद हमें उनसे फिर छीन लेने होंगे और पूंजीपति वर्ग के इन प्रतिनिधियों को उखाड़ फेंकना होगा।

मौका पाकर पार्टी के भीतर आ घुसने वाले पूंजीवादी प्रतिनिधियों की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि वे "लाल झण्डे" फहराते हुए लाल झण्डे का विरोध करते हैं।

उन्हें हम कैसे पहचान सकते हैं? इसका एकमात्र तरीका है, "अध्यक्ष माओ की रचनाओं को पढ़ना, उनकी शिक्षाओं पर चलना और उनकी हिदायतों पर अमल करना"।

माओ त्से-तुङ के विचार वर्तमान युग में मार्क्सवाद-लेनिनवाद का सर्वोच्च शिखर हैं, वे जीवन्त मार्क्सवाद-लेनिनवाद का सर्वाधिक उन्नत रूप हैं। कामरेड माओ त्से-तुङ के सिद्धान्त और व्यवहार की उपमा आकाश में सूरज और चांद की अनवरत परिक्रमा से तथा पृथ्वी में नदियों और जलस्रोतों के अनन्त प्रवाह से दी जा सकती है। कामरेड माओ त्से-तुङ की रचनाएं हमारे समस्त कार्यों के लिए सर्वोच्च निर्देशन है। मार्क्सवाद-लेनिनवाद और संशोधनवाद के बीच की, तथा क्रान्ति और प्रतिक्रान्ति के बीच की विभाजन रेखा यह है कि आप माओ त्सेतुङ के विचारों का समर्थन करते हैं और उनके अनुरूप आचरण करते हैं अथवा उनका बहिष्कार करते हैं और उनके अनुरूप आचरण करने का विरोध करते हैं।

हम उन तमाम चीजों का पक्षपोषण और समर्थन करते हैं जो माओ त्से-तुङ के विचारों के अनुरूप हैं। जो कोई भी माओ त्से-तुङ के विचारों का विरोध करेगा, उसके खिलाफ हम निर्भयतापूर्वक संघर्ष करेंगे और उसे उखाड़ फेंकेंगे, फिर चाहे वह कितना ही "मशहूर" और "धुंरधर विद्वान" क्यों न हो तथा कितने ही बड़े "पद" पर क्यों न हो।

पूंजीपति वर्ग के वे प्रतिनिधि जो मौका पाकर पार्टी के भीतर आ घुसे हैं, देखने में बड़े "भारी भरकम" मालूम पड़ते हैं लेकिन वास्तव में अन्य सभी प्रतिक्रियावादियों के ही समान वे भी महज कागजी बाघ ही हैं।

माओ त्से तुङ के विचार, वाहन को नियंत्रित करने वाले गियर हैं और मजदूर, किसाने व सैनिक सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की मुख्य शक्ति हैं। अतएव हम अपनी सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति में हर तरह के दैत्यों व दानवों को शिकस्त दे सकते हैं और एक के बाद एक विजय प्राप्त कर सकते हैं।

हमारे देश में जमींदार, धनी किसान, प्रतिक्रान्तिकारी, बुरे तत्व और दक्षिणपंथी तथा विदेशों में साम्राज्यवादी और संशोधनवादी, बड़ी दुष्टता के साथ खुश होकर यह समझते हैं कि इस समय जबकि हम पार्टी-विरोधी "तीन परिवार वाले गांव" के गिरोह का पर्दाफाश कर रहे हैं और उसकी आलोचना कर रहे हैं, वे लोग इसका कुछ न कुछ फायदा उठा सकते हैं। हम अपने देश के और विदेशों के प्रतिक्रियावादियों को यह बता देना चाहते हैं कि वे निहायत बेवकूफ हैं। पार्टी-विरोधी "तीन परिवार वाले गांव" के गिरोह का पर्दाफाश करने, उसकी आलोचना करने तथा तमाम दैत्यों व दानवों का सफाया करने का उद्देश्य वास्तव में हमारी पार्टी के भीतर और हमारे देश के अंदर मौजूद तुम्हारे तमाम एजेंटों को नेस्तनाबूद कर देना तथा उस "टाइम-बम" को हटा देना है जिस पर तुम अपनी आशाओं को केन्द्रित किए बैठे हो। जैसे-जैसे महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति अधिकाधिक गहरी होती जाएगी वैसे-वैसे हम माओ त्से-तुङ के विचारों को समूचे देश की जनता के बीच और अधिक दृढ़ता के साथ प्रस्थापित करते जाएंगे तथा संशोधनवाद को और उन तमाम चीजों को जड़मूल से उखाड़ फेकेंगे जो पूंजीवाद की पुनर्स्थापना को प्रोत्साहन देती है। इतिहास बड़ी बेरहमी के साथ तुम्हारे जैसे मूर्खों की खिल्ली उड़ाएगा।

देश-विदेश के प्रतिक्रियावादियों ने यह झूठी अफवाह फैलाई है कि हम समस्त बुद्धिजीवियों पर प्रहार कर रहे हैं। यह बिलकुल बेहूदा बात है। चीन की महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति का निशाना वे मुट्ठीभर दुष्ट लोग हैं जो कम्युनिज्म का साइनबोर्ड लगाकर कम्युनिस्ट-विरोधी सामग्री बेचते फिरते हैं; इसका निशाना मुट्ठी भर पार्टी-विरोधी, समाजवाद-विरोधी और प्रतिक्रान्तिकारी पूंजीवादी बुद्धिजीवी हैं। उन बुद्धिजीवियों की भारी तादाद के बारे में जो पुराने समाज से आए हैं, हमारी नीति है उनके साथ एकता कायम करना, उन्हें शिक्षित करना और उनका पुन:संस्कार करना। महान सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान सर्वहारा वर्ग के बुद्धिजीवियों की पांतें लगातार बढ़ती जा रही हैं।

क्रान्तिकारी लोगो, आओ हम सब माओ त्से-तुङ के विचारों के आधार पर और अधिक घनिष्ठता के साथ एकताबद्ध हो जाएं।

आओ, हम माओ त्से-तुङ के विचारों के महान लाल झंडे को और सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के महान लाल झंडे को बुलंद रखते हुए, विजय-मार्ग पर अग्रसर होते जाएं!

महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति अमर रहे!

●

एक युगान्तरकारी दस्तावेज

"सरकुलर" के प्रकाशन की दूसरी जयन्ती के उपलक्ष्य में

"रनमिन रपाओ", "हुङछी" और "च्येफाङच्युन पाओ" के संपादकीय विभागों द्वारा लिखा गया लेख (17 मई 1968)

अध्यक्ष माओ त्से-तुङ की विचारोक्तियां

महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति, सार रूप में, समाजवाद की परिस्थितियों के अन्तर्गत, सर्वहारा वर्ग द्वारा पूंजीपति वर्ग तथा अन्य तमाम शोषक वर्गों के खिलाफ चलाई जा रही एक महान राजनीतिक क्रान्ति है; यह चीनी कम्युनिस्ट पार्टी तथा उसके नेतृत्व में चीन के विशाल क्रान्तिकारी जन-समुदाय द्वारा क्वोमिन्ताङ प्रतिक्रियावादियों के विरुद्ध चलाए जा रहे दीर्घकालीन संघर्ष का ही एक जारी रूप है, सर्वहारा वर्ग और पूंजीपति वर्ग के बीच के संघर्ष का ही एक जारी रूप है।

* * * * *

जनता के व्यापक जनवाद के बिना सर्वहारा अधिनायकत्व को सुदृढ़ नहीं बनाया जा सकता तथा राजनीतिक सत्ता तब भी अस्थिर ही बनी रहेगी। जनवाद के बिना, जन-समुदाय को जागृत किए बिना तथा जन-समुदाय द्वारा की जाने वाली निगरानी के बिना, प्रतिक्रियावादियों और बुरे तत्वों पर कारगर रूप से अधिनायकत्व लागू करना अथवा उनका कारगर रूप से सुधार करना असंभव है; वे लोग गड़बड़ी करना जारी रखेंगे, तथा पुनर्स्थापना की संभावना फिर भी बनी रहेगी। इस प्रश्न के बार में हमें सर्तक रहना चाहिए और इस पर साथियों को ध्यानपूर्वक विचार करना चाहिए।

चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय कमेटी का "सरकुलर" (16 मई 1966)*, जिसे अध्यक्ष माओ के व्यक्तिगत मार्गदर्शन में तैयार किया गया, महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति का सूत्रपात करने वाला एक युगांतरकारी दस्तावेज है। "सरकुलर" में अध्यक्ष माओ ने सर्वहारा अधिनायकत्व के अन्तर्गत क्रान्ति को जारी रखने के लिए जो सिद्धान्त, कार्यदिशा, उसूल और नीतियां प्रस्तुत की हैं उनमें मार्क्सवाद-लेनिनवाद का सृजनात्मक विकास हुआ है।

"एक युगान्तकारी दस्तावेज", जिसे "रनमिन रपाओ", "हुङछी" और "च्येफाङच्युन पाओ" के संपादकीय विभागों ने "सरकुलर" के प्रकाशन की दूसरी जयंती के उपलक्ष्य में तैयार किया, एक महत्वपूर्ण लेख है, जिसमें चीन की महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति द्वारा पिछले दो वर्ष में राजनीतिक, विचारधारात्मक और संगठनात्मक क्षेत्रों में प्राप्त की गई महान विजयों का गहराई से और व्यापक रूप से निचोड़ निकाला गया है। राजनीतिक क्षेत्र में, इस क्रान्ति ने हमारी पार्टी के भीतर छिपे हुए पूंजीपति वर्ग के सदर-मुकाम को, जिसकी अगुवाई चीन का खुश्चेव करता है, चकनाचूर कर दिया है, तथा पार्टी के भीतर पूंजीवादी रास्ता अपनाने वाले मुट्ठी भर लोगों, प्रतिक्रान्तिकारी संशोधनवादियों, गद्दारों, दुश्मन के एजेंटों और दुरंगे प्रतिक्रान्तिकारी द्वारा हमारे देश में सर्वहारा अधिनायकत्व का तख्ता उलट देने और पूंजीवाद की पुनर्स्थापना करने के लिए रची गई मुजरिमाना स्कीमों को धूल में मिला दिया है; विचारधारा के क्षेत्र में, इसने मुट्ठीभर वर्ग-शत्रुओं की क्रान्तिकारी व्यापक आलोचना की है और खंडन किया है तथा माओ त्से-तुङ विचारधारा के व्यापक प्रचार-प्रसार को बढ़ाया है तथा विचारधारा के क्षेत्र में सर्वहारा वर्ग को और अधिक प्रभुत्वकारी स्थिति में पहुंचने में मदद की है; संगठन के क्षेत्र में, क्रान्तिकारी "त्रिपक्षीय संश्रय" के आधार पर राजनीतिक सत्ता के एक बिलकुल नए संगठन का जन्म हो गया है–एक ऐसी क्रान्तिकारी कमेटी का जिसमें सर्वहारा अधिनायकत्व की बुनियादी शक्तियों (क्रान्तिकारी जन-समुदाय के प्रतिनिधियों), उसके सुदृढ़ स्तम्भ (जन-मुक्ति सेना के प्रतिनिधियों) और उसके नेतृत्वकारी केन्द्र (क्रान्तिकारी कार्यकर्ताओं के प्रतिनिधियों) के बीच घनिष्ठ एकता कायम की गई हैं–तथा राजसत्ता के इस संगठन ने सर्वहारा अधिनायकत्व को और अधिक सुदृढ़ बना दिया है। लेख में सर्वहारा क्रान्तिकारियों और व्यापक क्रान्तिकारी जन-समुदाय का आह्वान किया गया है कि वे माओ त्से-तुङ विचारधारा के झंडे तले और अधिक दृढ़ता के साथ गोलबंद हो जाएं, अध्यक्ष माओ की सर्वहारा क्रान्तिकारी कार्यदिशा का दृढ़ता से अनुसरण करें तथा महान सर्वहारा सांस्कृतिक कार्यदिशा का दृढ़ता से अनुसरण करें तथा महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति में, जो मानव जाति के इतिहास में अपने किस्म की पहली क्रान्ति है, चौतरफा विजय प्राप्त करने के लिए अनवरत संघर्ष करते रहें!

— विदेशी भाषा प्रकाशन-गृह, पेकिङ की ओर से

*** देखिए "चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय कमेटी का सरकुलर (16 मई 1966) – एक महान ऐतिहासिक दस्तावेज," हिन्दी संस्करण, विदेशीभाषा प्रकाशन-गृह, पेकिङ, 1967 – अनुवादक**

●

दो साल पहले, चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय कमेटी का 16 मई 1966 का "सरकुलर"—एक शानदार ऐतिहासिक मार्क्सवादी-लेनिनवादी दस्तावेज-महान नेता अध्यक्ष माओ त्से-तुङ के प्रत्यक्ष मार्गदर्शन में तैयार किया गया था।

यह "सरकुलर" महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति को चलाने के लिए युगांतरकारी दस्तावेज है: यह सर्वहारा वर्ग और व्यापक क्रान्तिकारी जन-समुदाय के नाम, समाजवाद की परिस्थितियों के अन्तर्गत, पूंजीपति वर्ग तथा अन्य तमाम शोषक वर्गों के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए एक जुझारू आह्वान है।

दो साल का समय बहुत थोड़ा होता है लेकिन इस दो सालों में कितने महान क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गए हैं! सर्वहारा अधिनायकत्व के अन्तर्गत क्रान्ति को जारी रखने के लिए, अध्यक्ष माओ द्वारा "सरकुलर" में प्रतिपादित सिद्धांत, कार्यदिशा, उसूलों और नीतियों ने पूंजीवादी प्रतिक्रियावादी कार्यदिशा द्वारा विभिन्न रूपों में एक के बाद एक खड़े किए गए प्रतिरोध को चकनाचूर कर दिया है, हमारे देश के सर्वहारा क्रान्तिकारियों और दसियों करोड़ क्रान्तिकारी जनता को लैस कर दिया है, तथा मार्क्सवाद-लेनिनवाद की प्रभावशाली शक्ति को प्रदर्शित कर दिया है, और इस प्रकार पिछले दो सालों में अभूतपूर्व महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति में निर्णयात्मक विजय प्राप्त कर ली है।

(1)

अध्यक्ष माओ ने इस "सरकुलर" में बताया है: **समूची पार्टी को चाहिए कि**

... सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के महान झण्डे को बुलंद रखें, विद्याध्ययन के क्षेत्र में काम करने वाले उन तथाकथित "धुरंधर विद्वानों के प्रतिक्रियावादी पूंजीवादी रुख का पूरी तरह पर्दाफाश करें जो पार्टी और समाजवाद का विरोध करते हैं, विद्याध्ययन, शिक्षा, पत्रकारिता, साहित्य व कला और प्रकाशन के क्षेत्रों में प्रतिक्रियावादी पूंजीवादी विचारों की आलोचना

और उनका खण्डन सम्पूर्ण रूप से करें, तथा इन सांस्कृतिक क्षेत्रों में नेतृत्व का अधिकार छीन लें। इस उद्देश्य को हासिल करने के लिए साथ ही यह भी जरूरी है कि पूंजीपति वर्ग के उन प्रतिनिधियों की आलोचना की जाय और उनका खंडन किया जाय जो मौका पाकर पार्टी, सरकार, सेना और तमाम सांस्कृतिक क्षेत्रों में घुस आये हैं, उनका वहां से सफाया कर दिया जाय या उनमें से कुछ का दूसरे पदों पर तबादला कर दिया जाएं।

पूंजीपति वर्ग के वे प्रतिनिधि, जो मौका पाकर, पार्टी, सरकार, सेना और विभिन्न सांस्कृतिक क्षेत्रों में घुस आए हैं, मुट्‌ठीभर प्रतिक्रान्तिकारी संशोधनवादी हैं। जब एक बार स्थिति परिपक्व हो जाएगी, तो वे लोग राजनीतिक सत्ता छीन लेंगे और सर्वहारा अधिनायकत्व को पूंजीवादी अधिनायकत्व में बदल डालेंगे। उनमें से कुछ लोगों को हमने पूरी तरह पहचान लिया है, अन्य कुछ लोगों को अभी नहीं पहचाना। कुछ लोगों पर हम अब भी विश्वास करते हैं और उन्हें अपने उत्तराधिकारियों के रूप में प्रशिक्षित कर रहे हैं। मिसाल के लिए, ख्रुश्चेव जैसे लोग अब भी हमारे बिलकुल करीब आसन जमाए बैठे हैं सभी स्तरों की पार्टी-कमेटियों को इस मामले पर पूरा ध्यान देना चाहिए।"

महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के पिछले दो वर्षों के अमल ने अध्यक्ष माओ की प्रतिभाशाली दूरदर्शिता को पूरी तरह प्रमाणित कर दिया है। लोग अब इस बात को और ज्यादा गहराई से समझ गए हैं कि अध्यक्ष माओ की इन हिदायतों के जरिए सर्वहारा अधिनायकत्व के मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्त का सृजनात्मक विकास हुआ है, एक ऐसा विकास जो हमारे देश में सर्वहारा अधिनायकत्व को सुदृढ़ बनाने और समाजवादी क्रान्ति को जारी रखने, तथा अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन के लिए एक दूरगामी ऐतिहासिक भूमिका अदा करेगा।

पिछले दो वर्षों के दौरान, अभूतपूर्व व्यापक पैमाने पर चलाए गए क्रान्तिकारी जन-आन्दोलन ने, समुद्र की उमड़ती हुई लहरों की तरह, हमारी पार्टी के अंदर छिपे हुए पूंजीवादी सदर-मुकाम को, जिसका सरगना चीन का ख्रुश्चेव था, नेस्तनाबूद कर दिया है, कम्युनिस्ट पार्टी जनता और माओ त्से-तुङ विचारधारा का विरोध करने वाले प्रतिक्रान्तिकारी संशोधनवादियों का तथा गद्दारों, दुश्मन के एजेंटों और दुरंगे प्रतिक्रान्तिकारियों को बेनकाब कर दिया है तथा हमारे देश में सर्वहारा अधिनायकत्व का तख्ता पलटने और पूंजीवाद की पुनर्स्थापना करने की उनकी मुजरिमाना साजिशों को कुचल दिया है।

ढेर सारे अकाट्य प्रमाणों का रहस्योद्घाटन हो जाने से अब यह साबित हो चुका है कि चीन का ख्रुश्चेव तथा पार्टी के भीतर पूंजीवादी रास्ता अपनाने वाले चोटी के अन्य मुट्‌ठीभर कर्ताधर्ता लोग प्रतिक्रान्तिकारी दुष्टों का एक गिरोह हैं, जो क्वोमिन्ताङ प्रतिक्रियावादियों, साम्राज्यवादियों, पूंजीपतियों, जमींदारों, धनी किसानों, प्रतिक्रान्तिकारियों, बुरे तत्वों और दक्षिणपंथियों के हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इनमें से काफी लोग निकृष्ट और निकम्मे किस्म के हैं जिन्हें क्वोमिन्ताङ प्रतिक्रियावादी छोड़ गए थे। चीन का ख्रुश्चेव, पार्टी के भीतर पूंजीवादी रास्ता अपनाने वाला यह चोटी का कर्ताधर्ता, एक ऐसा ही नीच गद्दार है, जिसने साम्राज्यवादियों और क्वोमिन्ताङ प्रतिक्रियावादियों के सामने कई मौकों पर घुटने टेक दिए थे। पार्टी के भीतर पूंजीवादी रास्ता अपनाने वाला चोटी का एक अन्य कर्ताधर्ता और थाओ, चू फङ, त-ह्वाए, फङ चन, थान चन-लिन, लो रुइ-छिङ, लू तिङ-ई, याङशाङ-खुन, आन च-वन तथा अन्य लोग, ये सभी तरह-तरह के गद्दार, दुश्मन के एजेंट और प्रतिक्रान्तिकारी संशोधनवादी हैं जो पार्टी के अंदर छिपे हुए थे।

ये बदमाश मौका पाकर हमारी पार्टी में घुस आए और उन लोगों ने अनेक महत्वपूर्ण पदों को हथिया लिया। ये लोग ख्रुश्चेव थे जो हमारे बिलकुल करीब आसन जमाए बैठे थे, हमारी पार्टी में छिपे हुए टाइमबम थे तथा समाजवाद की परिस्थितियों में सर्वहारा वर्ग के सबसे खतरनाक दुश्मन थे। एक बार स्थिति परिपक्व हो जाने पर ये लोग राजनीतिक सत्ता छीन लेते, सर्वहारा अधिनायकत्व को पूंजीवादी अधिनायकत्व में बदल डालते, और समाजवादी व्यवस्था को पूंजीवादी व्यवस्था में एक अर्ध-सामन्ती और अर्ध-औपनिवेशिक व्यवस्था में बदल डालते। ऐसी स्थिति में, सोवियत संघ तथा अन्य देशों में, जो संशोधनवादी गद्दार गुटों के नियंत्रण में हैं, पूंजीवाद की पुनर्स्थापना होने की ऐतिहासिक दुखद घटना की पुनरावृत्ति चीन में भी हो जाती और हमारा देश क्वोमिन्ताङ प्रतिक्रियावादी शासन के अंधकारपूर्ण युग में फिर वापस लौट जाता।

इन प्रतिक्रान्तिकारियों के विरुद्ध हमारा संघर्ष एक तीक्ष्ण, जटिल और जीवन-मरण का संघर्ष है, यह एक महाक्रान्ति है जिसमें एक वर्ग दूसरे वर्ग का तख्ता उलट देता है। जैसा कि अध्यक्ष माओ ने गहन रूप से अपनी एक नवीनतम हिदायत में बताया है:

महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति, सार रूप में, समाजवाद की परिस्थितियों के अन्तर्गत, सर्वहारा वर्ग द्वारा पूंजीपति वर्ग तथा अन्य तमाम शोषक वर्गों के खिलाफ चलाई जा रही एक महान राजनीतिक क्रान्ति है; यह चीनी कम्युनिस्ट पार्टी तथा उसके नेतृत्व में चीन के विशाल क्रान्तिकारी जन-समुदाय द्वारा क्वोमिन्ताङ प्रतिक्रियावादियों के विरुद्ध चलाए जा रहे दीर्घकालीन संघर्ष का ही एक जारी रूप है, सर्वहारा वर्ग और पूंजीपति वर्ग के बीच के संघर्ष का ही एक जारी रूप है।

इस संघर्ष में हासिल की गई विजय ने सर्वहारा अधिनायकत्व को अत्यधिक सुदृढ़ बना दिया है।

हमारी पार्टी ने अतीत काल में लोकयुद्ध चलाने के लिए व्यापक क्रान्तिकारी जन-समुदाय पर निर्भर रहकर ही शक्तिशाली घरेलू और विदेशी दुश्मनों को पराजित करने और क्वोमिन्ताङ के प्रतिक्रियावादी शासन को उखाड़ फेंकने में कामयाबी हासिल की थी। वर्तमान काल में नई ऐतिहासिक परिस्थितियों के अन्तर्गत हमारी पार्टी फिर व्यापक क्रान्तिकारी जन-समुदाय पर निर्भर रहकर, इतिहास में अभूतपूर्व महान राजनीतिक क्रान्ति-एक ऐसी क्रान्ति जो सर्वहारा वर्ग द्वारा पूंजीपति वर्ग तथा अन्य तमाम शोषक वर्गों के खिलाफ छेड़ी गई है-चला रही है। दसियों करोड़ क्रान्तिकारी जनता और नौजवान लाल रक्षकों को अध्यक्ष माओ की सर्वहारा क्रान्तिकारी कार्यदिशा के मार्गदर्शन में गोलबंद करके ही पूंजीपति वर्ग के प्रतिनिधियों को और निकृष्ट तथा निकम्मे किस्म के लोगों को, जिन्हें क्वोमिन्ताङ प्रतिक्रियावादी छोड़ गए थे, ऐसे लोगों को जो बेहद मक्कार, कपटी और नीच हैं तथा जो पार्टी के भीतर इतने लम्बे अर्से से छिपे हुए थे तथा इतनी गहराई तक घुसे हुए थे, बेनकाब किया जा सका है और प्रकाश में लाया जा सका है।

इस महान क्रान्ति में इन वर्ग-शत्रुओं के खिलाफ अन्त:चेतना को झकझोर देने वाले संघर्ष चलाने में चीन के सर्वहारा क्रान्तिकारियों, दसियों करोड़ क्रान्तिकारी जनता और नौजवान लाल रक्षकों द्वारा हासिल की गई महान विजय की अमिट और प्रचंड ज्योति सर्वहारा वर्ग के क्रान्तिकारी संघर्ष के इतिहास में हमेशा जगमगाती रहेगी।

(2)

महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के जन-आन्दोलन ने मुट्‌ठीभर वर्ग-शत्रुओं की क्रान्तिकारी व्यापक आलोचना और खण्डन को इतनी व्यापकता और गहराई तक पहुंचा दिया है जिसकी मिसाल इतिहास में कहीं नहीं मिलती।

"सरकुलर" से प्रेरणा पाकर, सर्वहारा क्रान्तिकारियों और व्यापक क्रान्तिकारी जन-समुदाय ने, माओ त्से-तुङ विचारधारा के क्रान्तिकारी आलोचना और खण्डन के महान झण्डे को बुलन्द रखा है, पार्टी के भीतर पूंजीवादी रास्ता अपनाने वाले मुट्‌ठीभर चोटी के कर्ताधर्ता लोगों और विभिन्न क्षेत्रों तथा विभागों में उनके एजेन्टों द्वारा पार्टी, समाजवाद और माओ त्से-तुङ विचारधारा के खिलाफ किए गए तमाम अपराधों का पूरी तरह पर्दाफाश और खण्डन कर डाला है, प्रतिक्रान्तिकारी संशोधनवादी कार्यदिशा, पुरानी संस्कृति, पुराने रीति-रिवाजों और पुरानी आदतों की जोरदार आलोचना की है तथा उनका खण्डन किया है।

क्रान्तिकारी व्यापक आलोचना व खण्डन से माओ त्से-तुङ विचारधारा के व्यापक प्रचार-प्रसार को काफी बढ़ावा मिला है। माओ त्से-तुङ विचारधारा का सृजनात्मक ढंग से अध्ययन करने तथा उसे सृजनात्मक ढंग से लागू करने के लिए जन-समुदाय में जितना ज्यादा उत्साह आज है उतना पहले कभी नहीं रहा। लोगों की मानसिक स्थिति में भारी परिवर्तन हो चुका है। सर्वहारा वर्ग के क्रान्तिकारी कार्य के उत्तराधिकारी संघर्ष के दौरान भारी तादाद में उदय हो रहे हैं।

क्रान्तिकारी व्यापक आलोचना व खण्डन से सर्वहारा वर्ग को विचारधारात्मक रूप से और अधिक प्रभुत्वपूर्ण स्थिति में पहुंचाने में मदद मिली है। इससे पार्टी के भीतर पूंजीवदी रास्ता अपनाने वाले मुट्ठीभर कर्ताधर्ता लोगों को न केवल संगठनात्मक रूप से, बल्कि राजनीतिक, विचारधारात्मक और सैद्धान्तिक रूप से भी उखाड़ फेंकने में सर्वहारा क्रान्तिकारियों को मदद मिली है और इस प्रकार राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्रों में सर्वहारा वर्ग के प्रभुत्व को सुदृढ़ बना दिया है।

राजनीतिक और विचारधारात्मक क्षेत्रों में, या तो पुरवा हवा पछवा हवा पर हावी होती है, या पछवा हवा पुरवा हवा पर; या तो सर्वहारा वर्ग पूंजीपति वर्ग पर हावी होता है या पूंजीपति वर्ग सर्वहारा वर्ग पर। बीच का रास्ता कोई नहीं है।

महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति में, सर्वहारा क्रान्तिकारियों का उद्देश्य निश्चित रूप से पूंजीवादी प्रतिक्रियावादियों, विषैली घासपात तथा उन जमींदारों, धनी किसानों, प्रतिक्रान्तिकारियों, बुरे तत्वों और दक्षिणपंथियों के विरुद्ध दृढ़तापूर्वक संघर्ष चलाना तथा उनका खण्डन करना है जिन्होंने अपना पुनःसंस्कार नहीं किया। सर्वहारा वर्ग का उद्देश्य निश्चित रूप से पूंजीपति वर्ग पर हावी हो जाना है; पूंजीपति वर्ग के साथ "समानता" का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। जैसा कि अध्यक्ष माओ ने "सरकुलर" में बताया है:

क्या इस प्रकार के बुनियादी मसलों के बारे में समानता की इजाजत दी जा सकती है, जैसे पूंजीपति वर्ग के खिलाफ सर्वहारा वर्ग द्वारा संघर्ष करना, पूंजीपति वर्ग पर सर्वहारा अधिनायकत्व लागू करना, ऊपरी ढांचे में, जिसमें संस्कृति के सभी विविध क्षेत्र शामिल हैं, सर्वहारा अधिनायकत्व लागू करना, तथा सर्वहारा वर्ग द्वारा पूंजीपति वर्ग के उन प्रतिनिधियों को अपनी पांतों से बाहर निकालने के लिए लगातार प्रयत्न करना, जो मौका पाकर कम्युनिस्ट पार्टी के भीतर घुस आए हैं और "लाल झण्डे" का विरोध करते हैं?

चीन की महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के आन्दोलन में पिछले दो वर्षों के दौरान हासिल की गई महान जीतें पूंजीपति वर्ग तथा अन्य तमाम शोषक वर्गों की पुरानी विचारधारा की क्रान्तिकारी व्यापक आलोचना और खण्डन में माओ त्से-तुङ विचारधारा द्वारा प्राप्त किये गए जबरदस्त परिणाम हैं।

अध्यक्ष माओ ने हमें बार-बार यह सिखाया है कि **विध्वंस के बिना निर्माण नहीं हो सकता। विध्वंस का मतलब है आलोचना और खण्डन, इसका मतलब है क्रान्ति। उसके लिए तर्क की आवश्यकता होती है और तर्क खुद अपने में ही एक निर्माण-कार्य है। पहले तो विध्वंस ही होना चाहिए, और विध्वंस की प्रक्रिया के दौरान निर्माण स्वाभाविक रूप से होता जाता है।**

इस अभूतपूर्व महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति में, इस अत्यंत तीव्र वर्ग-संघर्ष में विभिन्न वर्गों के प्रतिनिधि और विभिन्न विचारधाराएं मंच पर अभिनय करते रहेंगे। पतनोन्मुख वर्गों के प्रतिनिधि जनता को धोखा देने के लिए भेष बदल-बदल कर सामने आते रहेंगे और दुरंगी चालें चलते रहेंगे। हमें इस हिदायत को कि **"पहले तो विध्वंस ही होना चाहिए, और विध्वंस की प्रक्रिया के दौरान निर्माण स्वाभाविक रूप से होता जाता है,"** लागू करते रहना चाहिए और पार्टी के भीतर पूंजीवादी रास्ता अपनाने वाले मुट्ठीभर चोटी के कर्ताधर्ता लोगों तथा पूंजीपति वर्ग के प्रतिक्रियावादी विश्व-दृष्टिकोण का खण्डन करते रहना चाहिए।

सर्वहारा क्रान्तिकारियों की पांतों के तमाम साथियों को माओ त्से-तुङ विचारधारा के महान लाल झंडे को बुलंद रखना चााहिए, माओ त्से-तुङ विचारधारा पर दृढ़तापूर्वक अमल करना चाहिए और ऊंचे दर्जे की सर्वहारा सिद्धांतवादिता पर डटे रहना चाहिए। उन्हें प्रतिक्रान्तिकारी संशोधनवादी कार्यदिशा का, जिसका प्रतिनिधित्व चीन का ख्रुश्चेव करता है, खण्डन करना चाहिए, तथा उन्हें दक्षिणपंथी अवसरवाद का और उस प्रतिक्रियावादी विचारधारा का, जिसका बाह्य रूप "वामपंथी" किन्तु अन्तर्वस्तु दक्षिणपंथी है, खण्डन करना चाहिए। उन्हें मार्क्सवाद-लेनिनवाद विरोधी, माओ त्से-तुङ विचारधारा विरोधी तमाम प्रतिक्रियावादी गुटों का खण्डन करना चाहिए, अराजकतावाद, पहाड़ी किले की तरह दुर्भेद्य गुट बनाने की मनोवृत्ति, संकीर्णतावाद और पूंजीपति वर्ग तथा अन्य सभी शोषक वर्गों की विचारधारा की तमाम अभिव्यक्तियों का खण्डन करना चाहिए। उन्हें क्रान्तिकारी व्यापक आलोचना व खण्डन के आन्दोलन को अन्त तक चलाना चाहिए और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति में चौतरफा विजय प्राप्त करने के लिए विचारधारात्मक रूप से मार्ग प्रशस्त कर देना चाहिए, जिससे माओ त्से-तुङ विचारधारा की महान लाल पताका सभी मोर्चों पर बुलन्द रूप से लहराने की गारण्टी हो जाए।

(3)

महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के आन्दोलन के दौरान, सर्वहारा क्रान्तिकारियों और व्यापक क्रान्तिकारी जन-समुदाय द्वारा कायम किए गए क्रान्तिकारी महान संश्रय के आधार पर, एक बिलकुल नई क्रान्तिकारी कमेटी का सृजन हुआ है, जो क्रान्तिकारी "त्रिपक्षीय" संश्रय पर आधारित है। जैसा कि अध्यक्ष माओ ने बताया है: "'त्रिपक्षीय, क्रान्तिकारी कमेटी का सृजन मजदूर वर्ग और जन-समुदाय द्वारा वर्तमान महान सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान किया गया है।"

अध्यक्ष माओ की एक नवीनतम हिदायत में बताया गया है:

क्रान्तिकारी कमेटी के बुनियादी अनुभव में तीन तत्व मौजूद हैं: यह एक क्रान्तिकारी "त्रिपक्षीय" संश्रय है जिसमें क्रान्तिकारी कार्यकर्ताओं के प्रतिनिधि, सेना के प्रतिनिधि और क्रान्तिकारी जन-समुदाय के प्रतिनिधि शामिल हैं। क्रान्तिकारी कमेटी को एकीकृत नेतृत्व लागू करना चाहिए, प्रशासन के दोहरे ढांचों को खत्म कर देना चाहिए, "बेहतर फौज और सरल प्रशासन" की नीति का अनुसरण करना चाहिए तथा एक ऐसे क्रान्तिकारी नेतृत्वकारी ग्रुप को संगठित करना चाहिए जो जन-समुदाय के साथ घनिष्ठ सम्पर्क रखता हो।

माओ त्से-तुङ विचारधारा के मार्गदर्शन में, इस तरह की क्रान्तिकारी कमेटी में उस क्रान्तिकारी जन-समुदाय के प्रतिनिधि, जिसने क्रान्तिकारी महान संश्रय कायम कर लिया है, और जन-मुक्ति सेना के प्रतिनिधि तथा क्रान्तिकारी नेतृत्वकारी कार्यकर्ताओं के प्रतिनिधि शामिल होते हैं। यह सर्वहारा क्रान्तिकारियों और व्यापक क्रान्तिकारी जन-समुदाय द्वारा, जिसने सर्वहारा अधिनायकत्व के अन्तर्गत क्रान्ति को जारी रखने के बारे में अध्यक्ष माओ द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत को हृदयंगम कर लिया है, पार्टी के भीतर पूंजीवादी रास्ता अपनाने वाले मुट्ठीभर कर्ताधर्ता लोगों के हाथ से नीचे से ऊपर की ओर सत्ता छीनने के लिए चलाए गए संघर्ष की एक शानदार उपलब्धि है। इसने राज्य के मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धांत को अत्यधिक समृद्ध व विकसित बनाया है।

सर्वहारा वर्ग के श्रेष्ठ तत्व, जो जन-समुदाय के आन्दोलन में आगे आए हैं, राजकीय प्रशासन में प्रत्यक्ष रूप से भाग ले रहे हैं; इस तरह का सत्ताधारी संगठन मजदूरों और किसानों के व्यापक मेहनतकश जन-समुदाय के बुनियादी हितों का प्रतिनिधित्व करता है तथा जन-समुदाय के साथ घनिष्ठ और व्यापक सम्पर्क बनाए रखता है। इससे तमाम स्तरों के हमारे नेतृत्वकारी संगठनों को अपना क्रान्तिकारीकरण करने तथा ऐसे सत्ताधारी संगठन बन जाने में, जो क्रान्तिकारी हों, सर्वहारा अधिकार व प्रतिष्ठा से युक्त हों, जन-समुदाय के साथ घनिष्ठ सम्पर्क बनाए रखते हों तथा जीवन-शक्ति से ओतप्रोत हों, भारी मदद मिलेगी। इस तरह की क्रान्तिकारी कमेटी ने, जो सर्वहारा अधिनायकत्व

की बुनियादी शक्तियों (क्रान्तिकारी जन-समुदाय के प्रतिनिधियों), उसके सुदृढ़ स्तम्भ (जन-मुक्ति सेना के प्रतिनिधियों) और उसके नेतृत्वकारी केन्द्र (क्रान्तिकारी कार्यकर्ताओं के प्रतिनिधियों) को घनिष्ठ रूप से एकताबद्ध कर देती है, सेना और जनता के बीच की एकता को, सेना और सरकार के बीच की एकता को तथा कार्यकर्ताओं और जन-समुदाय की एकता को मजबूत बना दिया है, तथा सर्वहारा अधिनायकत्व को सुदृढ़ बना दिया है, जिससे हमारे सर्वहारा अधिनायकत्व के राजकीय संगठन समाजवादी आर्थिक आधार की जरूरतों को तथा सर्वहारा अधिनायकत्व को सुदृढ़ बनाने और पूंजीवाद की पुनर्स्थापना की रोकथाम करने की आवश्यकता को और ज्यादा अच्छी तरह पूरा कर सकेंगे।

अध्यक्ष माओ ने काफी पहले ही हमें यह शिक्षा दी थी:

जनता के व्यापक जनवाद के बिना सर्वहारा अधिनायकत्व को सुदृढ़ नहीं बनाया जा सकता तथा राजनीतिक सत्ता तब भी अस्थिर ही बनी रहेगी। जनवाद के बिना, जन-समुदाय को जागृत किए बिना तथा जन-समुदाय द्वारा की जाने वाली निगरानी के बिना, प्रतिक्रियावादियों और बुरे तत्वों पर कारगर रूप से अधिनायकत्व लागू करना अथवा उनका कारगर रूप से सुधार करना असंभव है; वे लोग गड़बड़ी करना जारी रखेंगे, तथा पुनर्स्थापना की संभावना फिर भी बनी रहेगी। इस प्रश्न के बारे में हमें सतर्क रहना चाहिए और इस पर साथियों को ध्यानपूर्वक विचार करना चाहिए। (1962 में 7,000 व्यक्तियों की मीटिंग में दिए गए भाषण से उद्धृत)

महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति ने जन-समुदाय को पूर्ण रूप से जागृत कर दिया है। व्यापक क्रान्तिकारी जन-समुदाय सर्वहारा राजनीतिक सत्ता को सुदृढ़ बनाने की बड़ी समस्या पर अत्यधिक ध्यान दे रहा है तथा वर्ग-शत्रु पर अधिनायकत्व लागू करने में सक्रिय भूमिका अदा कर रहा है। यह एक ऐसा अधिनायकत्व है जिसे विशाल बहुसंख्यक लोगों द्वारा मुट्ठीभर अल्पसंख्यक लोगों पर लागू किया जाता है, एक ऐसा अधिनायकत्व है जिसे सर्वहारा वर्ग और व्यापक जन-समुदाय द्वारा पूंजीपति वर्ग और तमाम प्रतिक्रियावादियों पर लागू किया जाता है, तथा यह एक ऐसा अधिनायकत्व है जिसे सर्वहारा वर्ग की राजनीतिक पार्टी के नेतृत्व में जन-समुदाय द्वारा लागू किया जाता है। महान सांस्कृतिक क्रान्ति में कदम-ब-कदम चौतरफा विजय हासिल कर लेने और सभी स्तरों पर क्रान्तिकारी कमेटियों की स्थापना, उनकी समुन्नति और उनका विकास हो जाने के साथ-साथ ही सर्वहारा अधिनायकत्व, जिसमें व्यापक जन-समुदाय जागृत होकर भाग लेता है, अधिकाधिक क्रान्तिकारी शक्ति प्रदर्शित करने लगेगा।

(4)

महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के जन-आन्दोलन का महान ऐतिहासिक योगदान शानदार व अमिट है।

महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के जन-आन्दोलन की विजय को रोका नहीं जा सकता।

मुट्ठीभर वर्ग-शत्रु, जिनके दिलों में हमारे प्रति घोर वर्ग-दुश्मनी भरी हुई है, अपने सर्वनाश के बिलकुल नजदीक पहुंच जाने पर भी अपनी हार मानने को तैयार नहीं, तथा वे क्रान्तिकारी जन-आन्दोलन का बड़े पागलपन के साथ विरोध कर रहे हैं और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की महान जीतों को मिटाने की नाकाम कोशिश कर रहे हैं। लेकिन इतिहास का नियम निमर्म होता है तथा उनकी इच्छा से स्वतंत्र रहकर संचालित होता है। ये लोग चाहे कितनी ही अपराधपूर्ण साजिशें व तोड़फोड़ करने की कोशिश क्यों न करें और दक्षिणपंथी भटकाव की तरफ ले जाने वाले जहरीले रुझान को, जो सही फैसलों को पलटने की कोशिश करता है, पैदा करने की चाहे कितनी ही कोशिश क्यों न करें, अन्त में, वे क्रान्तिकारी जन-आन्दोलन द्वारा कुचल कर अवश्य खत्म कर दिए जाएंगे।

हमारी महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति में पिछले दो वर्षों के दौरान हासिल की गई महान जीतों का प्रभाव समूची दुनिया में फैल गया है, तथा तमाम देशों की क्रान्तिकारी जनता के जुझारू संकल्प को प्रेरित कर रहा है। हम देख सकते हैं कि महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति ने उन देशों में, जहां साम्राज्यवादियों और उनके गुर्गों का शासन कायम है, तथा उन देशों में, जहां संशोधनवादी गद्दार गुटों का शासन कायम हैं, क्रान्तिकारी जन-आन्दोलन को आगे बढ़ाने में एक निश्चित भूमिका अदा की है। महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति ने, जिसका मार्गदर्शन माओ त्से-तुङ विचारधारा कर रही है, साहस के साथ संघर्ष करने और साहस के साथ विजय प्राप्त करने के लिए समूची दुनिया की क्रान्तिकारी जनता की वीरता को जागृत कर दिया है। इसे सारी दुनिया के मार्क्सवादी-लेनिनवादियों और क्रान्तिकारी जन-समुदाय का उत्साह-पूर्ण समर्थन प्राप्त हुआ है।

चीन की महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति ने साम्राज्यवादियों, आधुनिक संशोधनवादियों और तमाम प्रतिक्रियावादियों के दिलों में बेहद डर, नफरत और घबराहट पैदा कर दी है। ये पूंजीवादी शहंशाह सदा इस बात पर अपनी आशाएं केन्द्रित किए हुए हैं कि चीन की महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति का "तात्कालिक सर्वनाश" हो जाएगा और चीन की सर्वहारा राजनीतिक सत्ता का "पतन" हो जाएगा। ये लोग, पिशाचों की तरह, "सांस्कृतिक क्रान्ति के भविष्य को निराशाजनक" बता कर उसे नीचतापूर्वक कोसते रहते हैं। लेकिन इन शहंशाहों के ये सुनहरे ख्वाब चीन के सर्वहारा क्रान्तिकारियों और व्यापक क्रान्तिकारी जन-समुदाय के विजयपूर्ण अभियान के लम्बे डगों के नीचे कुचल दिये गए हैं।

चीन की महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की उमड़ती हुए प्रचंड धारा तमाम रुकावटों को दूर करती हुई शक्तिशाली रूप से आगे बढ़ती जा रही है।

महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति में चौतरफा विजय प्राप्त करने की महत्वपूर्ण घड़ी हमारे सामने है। हमें अब भी अनेक कठिन संघर्ष चलाने हैं।

इस नई परिस्थिति में, हमें अध्यक्ष माओ की शिक्षाओं का अनुसरण करना चाहिए, अहंकार और उतावलेपन से सतर्क रहना चाहिए और एक जीत से दूसरी जीत की ओर आगे बढ़ना चाहिए। हमें अपने अनुभव का लगातार निचोड़ निकालते रहना चाहिए, जांच-पड़ताल और अध्ययन के कार्य की ओर हमेशा गहराई से ध्यान देना चाहिए, वर्ग-संघर्ष में प्रकट होने वाले नए रुझानों, नई विशेषताओं और नई समस्याओं के प्रति सजग रहना चाहिए, और संघर्ष की मुख्य दिशा पर दृढ़तापूर्वक कायम रहना चाहिए।

हमें सर्वहारा सदर-मुकाम के नेतृत्व की, जिसके नेता अध्यक्ष माओ हैं, दृढ़तापूर्वक रक्षा करनी चाहिए, सर्वहारा सदर-मुकाम को नष्ट करने की वर्ग-शत्रुओं की तमाम साजिशों और स्कीमों का पर्दाफाश कर देना चाहिए तथा उन्हें धूल में मिला देना चाहिए। हमें अपनी वर्ग-पांतों को और ज्यादा शुद्ध तथा सुदृढ़ बनाना चाहिए, अपने संश्रयकारियों के साथ एकता कायम करनी चाहिए तथा उन्हें अपने पक्ष में कर लेना चाहिए, और अपने वर्ग-शत्रु पर प्रहार करते रहना चाहिए। हमें दुश्मन और अपने बीच के अन्तरविरोधों तथा जनता के बीच के अन्तरविरोधों, इन दो तरह के अन्तरविरोधों के बीच स्पष्ट रूप से फर्क करना चाहिए। जहां तक क्रान्तिकारी पांतों के अंदर होने वाली गलतियों का संबंध है, उनके बारे में हमें "**भावी गलतियों से बचने के लिए पिछली गलतियों से सबक सीखने और मरीज को बचाने के लिए उसकी बीमारी का इलाज करने**" की अध्यक्ष माओ की पहले से चली आई नीति पर कायम रहना चाहिए।

हमें दो कार्यदिशाओं के बीच के संघर्ष के बुनियादी मसले से प्रारंभ होकर क्रान्तिकारी व्यापक आलोचना व खंडन को और अधिक गहराई से करना चाहिए। हमें दक्षिणपंथियों या उग्र "वामपंथियों" द्वारा पेश किए जाने वाले तमाम प्रतिक्रियावादी पूंजीवादी विचारों का खंडन करना चाहिए, दक्षिणपंथी अवसरवाद, दक्षिणपंथी आत्मसमर्पणवाद और दक्षिणपंथी फूटपरस्ती के विरुद्ध दृढ़तापूर्वक संघर्ष करना चाहिए और दक्षिणपंथी

(शेष पृष्ठ पर)

हॉब्सबॉम की शताब्दी समीक्षा

❑
जस्टिन रोजेनबर्ग

बीसवीं शताब्दी की चुनौती

1902 में **रैशनलिस्ट प्रेस एसोसिएशन** ने *ए न्यू कैटिकिज़्म* नाम से, एक पर्चा जारी किया था। इसे क्लासिकी **रोमन कैथोलिक** आस्था के विवरण के आधार पर तैयार किया गया था, और उसी की भांति, इस दस्तावेज में सवालों और जवाबों की एक लम्बी फेहरिस्त दी गयी थी। लेकिन, इसमें जिस आस्था की बात दुहरायी गयी थी, वह **ईसाइयत** की आस्था नहीं, बल्कि धर्मनिरपेक्ष मानवीय विवेक की आस्था थी। पर्चे की शुरुआत एक भावप्रवण समर्पण के साथ की गयी थी:

''हम इस बीसवीं शताब्दी को शांति, स्वतंत्रता और प्रगति के नाम समर्पित करते हैं! हमारी कामना है कि यह **जनता की शताब्दी** बने। हम इस नयी शताब्दी से एक अंधविश्वास रहित धर्म की अपेक्षा करते हैं; युद्धरहित राजनीति की अपेक्षा करते हैं; भौतिकवाद रहित विज्ञान और कला की अपेक्षा करते हैं; और कष्ट या पाप से रहित समृद्धि की अपेक्षा करते हैं।''

अब तिरानबे वर्ष बाद, इस बीसवीं शताब्दी के आखिरी मुकाम पर पहुंच कर, हमारे लिए निश्चय ही यह नामुमकिन है कि हम इन शब्दों को बिना उस भारी विरोधाभास का एहसास किये हुए पढ़ लें, जो हमारे समय में वास्तव में पैदा हुआ है। शांति, स्वतंत्रता, और प्रगति के नाम समर्पित यह शताब्दी चाहे और जो कुछ भी रही हो, एक ऐसी शताब्दी तो साबित हुई ही है, जिसमें इतने बड़े पैमाने पर विश्वयुद्ध लड़े गये कि उसके पहले कभी ऐसी मिसाल नहीं मिलती, जिसमें ऐसे निरकुंश तंत्र पैदा हुए, जिन्होंने अपनी उत्पीड़ित आबादियों पर आंतक का ऐसा कहर बरपा किया जिसका पीछे कोई उदाहरण नहीं मिलता; और कुछ मायनों में तो एक ऐसी आम बर्बरता की वापसी भी हुई (और वह भी संवैधानिक राज्यों में)जो उन्नीसवीं शताब्दी के हमारे निरंकुश पूर्वजों को भी मात कर देने वाली थी।

फिर तो, इस विरोधाभास को महसूस करते हुए, हम यह सवाल उठाये बिना नहीं रह सकते: कि ऐसा क्यों हुआ कि यह बीसवीं शताब्दी **रैशनलिस्ट प्रेस एसोसिएशन** की शुभंकर भविष्यवाणियों से इतनी भिन्न साबित हो गयी? बहरहाल, यह महज इस बीत रही शताब्दी की तारीख द्वारा मुहैया किया गया अवसर भर नहीं है, जो पीछे मुड़कर देखने की इस मन:स्थिति को उकसा रहा है। कारण कि ऐतिहासिक **कम्युनिज्म** के जाहिरा तौर पर एक बारगी और पूर्ण पराभव ने, जिसकी परिणति 1991 में **सोवियत संघ** के औपचारिक विघटन के रूप में हुई, एक अन्त होने , एक ऐतिहासिक कालखण्ड के अब अन्त हो जाने और अपरिहार्य तौर पर अतीत में गति कर जाने, के कहीं अधिक गहरे एहसास से भर दिया है। और इसीलिए एक व्यापक भावना यह पैदा हुई है कि अन्तत: हमें अपने समय की इस उथल-पुथल पर पीछे मुड़कर देखते हुए उस चीज पर भी गौर करना ही होगा, जिसे "इतिहासकार का गुप्त अस्त्र, यानी सिंहावलोकन" कहा गया है। एक ऐतिहासिक युग की एकता खटाई में पड़ चुकी है। अब वक्त आ गया है कि जो कुछ घटित हुआ है, उसे स्पष्ट किया जाये, और उसका नैतिक और राजनीतिक तथा समाजशास्त्रीय अर्थ निकाला जाय।

1990 के इस बौद्धिक माहौल में इस कार्यभार की एक खास प्रासंगिकता है। कारण कि ऐसा लगता है कि इस बीसवीं शताब्दी के प्रतिघात इतने जबर्दस्त हैं, और इसकी घटनाओं के क्रम को इतने भारी रूप में उलट-पुलट रहे हैं (और सर्वोपरि रूप से इसके अन्त का जो रवैया है उससे भी यही लगता है) कि इन सारी बातों ने प्रगति में **प्रबोधन** की बुनियादी आस्था पर ही सवाल खड़ा कर दिया है। इसकी जगह ज्यादा से ज्यादा हमें एक उत्तर-आधुनिकतावादी मोहभंग देखने को मिल रहा है, जो आधुनिक विश्व-इतिहास के विकास-क्रम की एक सुव्यवस्थित व्याख्या करने वाले किसी भी प्रयास को – खासतौर से, **मार्क्सवादी** प्रयास को– खारिज करता है (और उसे **भव्य आख्यानों (ग्रैण्ड नैरेटिव्स**)से जोड़ता है)। इसके साथ, राजनीतिक प्रतिबद्धता के सारे सार्वभौमिकतावादी रूपों से – लेकिन, खासतौर से, समाजवादी रूपों से (जिन्हें अब अन्तर्निहित तौर पर दमनकारी कहा जा रहा है)– पीछे लौटने की बात भी कही जा रही है।

वास्तव में, इस दोहरे संशयवाद के भीतर, एक निश्चित ऐतिहासिक दावा छिपा हुआ है। दावा यह है कि यह समाप्त हो रहा कालखण्ड महज इस बीसवीं शताब्दी की उथल-पुथल को ही अभिलक्षित नहीं करता, बल्कि यह स्वयं **प्रबोधन** के दो सौ वर्षों के राजनीतिक इतिहास की – अर्थात, उस कालखण्ड की उथल-पुथल को भी अभिलक्षित करता है जिसमें यह परिलक्षित हुआ था कि विवेक की प्रगति और इतिहास की गति, दोनों ही उन सामाजिक परिवर्तनों की ओर निर्दिष्ट थीं, जो भविष्य में अधिक स्वतंत्र और अधिक न्यायपूर्ण समाजों को जन्म देने वाले थे। "उत्तर-आधुनिकता" के किसी भी दावे में यह विश्वास निहित है कि **प्रबोधन** का यह "आधुनिक'' युग अब बीत चुका है। अगर इस ऐतिहासिक दावे को इस बीसवीं शताब्दी के घटना-क्रम के संदर्भ में सही सिद्ध किया जा सके, तो निश्चय ही यह उत्तर-आधुनिकतावाद के पक्ष में एक सबसे मजबूत *बात* होगी। और, अगर नही, तो इससे जुड़े संशयवाद और पराजयवाद का समूचा शब्दाडम्बर बौद्धिक और राजनीतिक दिशाहीनता का ही लक्षण सिद्ध होगा – जो निश्चय ही, आज के समय का एक ऐसा लक्षण है, जिसके पास आज के समय को समझने के लिए कोई आधार नहीं हैं।

हॉं, तो क्या इस बीसवीं शताब्दी का रेकार्ड सचमुच ऐसे दावों का औचित्य- प्रतिपादन करता हैं? क्या इसका घटना-क्रम इतिहास की **मार्क्सवादी**

दि एज ऑफ एक्सट्रीम्स : ए हिस्ट्री ऑफ दि वर्ल्ड, 1914-1991

● **एरिक हॉब्सबॉम**

न्यूयार्क : पैन्थिऑन, 1995

यह पुस्तक विश्व इतिहास पर एरिक हॉब्सबॉम की पुस्तक त्रयी — ***दि एज ऑफ रिवोल्यूशन, 1789-1848; दि एज ऑफ कैपिटल, 1848-1875*** और ***दि एज ऑफ एम्पायर, 1875-1914*** की अगली कड़ी है। ये तीनों पुस्तकें भारत में **'रूपा'** द्वारा प्रकाशित हैं।

समझ को निश्चित तौर पर खारिज करता है? और क्या अब हम एक उत्तर-आधुनिक युग में जी रहे हैं, जिसमें समाजवादी राजनीति बीते युग की बात हो चुकी है? इन सवालों का जवाब देने के लिए, हमें सबसे पहले पीछे मुड़कर देखना होगा, और इस पूरी शताब्दी की समीक्षा करनी होगी। **एरिक हॉब्सबॉम** की *द एज ऑफ एक्स्ट्रीम्स: ए हिस्ट्री ऑफ द वर्ल्ड, 1914-1991* का प्रकाशन ऐसी ही समीक्षा करने के लिए हमें एक आरंभिक अवसर प्रदान करता है।[1]

स्पष्ट तौर पर कहें तो, अभी एक "सहभागी अवलोकनकर्ता" के अलावा, और किसी के द्वारा इस बीसवीं शताब्दी का इतिहास लिखना संभव नहीं है। इसी लिए द *एज ऑफ एक्स्ट्रीम्स* भी "असाधारण रूप से असमान स्थापनाओं पर ही आधारित है" (पृ. x)। इसकी तमाम रिक्तताएं और लक्षण **हॉब्सबॉम** की ही निजी कल्पना के पूर्वाग्रहों को प्रतिबिम्बित करती हैं। फिर भी, सिंहावलोकन का यह प्रयास प्रबोधनकारी है। कारण कि उनकी समीक्षा ऐतिहासिक परिदृश्य की रोशनी में इस बीसवीं शताब्दी के आरंभ से ही घटना-क्रम के जिस अनिश्चित विकास को दर्शाती है, उससे इस बीसवीं शताब्दी का घटना-क्रम निश्चय ही विरोधाभासी प्रतीत होता है, लेकिन अबोधगम्य नहीं। बेशक, इसके अंतिम समय में मानवता के सामने जो समस्याएं उपस्थित हुई हैं, वे भयानक हैं– वस्तुत: स्वयं **हॉब्सबॉम** भी उनसे उबरने की हमारी उम्मीदों के बारे में, गहरे रूप से निराशावादी हैं, लेकिन वे आंख-ओझल कर दी जाने लायक भी नहीं हैं। और, आखिरकार, जिस तरह से ये समस्याएं स्वयं पूंजीवादी विकास की प्रकृति में ही निहित हैं, उसे ठीक से समझने के लिए एक प्रगतिशील राजनीति की जरूरत तो आज भी उतनी ही वास्तविक है जितनी पहले थी। संक्षेप में कहें तो, यह समय ज्ञानशास्त्रीय संशयवाद और राजनीतिक स्वच्छंदतावाद का कतई नहीं है।

हॉब्सबॉम की शताब्दी समीक्षा

द *एज ऑफ एक्स्ट्रीम्स* पर चर्चा करने से पहले **हॉब्सबॉम** द्वारा "लम्बी उन्नीसवीं शताब्दी" पर रचित उनकी मशहूर कृतित्रयी(दि एज आफॅ रिवोल्यूशन 1789-1848, दि एज आफॅ कैपिटल 1848-1875 तथा दि एज आफॅ एम्पायर 1875-1914 –सम्पादक) में अख्तियार किये गये उस नजरिये को याद कर लेना उपयोगी होगा, जिसकी विरासत को यह किताब आगे बढ़ाती है। उस कृतित्रयी के शुरुआती पृष्ठों में **हॉब्सबॉम** ने आधुनिक विश्व-इतिहास की मार्क्सवादी समझ का एक क्लासिकीय विवरण दिया था। इस विवरण में चार कुंजीभूत दावे सम्मिलित किये गये थे। पहला, आज हम जिस दुनिया को जान रहे हैं, उसकी उत्पत्ति अठारहवीं शताब्दी के अन्त की उन औद्योगिक और राजनीतिक क्रान्तियों से जुड़ी हुई है, जिनकी बदौलत इतिहास में मानव समाज के महानतम रूपान्तरण का सूत्रपात हुआ। दूसरा, यह रूपान्तरण अपने आप में एक विशिष्ट समाजशास्त्रीय चरित्र अख्तियार किये हुए है, जो इसकी गति और परिणतियों को स्पष्ट करने की कुंजी है; यह अन्य किसी भी उद्योग के प्रसार द्वारा नहीं, बल्कि पूंजीवादी उद्योग के प्रसार द्वारा संचालित है। अत: पूंजीवादी समाज की समझदारी, इसके द्वारा रचित आधुनिक दुनिया का सार्थक बोध प्राप्त करने के लिए अनिवार्य है। लेकिन तीसरा दावा यह है कि यह क्रान्तिकारी रूपान्तरण पूरी दुनिया में एकबारगी ही नहीं हो गया। इसके विपरीत, यह खास जगहों– इंग्लैण्ड और फ्रांस– में शुरू हुआ, और उसके बाद ही, वहां से, एक लम्बे कालखण्ड के दौरान, बाहर की ओर फैला। इस प्रकार, आज हम इसकी जो भूमण्डलीय परिघटना देख रहे हैं, उसमें इसका विकास (जो पूर्ण होने से अभी भी कोसों दूर है) अपने आप में सिर्फ इसके विकास की अपनी ही आन्तरिक गति को नहीं, बल्कि इसके द्वारा सिलसिलेवार हासिल की गयी विजयों की गतियों, तथा तमाम प्रकार के अन्य समाजों के असमान रूपान्तरण को भी समेटे हुए है। कुल मिलाकर, आधुनिक विश्व-इतिहास इसी संयुक्त और असमान विकास की निरन्तर बढ़ती प्रक्रिया का इतिहास रहा है (और इसीलिए इसे इसी रूप में समझने की जरूरत भी है): इसकी प्रमुख घटनाएं उन संघर्षों से जुड़ी हुई हैं, जो सारी दुनिया में इसके बाहरी विस्तार और प्रभुत्व, एवं शोषण की इसकी भीतरी संरचनाओं के रखरखाव, दोनों ही से उत्पन्न होते रहे हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी पर रचित अपनी कृतित्रयी में, **हॉब्सबॉम** ने इस प्रक्रिया का, **प्रथम विश्वयुद्ध** के आरंभ तक अवलोकन किया। और, अब उसी अवलोकन को आगे बढ़ाते हुए, वह इस बीसवीं शताब्दी के उथल-पुथल और रूपान्तरणों की व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। इस शताब्दी पर एक "विहंगम दृष्टि" डालते हुए, उन्हें ऐसा मालूम पड़ता है कि इसमें तीन बिल्कुल स्पष्ट ऐतिहासिक कालखण्ड या संयोग रहे हैं। उथल-पुथल के आरंभिक काल में (1914 से 1945 तक के **महाविपदा** के युग में), उन्नीसवीं शताब्दी की उदार पूंजीवादी दुनिया विश्वयुद्ध और आम संकट में विलीन हो गयी। इसके बाद, एक मध्यवर्ती काल (1945-1973 तक का **स्वर्ण युग**) आया, जिसमें एक पुनर्गठित पूंजीवाद, जो **सोवियत संघ** की मौजूदगी द्वारा प्रतिरुद्ध और प्रतिसंतुलित था, एक अभूतपूर्व विस्तारीकरण के चरण में प्रवेश कर गया। लेकिन, अन्तत: इस **स्वर्ण युग** ने स्वयं ही एक तीसरे कालखण्ड (1973-1991 के भूस्खलन) का मार्ग प्रशस्त कर दिया, जिसकी विशिष्टता थी नियंत्रण की नयी क्षति और आंशिक ध्वंस। बीसवीं शताब्दी की इस विलक्षण गति को विशेषीकृत करने वाले इस समूचे आवर्तन को स्पष्ट करना ही इस किताब का केन्द्रीय मकसद है।

महाविपदा का युग, 1914-1945

"पूंजीवादी समाज एक दुविधा का शिकार है," **रोज़ा लक्ज़ेमबर्ग** ने **प्रथम विश्व युद्ध** के मध्य में ही लिखा था, जो "या तो समाजवाद की ओर गति करेगा या बर्बरता में लौट जायेगा।"[2] उन्हें निश्चित तौर पर यह लगा होगा कि "उन्नीसवीं शताब्दी की सभ्यता की भव्य अट्टालिका विश्वयुद्ध की ज्वाला में भस्म हो गयी थी।"(पृ.22)[3]। फिर भी इसके बाद जो मुसीबतें आयीं, उनका विशिष्ट समाजशास्त्रीय निहितार्थ "बर्बरता" शब्द से ध्वनित मुसीबतों से कहीं अधिक ही अनर्थकारी था। वे जाहिरा तौर पर, पूंजीवाद के एक आम संकट के नतीजों के रूप में पैदा हुई थीं। निश्चय ही, **महाविपदा** के इस युग में जो नवोदित व्यवस्थाएं– साम्यवाद, फासीवाद और **संयुक्त राज्य अमेरिका** की **"न्यू डील"**– उभर कर दृश्यपटल पर आयीं, वे इस संकट की प्रतिक्रिया के तौर पर ही थीं। (क्या कोई यह कल्पना भी कर सकता है कि **सोवियत संघ** का उद्‌भव, प्रभावी तौर पर अपने पूंजीवादी चरित्र वाली इस ऐतिहासिक दुनिया के अतिरिक्त किसी और दुनिया में भी संभव हो सकता था?) और पूंजीवाद के इस आम संकट का यही खूनी समाधान होना था, जो इस अल्पावधि बीसवीं शताब्दी के समूचे घटना-क्रम को निर्धारित करने वाला था– और इस प्रकार, "बीसवीं शताब्दी के इतिहास और उसके निर्णायक संवेग की धुरी" निर्मित करने वाला था(पृ.7)। **प्रथम विश्वयुद्ध** अग्रणी पूंजीवादी शक्तियों के बीच एक अन्तर साम्राज्यवादी टकराव के तौर पर शुरू हुआ था। परन्तु इसने बड़े-बड़े झटकों का एक सिलसिला चालू हो जाने का रास्ता साफ कर दिया, जो **महाविपदा** के **युग** में, स्वयं पूंजीवाद के अस्तित्व के लिए ही खतरा बनने वाले थे। जैसे-जैसे युद्ध खिंचता गया, वहशियाना कत्लेआम और गहराते आर्थिक दिवालियेपन ने, एक साथ मिलकर पूरे यूरोपीय महाद्वीप में अस्थिरता की एक लहर पैदा कर दी, जिसने अन्तत: **"व्लादीवोस्तक** से **राइन** तक के सारे राज्यों को ध्वस्त कर दिया"(पृ.67)। यह क्रान्तिकारी लहर **मध्य यूरोप** में तो रोक दी गयी, परन्तु पराजित रूस में एक प्रचण्ड वेगवाही कम्युनिस्ट चुनौती के रूप में उठ खड़ी हो गयी, जो गृह-युद्ध और बाहरी सैनिक हस्तक्षेप द्वारा उखाड़ फेंके जाने के विरूद्ध दुर्द्धर्ष संघर्ष करने लगी। अब इसके बाद से, आगे पूंजीवाद को, घरेलू और **अक्टूबर क्रांति** द्वारा उपस्थित अन्तरराष्ट्रीय खतरों के दोहरे दबाव में ही, अपनी मौजूदगी को बरकरार रखने की कोशिश करते हुए जीना था। नतीजतन 1933 से 1945 तक के वर्षों को खासतौर से अपवाद के रूप

में छोड़ते हुए, इस समूची **अल्पावधिक बीसवीं शताब्दी** की अन्तरराष्ट्रीय राजनीति को, **अक्टूबर क्रान्ति** से लेकर अबतक, सबसे अच्छे ढंग से सामाजिक क्रान्ति के विरुद्ध पुरानी व्यवस्था की शक्तियों के निरन्तर संघर्ष के रूप में ही समझा जा सकता है (पृ.56)।

वास्तव में, पूंजीवाद की भू-राजनीतिक कब्र खोदने वाले और उसके ऐतिहासिक उत्तराधिकारी के रूप में **सोवियत संघ** की अपनी छवि कभी पूर्णता को न पा सकी। असाधारण पूंजीवादी विकृति की दशाओं में सृजित हुई इसकी तकदीर क्रान्ति के पश्चिम की ओर जर्मनी तक फैलने में विफल रह जाने के कारण अवरुद्ध हो गयी। इससे **बोल्शेविक** बाहरी समर्थन से वंचित रह गये, और उनके सामने विचित्र दुविधाएं इस रूप में खड़ी हो गयीं कि उन्होंने पूंजीवाद-विरोधी क्रान्ति करके जो सत्ता कायम की थी, उसके अन्तर्गत किसानों का एक विशाल प्राक्-पूंजीवादी साम्राज्य था। (यहां तक कि 1926 तक, किसानों की संख्या पूरी आबादी के 82% से ऊपर थी।) अन्ततः इन दुविधाओं ने ही यह सुनिश्चित कर दिया कि **सोवियत** साम्यवाद को, किसानी अर्थव्यवस्थाओं के "आधुनिकीकरण" के लिए एक सत्तावादी स्वरूप ही ग्रहण करना होगा, बजाय एक ऐसा समाज बनने के जो उदार पूंजीवाद से आगे बढ़कर, भविष्य की अपनी एक छवि प्रस्तुत करता। जैसा कि **हॉब्सबॉम** का कहना है: "**अक्टूबर क्रान्ति** की त्रासदी मुख्य रूप से यह थी कि यह अपने तरह का केवल निर्मम, बर्बर, प्रभुतावादी समाजवाद ही पैदा कर सकता था" (पृ. ,498)।

बहरहाल, 1920 और 1930 के संकटग्रस्त दशकों में, यूरोपीय राज्यों की सरकारें इसे ज्यों का त्यों स्वीकार कर लेने की स्थिति में नहीं थीं। और **अक्टूबर क्रान्ति** ने दोहरा खतरा यह पैदा कर दिया कि **पश्चिमी जगत** में जो राजनीतिक तनाव और अस्थिरता चल रही थी, उसे **वर्साइ** समझौते की शर्तों ने और भी बढ़ा दिया। जर्मनी पर जो भारी जुर्माने लादे गये, उससे यह समझौता एक हुक्मनामा बन गया, और **संयुक्त राज्य अमेरिका** द्वारा इससे प्रभावी तौर पर हाथ खींच लेने के कारण, यह एक अस्थिर और न चल सकने लायक **आंग्ल-फ्रांसीसी** संयुक्ताधिकार पर ही आश्रित रह गया। इस बीच, ऋण की अन्तर महाद्वीपीय संरचना हरजानों की व्यवस्था से बाहर जा चुकी थी, और इसने युद्धोत्तर वसूली की कठिनाइयों को तो बढ़ाया ही, साथ ही, यह अगले बड़े झटके– 1929-1931 की **महामंदी** का कारण और उसकी प्रचण्डता को बढ़ाने वाली भी साबित हुई। इस **महामंदी** के कारण विश्व की अर्थव्यवस्थाएं मुंह के बल गिर पड़ीं– अन्तरराष्ट्रीय व्यापार में 60 प्रतिशत की गिरावट हो गयी, जिसके फलस्वरूप समूचे **यूरोप** और **अमेरिका** में बेरोजगारों की संख्या में छलांग लगाकर बढ़ोत्तरी हो गयी। साथ ही, इसने युद्धावकाश काल में घटाटोप की तरह घहराते जा रहे **दक्षिणपंथी** सत्तावाद के मुकाबले, **यूरोप** की संवैधानिक उदारतावाद की पीछे हटने की प्रवृत्ति को और बढ़ा दिया।

विश्वयुद्ध, कम्युनिस्ट क्रान्ति, एक गैर-टिकाऊ शांति, आर्थिक महामंदी, उदारतावाद का पीछे हटना: पूंजीवादी विश्व में गहराते जा रहे संकट की इसी गतिमान ऐतिहासिक श्रृंखला में, **हॉब्सबॉम** एक राजनीतिक गति के रूप में, फांसीवाद के उद्भव और संवेग को स्थित करते हैं। साम्यवाद के विरुद्ध (देश स्तर पर और अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर भी) एकबारगी एक प्रचंड प्रतिक्रांति के रूप में, और उदार संवैधानिक राजनीति को पूर्ण नकार देने वाले, ऐतिहासिक फासीवाद ने स्वयं **प्रबोधन** की सार्वभौमिकतावादी, बुद्धिवादी, जनतांत्रिक और समतावादी उच्चाकांक्षाओं को एकदम नकार दिया। इसी कारण **द्वितीय विश्वयुद्ध** – जो "तकरीबन निश्चय ही इतिहास की सबसे बड़ी [महाविपदा] था"– पहले **विश्वयुद्ध** से एकदम भिन्न ऐतिहासिक अर्थ रखता है, भले ही दोनों में जर्मन प्रभुत्व की दावेदारी एक ही समान रही (पृ.52)। **महाविपदा का युग** अन्तरसाम्राज्यवादी युद्ध के साथ ही शुरू हो गया था। और इसका अन्त, तीन दशक बाद, "एक तरफ अठारहवीं शताब्दी के **प्रबोधन** और महान क्रान्तियों के उत्तराधिकारियों, [और] दूसरी तरफ, उनके विरोधियों" के बीच एक नये भविष्य का उद्घोष करने वाले संघर्ष के रूप में हुआ (पृ.144)।

इस आम संकट ने सुस्थिर उन्नीसवीं शताब्दी की दुनिया का– एक ऐसी दुनिया को जो औपनिवेशिक साम्राज्यों के प्रभुत्व में थी और जिसका केन्द्र यूरोप था – हमेशा-हमेशा के लिए नष्ट कर दिया। युद्ध की विभीषिकाओं में मरणासन्न रूप से जर्जर हो चुके ये बड़े-बड़े साम्राज्य 1945 के बाद महज तीन दशकों में ही विलीन हो गये। इस बीच स्वयं यूरोप को भी दो नयी "महाशक्तियों" ने विभाजित करके कब्जा कर लिया। "संभवत: इन दोनों विश्वयुद्धों का सर्वाधिक दीर्घकालिक आर्थिक परिणाम", जैसा कि **हॉब्सबॉम** का कहना है, "यह हुआ कि **संयुक्त राज्य अमेरिका** की अर्थव्यवस्था को, इस पूरी **अल्पावधिक बीसवीं शताब्दी** के दौरान एक भूमण्डलीय वर्चस्व मिल गया" (पृ.48)। **सोवियत** सत्ता भी इस आम संकट की भट्ठी में झोंक दी गयी थी, जो सैनिक पराभव के परिणामस्वरूप निर्मित हुई थी, आर्थिक **महामंदी** और **महाविध्वंस** के दौरान उद्योगीकृत हुई थी, और फासीवाद पर अपनी विजय के चलते अपना भारी सामरिक महत्व प्रतिपादित करती हुई आगे बढ़ने लगी थी। इस प्रकार, **महाविपदा का युग** आधुनिक विश्व में उस केन्द्रीय राजनीतिक टकराव को जन्म देकर खत्म हुआ, जो विश्व-राजनीति के भू-राजनीतिक रंगमंच पर पहली बार पूंजीवाद और कम्युनिस्ट क्रांति के बीच चलने लगा।

लेकिन इस टकराव की विरोधाभासी, आंशिक और विकृत अभिव्यक्ति ऐतिहासिक विडम्बनाओं, राजनीतिक मूर्खताओं और अनपेक्षित परिणामों से भरी हुई थी। इस संबंध में **हॉब्सबॉम** की दलील यह है कि **सोवियत संघ** उदार पूंजीवाद को नष्ट करने के बजाय, वस्तुतः उसको बचाने में ही निमित्त बन रहा था– पहले जर्मन सेना को नष्ट करने के द्वारा, और उसके बाद आर्थिक नियोजन के इस्तेमाल का पथप्रदर्शक बनने के द्वारा, जिसका एक **कीन्सियाई** रूप युद्धोत्तर पूंजीवादी विकास को सुस्थिर बनाने में मददगार बना। इसके अतिरिक्त, वह यह भी बताते हैं कि **पश्चिमी जगत** के मजदूर वर्गों ने उन सामाजिक कल्याण के कार्यक्रमों से लाभ भी उठाया, जिन्हें पूंजीवादी राज्यों ने **सोवियत** खतरे का पूंजीवादी विकास पर पड़ा यह प्रगतिशील प्रभाव बुरी तरह विरोधाभासी था, कारण कि जिस असमान विकास ने **रूस** को कमजोर कड़ी बनाया था – जो आम संकट में तड़तड़ाकर टूट गयी थी, उसी ने यह भी सुनिश्चित कर दिया था कि वह [रूस] साम्यवादी भविष्य की एक प्रगतिशील छवि नहीं प्रस्तुत कर सकेगा। इसके विपरीत, **पश्चिमी** कम्युनिस्टों की एक पीढ़ी को यह महसूस होने लगा था कि वैसे भविष्य की उनकी उम्मीदें "यूरोप के आर्थिक और सामाजिक पिछड़ेपन के वस्तुत: पर्याय कहे जाने वाले एक विस्तृत भूभाग" की मौजूदगी के साथ ही जुड़ी हुई थीं (पृ. 376) और कि वे एक ऐसी शासन-व्यवस्था के साथ जुड़ी हुई थीं, जिसने (अपने निर्मम सामूहिकीकरण कार्यक्रम और उद्धत शुद्धिकरण के जरिये) अपना भारी योगदान "बर्बरता के उस पुनर्जागरण को दिया था जो इस पूरी किताब में एक काली लकीर की भांति मौजूद है"(पृ.392)।

उसके बाद के वर्षों में, कई कम्युनिस्टों को यह लगने लगा कि इन अन्तरविरोधों को व्यवहार में हल कर पाना असंभव है – जैसा कि 1956 के बाद **सोवियत कम्युनिस्ट** समर्थक पार्टियों के दनादन खत्म होते जाने से स्पष्ट हो गया। इस कृति में, **स्तालिन** के बारे में, **हॉब्सबॉम** की समझ यह दर्शाती है कि वह अभी भी उन अन्तरविरोधों से जूझ रहे थे।[4] बहरहाल, ये समस्याएं अबूझ नहीं हैं। हम देख सकते हैं कि कैसे **महाविपदा के युग** के ये उलझाव भरे राजनीतिक परिणाम, एक ऐसे परिणाम को प्रतिबिम्बित कर रहे थे जो, **शीतयुद्ध** के रूप में, आगे शेष पूरी शताब्दी पर, एक लम्बी छाया डालने वाले थे।

स्वर्णयुग, 1945-1973

मध्य शताब्दी का यह "स्वर्ण युग" जिसमें यह अनोखी प्रतिद्वंद्विता शुरू हुई, वास्तव में तीन बड़ी ऐतिहासिक प्रक्रियाओं का संगम थी, जिसने

पूंजीवाद का, उसके दो सौ वर्षों के इतिहास में, सर्वाधिक तीव्र भौतिक विस्तार किया। दूसरी थी, यूरोपीय साम्राज्यों का विलीनीकरण जिसके फलस्वरूप औपनिवेशिक विश्व-व्यवस्था का स्थान क्रमश: सम्प्रभुता सम्पन्न राज्यों की एक प्रणाली लेती गयी। और अन्त में, तीसरी प्रक्रिया स्वयं **शीतयुद्ध** ही थी, जिसकी गुंथी हुई घरेलू और अन्तरराष्ट्रीय राजनीति में महाशक्तियां अपने मित्र राष्ट्रों के साथ पूंजीवाद और कम्युनिस्ट चुनौती के बीच की प्रतिद्वंद्विता को हवा देती रहीं। इन तीन प्रक्रियाओं के अन्तर्बन्धन और राजनीतिक एवं सैनिक प्रबंधन में ही **स्वर्ण युग** का इतिहास निहित था।

ये प्रक्रियाएं कई तरह से एक दूसरे को खुराक देती रहीं। उदाहरण के लिए, **शीतयुद्ध, लम्बी उछाल** को संभव बनाने वाला एक महत्वपूर्ण कारक था। पूंजीवादी विश्व की राजनीतिक स्थिरता को मिल रही **कम्युनिस्ट** चुनौती ने **संयुक्त राज्य अमेरिका** को भूमंडलीय आर्थिक और भू-राजनीतिक प्रणाली के प्रबंधन की एक अभूतपूर्व भूमिका में – एक ऐसी भूमिका में धकेल दिया, जो उसके **यूरोपीय** और **जापानी** प्रतिद्वंद्वियों के पुनर्निर्माण पर केन्द्रित थी। **मार्शल योजना** के प्रत्यक्ष प्रभाव क्षेत्र से बाहर, **अमेरिका** द्वारा **यूरोप** और **सुदूर पूरब** में, सैनिक आधारों के निर्माण और रखरखाव में किये जा रहे बेशुमार खर्चों ने अन्तरराष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में डॉलर के भारी बहिर्प्रभाव का अवसर प्रदान कर दिया। **शीतयुद्ध** की दो बड़ी **अमेरिकी** सैनिक कार्रवाइयों – कोरिया और वियतनाम –में इस खर्च का किया गया भारी विस्तार युद्ध के बाद, क्रमश: **जापानी** और **दक्षिण कोरियाई** अर्थव्यवस्थाओं के "उत्थान" में मील का पत्थर साबित हुआ।

इसके साथ ही, **शीतयुद्ध** ने अनौपनिवेशीकरण की प्रक्रिया पर भी एक महत्वपूर्ण प्रभाव डाला। परंपरागत उपनिवेशवाद से विचारधारात्मक विरोध रखने वाली इन दोनों महाशक्तियों की मौजूदगी से, उपनिवेशों को स्वतंत्रता मिलना अधिक आसान हो गया। **शीतयुद्ध** की अन्तर्राष्ट्रीय प्रणाली की सुस्पष्ट द्विध्रुवता, जिसमें नये राज्यों का उदय होता रहा, एक टिकाऊ भू-राजनीतिक वातावरण प्रदान करती थी, और उसका मतलब यह था कि पुराने देशी विशिष्ट वर्ग, जिनकी मान्यता उनके अपने समाजों में बहुत कमजोर पड़ चुकी थी, अब सत्ता में बने रहने के लिए बाहरी समर्थन का ही मुंह जोह सकते थे। इसके अतिरिक्त, **तीसरी दुनिया** के अपने मित्र राष्ट्रों को राजनीतिक रूप से टिकाऊ बने रहने देने के **अमेरिकी** इच्छा ने इन देशों में तटकर-संरक्षण और उद्योगों के राजकीय नियंत्रण के ऊंचे स्तरों को बर्दाश्त करते रहने के लिए विवश किया। वैसे आयात-प्रतिस्थापन पर आधारित राष्ट्रीय विकास की ये रणनीतियां स्वयं में उस लम्बी उछाल की अनुकूल दशाओं द्वारा ही संभव हुई थीं, जिसने **तीसरी दुनिया** में निर्यातों के लिए टिकाऊ तौर पर बढ़ते जाने वाले महानगरीय बाजार प्रदान कर दिये।

शीतयुद्ध की एक केन्द्रीय विशेषता – हालांकि **हॉब्सबॉम** की समीक्षा में इसकी आंशिक छानबीन ही की गयी है – इसके घरेलू और अन्तर्राष्ट्रीय पहलुओं के बीच सशक्त अन्तर्संबंध के रूप में थी। कारण कि भले ही **अमेरिका** ने **सोवियत संघ** के विरोध में अपने सैनिक गठबंधनों (**नाटो, सेण्टो, सीटो** आदि) की तुमुलध्वनि कर दी थी, लेकिन इसका निहितार्थ हमेशा ही एक भू-राजनीतिक टकराव से कहीं अधिक व्यापक था। यह तथ्य कि **सोवियत संघ** एक ऐसे टकराव से बाहर निकल चुका था, जो पूंजीवादी समाज का आंतरिक टकराव था, यही ध्वनित करता था कि **सोवियत संघ** पर बाह्य क्षेत्रीय पाबन्दी अपरिहार्य रूप से वर्ग-संघर्ष के आन्तरिक राजनीतिक प्रबंधन के साथ जुड़ी हुई थी। कारण कि प्रत्येक पूंजीवादी देश की अपनी सामाजिक संरचना के गर्भ में अन्तर्राष्ट्रीय टकराव के परस्पर विरोधी तत्व निहित होते हैं। और फिर, आम संकट के उपरांत भी कई देशों में चुनावी तौर पर मजबूत कम्युनिस्ट पार्टियां अभी भी बरकरार थीं।

साथ ही, **तीसरी दुनिया** का कोई भी देश अपने भीतर इन विरोधी तत्वों को पैदा किए बगैर **पश्चिमी** मॉडल पर अपना उद्योगीकरण नहीं कर सकता था। इस प्रकार, अनौपनिवेशीकरण ऐसे खतरे भी लिये हुए था जिन्हें – खासतौर से, 1949 की **कम्युनिस्ट** क्रान्ति में **चीन** को खो देने के बाद – **अमेरिकी** प्रशासन नजरन्दाज नहीं कर सकता था। ये खतरे नये और अस्थिर राज्यों की विस्फोटक समुपस्थिति में निहित थे, जो अक्सर एक साम्राज्यवाद-विरोधी उफान के बाद स्वतंत्र हो जाते थे, और जो औद्योगिक विकास की ओर तीव्र संक्रमण कर जाने की आकांक्षा के साथ-साथ **सोवियत संघ** के गैर-पश्चिमी मॉडल की प्रकट सफलता पर मुग्ध भी थे। इसका कारण यह था कि **सोवियत** पंचवर्षीय योजनाओं की जो श्रृंखला 1928 में विराट मानवीय कीमत पर शुरू की गयी थी, जिसने कृषि का सामूहिकीकरण किया, और भारी औद्योगिक आधार निर्मित किया, जिसकी बदौलत 1929 और 1940 के बीच उत्पादन तीन गुना हो गया। सामाजिक रूपान्तरण के जरिये इतने बड़े पैमाने पर विकसित हुई नियोजित अर्थव्यवस्था की इस क्षमता के चलते यह अर्थव्यवस्था युद्धोत्तर काल में **तीसरी दुनिया** के विकास के लिए एक वैकल्पिक मॉडल प्रतीत होने लगी। और निश्चय ही, "**अक्टूबर क्राति** से प्रेरित शासन-व्यवस्थाओं का भारी और टिकाऊ प्रभाव पिछड़े खेतिहर देशों के आधुनिकीकरण के लिए एक सशक्त उत्तोलक सिद्ध हुआ" (पृ.9)। यह यो ही नहीं हुआ कि **वाल्ट रोस्तोव** ने **साम्यवाद** को "संक्रमण की एक बीमारी" कहा, और विकासात्मक अर्थशास्त्र पर प्रस्तुत अपनी मशहूर पुस्तिका को एक "**नॉन कम्युनिस्ट मैनीफेस्टो**" उप-शीर्षक दिया।[5] इसके आठ वर्षों बाद, **सैमुअल हंटिंगटन** ने चेतावनी दी कि **पश्चिमी जगत** को **तीसरी दुनिया** में **लेनिनवाद** का मुकाबला करने के लिए राजनीतिक संगठन के वैकल्पिक मॉडल देने ही होंगे।[6]

संक्षेप में, महाशक्तियों की सनकभरी रस्साकशी और नाभिकीय हथियारों की सनकभरी दौड़ के बावजूद, **शीतयुद्ध** का एक वास्तविक राजनीतिक निहितार्थ था: और वह था आम संकट के बाद **पश्चिमी यूरोपीय** पूंजीवाद का राजनीतिक स्थिरीकरण, और **तीसरी दुनिया** में सामाजिक परिवर्तन का प्रति क्रान्तिकारी प्रबंधन – यदि आवश्यक हुआ तो सीधे हस्तक्षेप करके भी।

स्वर्ण युग की इन संयुक्त प्रक्रियाओं ने मानव-अस्तित्व की भौतिक और सामाजिक दशाओं में भारी परिवर्तन किए। व्यापक होते जा रहे हस्तक्षेपकारी कल्याणकारी राज्यों के स्थिरकारी प्रभाव में, दुनिया का मैन्युफैक्चरिंग उत्पादन 1950 के दशक के आरंभ और 1970 के दशक के बीच चार गुना हो गया, और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार दस गुना हो गया। इस बढ़ोत्तरी और गहराती परस्पर निर्भरता का काफी कुछ कारण नये-नये व्यापक बाजारों का खुलते जाना था, जिन्होंने **अमेरिकी** शैली के उपभोक्ता पूंजीवाद को पूरे **यूरोप** भर में फैला दिया। निजी कार, व्यापक एअर-पैकेज पर्यटन, टेलीफोन, ट्रांजिस्टर, रेडियो और टेलीविजन के साथ-साथ तकनोलाजिकीय विकास की एक पूरी श्रृंखला भी पेश की गयी, जिसने रोजमर्रा के जीवन-ढर्रे की पुनर्रचना कर डाली। बहरहाल, लम्बे समय तक यह **स्वर्णयुग** सबसे अधिक इस बात के लिए याद किया जायेगा कि इसने "लिखित इतिहास में सबसे अधिक, सबसे तेज, और सबसे बुनियादी (आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक) रूपान्तरण" किये (पृ.8)। इसे **हॉब्सबॉम** उस 8,000 वर्षों के कालखंड का अन्त मानते हैं, जिसमें ज्यादातर समाजों के ज्यादातर मनुष्य जमीन से नाता तोड़कर अलग होते रहे, और तदनुरूप यह दुनिया लगातार शहरीकृत और उद्योगीकृत होती रही। **भारत, चीन** और **उप-सहाराई अफ्रीका** को छोड़कर, इस काल में, सारी दुनिया के पैमाने पर, किसान-आबादी की संख्या में जो गिरावट हुई, वह सचमुच नाटकीय रही – जो उन्नीसवीं शताब्दी में **यूरोप की किसान-आबादी** के विलीनकरण से भी कहीं अधिक तेज रफ्तार से घटी। **जापान** में 1947 और 1985 के बीच यह आबादी 52.4 प्रतिशत से घटकर मात्र 9 प्रतिशत रह गयी। पूरे **लातिनी अमेरिका** में यह लगभग आधी हो गयी – 50 प्रतिशत से घटकर 25 प्रतिशत। और यदि **मध्य पूर्व** का एक दूसरे छोर वाला उदाहरण लें, जोकि गैर प्रातिनिधिक एकदम नहीं ही कहा जा सकता, तो **अल्जीरिया** की आबादी सिर्फ तीस ही वर्षों में 75 प्रतिशत से घटकर मात्र 20 प्रतिशत रह गयी। संक्षेप में, "80 प्रतिशत मानवता

के लिए, **मध्य युग** अचानक 1950 के दशक में ही खत्म हो गया...।" (पृ. 288)

भू-स्खलन, 1973-1991

"1973 के बाद बीस वर्षों का इतिहास," **हॉब्सबॉम** के अनुसार, "एक ऐसी दुनिया का इतिहास है जो अपना टिकाऊपन खोकर अस्थिरता और संकट में फिसल गयी" (पृ. 403)। तबाही की यह प्रणालीगत प्रकृति, जो 1991 में **सोवियत** विध्वंस के रूप में शिखर पर जा पहुंची, हमें प्रेरित करती है कि हम पीछे मुड़कर देखें, और एक अन्तर्सम्बन्धित समुच्चय के रूप में इस बीत रही शताब्दी के स्वरूप पर दृष्टिपात करें। और अभी भी, एक चीज जो यह बीसवीं शताब्दी नहीं कर पायी है, वह है दुनिया को एक "उत्तर-आधुनिक" युग में ले जाने का काम। यदि हम आगे की ओर देखें, जैसा कि **हॉब्सबॉम** कहते हैं, तो हम पायेंगे कि इस अल्पावधिक बीसवीं शताब्दी के अन्त में मानवता के सामने उपस्थित समस्याएं सिर्फ एक ही सवाल पर अटकी हुई हैं: क्या, बिना अधिक विलम्ब किये, इस पूंजीवादी विकास की भूमंडलीय प्रक्रिया पर फिर से किसी प्रकार का एक सामाजिक नियंत्रण लागू किया जा सकता है? बेशक, ऐतिहासिक तौर पर, राज्य की सार्वजनिक सत्ता ने पूंजीवादी विकास और संकट के अस्त-व्यस्तकारी प्रभावों पर एकमात्र ज्ञात संस्थागत और राजनीतिक नियंत्रण प्रदान किये थे। फिर भी, **हॉब्सबॉम** के अनुसार, जैसे-जैसे व्यापक होती जा रही बहुराष्ट्रीय विश्व अर्थव्यवस्था अपने-आप को संप्रभुतासम्पन्न राष्ट्र-राज्यों के नियंत्रण से मुक्त करती गयी, वैसे-वैसे राष्ट्र-राज्यों की सत्ता में तेजी से ह्रास होता गया।

यह संकट 1930 के दशक के संकट की वापसी के रूप में नहीं था। इसमें विश्व अर्थव्यवस्था पूरी तरह धराशायी नहीं हुई, बल्कि विकसित पूंजीवादी देशों में विकास का क्रम जारी रहा – हालांकि रफ्तार धीमी हो गयी – और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार बढ़ता रहा। लेकिन, तस्वीर को धुंधला कर देने वाली जो बात हुई, वह थी विकास में चक्रीय आर्थिक महामन्दियों का बार-बार प्रकट होना, जिसके साथ बेरोजगारी अब आर्थिक चक्र के चढ़ाव-उतार के साथ बढ़ती-घटती नहीं, बल्कि सीधे बढ़ती चली गयी।

चूंकि **पश्चिमी जगत** में फिर से उठ खड़ी हुई इस नयी आर्थिक उथल-पुथल की प्रमुख अभिव्यक्ति टिकाऊ विकास बनाये रखने की **कीन्सियाई** राजकीय नीतियों की विफलता के रूप में हुई, इसलिए इस अवधि में सामाजिक जनतंत्र भी चुनावी तौर पर पीछे खिसक गया। और, इसके बाद अनियमितीकरण की जो नव-उदारवादी नीतियां लागू हुईं, उन्होंने स्वर्णयुग के दौरान व्यापक रूप से फैल चुकी बहुराष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के ऊपर राष्ट्र-राज्यों के नियंत्रण की घटती जा रही रफ्तार को और भी बढ़ा दिया।

विश्व अर्थव्यवस्था का यह बहुराष्ट्रीयकरण वित्त, व्यापार और उत्पादन के तीनों ही क्षेत्रों में प्रतिबिम्बित हुआ। यूरोडॉलर बाजार की बढ़त (1964 में 14 अरब डॉलर से 1978 में 500 अरब डॉलर) ने विनिमय दरों और विश्व मुद्रा आपूर्ति के राजकीय नियंत्रण में एक अंश तक ह्रास कर दिया। बहुराष्ट्रीयकरण कम्पनियों की संख्या में नाटकीय वृद्धि ने विश्व बाजार के अन्तरराष्ट्रीय चरित्र का ह्रास कर दिया। 1980 के दशक तक, **अमेरिका** का संभवत: तीन-चौथाई निर्यात और आधा आयात उनके कब्जे में आ चुका था। इसने एक तीसरी प्रक्रिया की रफ्तार तेज कर दी: श्रम का एक नया अन्तर्राष्ट्रीय विभाजन करने के लिए, पुराने महत्वपूर्ण उद्योग – पूंजीवादी देशों के बाहर स्थानांतरित होने लगे। 1970 और 1983 के बीच, भूमंडलीय औद्योगिक निर्यातों में **तीसरी दुनिया** का हिस्सा दुगुना हो गया – अंशत: देशज विकास के चलते, लेकिन अंशत: इन नयी भूमण्डलीय उत्पादन-प्रक्रियाओं के भीतर शामिल हो जाने के चलते भी। इस तरह, जैसे-जैसे **स्वर्णिम वर्ष** बीतते गये, वैसे-वैसे विश्व-अर्थव्यवस्था में वित्त, व्यापार और उत्पादन के सभी राष्ट्रीय बंधन ढीले होते गये।

तीसरी दुनिया की कुछ (मुख्यत: **पूर्वी एशियाई**) अर्थव्यवस्थाओं ने विकास की उच्च दरें बनाये रखीं, और इस प्रकार वे *ओईसीडी* **(आर्थिक सहकार और विकास संगठन)** से बाहर, पूंजीवादी उद्योगीकरण का पहला महत्वपूर्ण विस्तार कर पाने में सफल रहीं। लेकिन, ज्यादातर **तीसरी दुनिया** के राज्यों में, इस भू-स्खलन (लैंडस्लाइड) के साथ ही, उनके राष्ट्रीय विकास की रणनीतियां भी धराशायी हो गयीं। **लातिनी अमेरिका** से लेकर, **अफ्रीका, मध्य पूर्व** और **दक्षिण एशिया** तक **तीसरी दुनिया** भारी अन्तरराष्ट्रीय कर्जों में डूब गयी, और तब इसके भीतर संकटों का एक ऐसा सिलसिला शुरू हो गया, जिससे 1980 के दशक के आरंभ में ही ऐसा प्रतीत होने लगा कि स्वयं अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय प्रणाली ही खतरे में पड़ जायेगी। इसके अतिरिक्त, इस आर्थिक संकट के साथ ही, यह विचारधारात्मक संकट भी उठ खड़ा हो गया कि इस दुनिया का आधुनिकीकरण **पश्चिमी** मॉडल पर किया जाये, या **पूर्वी** मॉडल पर। यद्यपि 1970 के दशक में **तीसरी दुनिया** में क्रान्तियों का तांता लगा हुआ था, फिर भी इनका प्रेरणास्रोत 1789 की क्रान्ति नहीं थी और यहां तक कि 1917 की क्रान्ति भी नहीं। अफ्रीका में होने वाली ज्यादातर क्रान्तियां मुख्यत: पतनशील पुर्तगाली साम्राज्य के विरुद्ध अर्द्ध-कबीलाई बगावतें ही थीं: "इन देशों के लिए **मार्क्सवाद-लेनिनवाद** अनुशासित कैडरों वाली पार्टियों और सत्तावादी सरकारों के गठन के लिए महज एक नुस्खे के तौर पर ही प्रासंगिक था"(पृ.451)। इसी बीच, जो ईरानी क्रान्ति हुई, वह भी "एक ऐसे लोकरंजक मजहबी तंत्र द्वारा की गयी, जिसका घोषित कार्यक्रम सातवीं सदीं में लौट जाना ही था" (पृ.455)।

बहरहाल, "आधुनिकीकरण" से मोहभंग का मतलब आधुनिक दुनिया से पलायन नहीं थ। इसके विपरीत, जैसे-जैसे 1980 का दशक बीतता गया, वैसे-वैसे, और अपनी कर्ज सम्बन्धी बाध्यताओं के दबाव में, वस्तुत: पूरी की पूरी **तीसरी दुनिया** "संरचनात्मक समायोजन" कार्यक्रम की चक्करघिन्नी में खिंचती चली गयी। निरन्तर वित्तीय सहयोग पाने की गरज से, और वह भी भिन्न-भिन्न मात्राओं में मिलने के बावजूद, दर्जनों सरकारों ने अपनी आर्थिक नीतियों के निर्देशन के अपने सम्प्रभुतासम्पन्न अधिकार *ओईसीडी* द्वारा नियंत्रित **अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष** के हवाले कर दिये। 1990 के दशक में, **तीसरी दुनिया** के बाद, इस पूंजीवादी सत्ता के ऋण-जाल में भूतपूर्व **कम्युनिष्ट** राज्य भी आ फंसे। इतना सब हो जाने के बाद, "संरचनात्मक समायोजन पैकेजों" का *आइ.एम.एफ.* निर्दिष्ट प्रचार-प्रसार, पूंजीवादी बाजार के अनुशासनों को सारी दुनिया में फैला देने के लिए, पहली बार, सबसे स्पष्ट प्रयास के रूप में, सुनिश्चित हो गया।

सोवियत संघ जो इस अल्पावधि बीसवीं शताब्दी में पैदा हुआ था, इसके साथ ही अधोमुखी होता चला गया, जिससे अन्तरराष्ट्रीय प्रणाली में अस्तव्यस्तता का स्तर और बढ़ गया, और इस तरह अपने पीछे एक पुनरुत्थानवादी, विश्रृंखलित पूंजीवाद की एक ऐसी विरासत छोड़ गया, जो अगली शताब्दी के लिए समस्याएं खड़ी करने वाली थी। **हॉब्सबॉम** अपनी किताब के आखिरी पन्नों में इन्हीं समस्याओं पर ध्यान आकृष्ट करते हैं।

जहां तक विश्व-अर्थव्यवस्था का सवाल हैं, तो समस्या समृद्धि की नहीं, बल्कि समृद्धि के वितरण की है। बहुराष्ट्रीय अर्थव्यवस्था पर राष्ट्र-राज्यों के नियन्त्रण के कमजोर पड़ते जाने (और परिवार जैसी परम्परागत सहयोगी प्रणालियों के लगातार क्षरित होते जाने) के चलते, इसके असमान विकास के शिकार लोग, और *ओईसीडी* देशों के लाखों लोग बेरोजगार भी, स्वंय अपने ही समाजों के लिए, तेजी से बेगाने बनते जा रहे हैं। इस बीच, **सोवियत संघ** के विलोपन से धनी और गरीब देशों के बीच चौड़ी होती अन्तरराष्ट्रीय खाई को कम करने के लिए **पश्चिमी जगत** द्वारा दिया जाने वाला व्यापक रणनीतिक प्रोत्साहन भी खत्म हो गया है। **हॉब्सबॉम** इसी खराब स्थिति के चलते भविष्य में अन्तर्राष्ट्रीय टकराव के बढ़ने का अंदेशा करते हैं, और इसीलिए **उत्तरी दुनिया** भले ही **दक्षिणी दुनिया** के किसी परम्परागत सैनिक खतरे के प्रति अभेदय हो, फिर भी, उसे इस बीसवीं शताब्दी के मंडराते दो बड़े भूमण्डलीय संकटों से निपटने के लिए **दक्षिणी दुनिया** के सहयोग की

आवश्यकता बुरी तरह महसूस हो रही है। इन दो बड़े संकटों में से पहला संकट **दक्षिणी दुनिया** में जारी जनसंख्या-विस्फोट है (जिसने इस शताब्दी के दौरान, *ओईसीडी* देशों के जनसंख्यात्मक अनुपात को पहले ही आधा करके 15 प्रतिशत के आसपास कर दिया है)। इससे पर्यावरण पर दबाव और **दक्षिणी दुनिया** के भीतर टकरावों की तीव्रता ही नहीं बढ़ती जायेगी, बल्कि इसके साथ-साथ बुढ़ाती जा रही और शायद सिकुड़ती भी जा रही उत्तरी श्रम-शक्ति **उत्तरी दुनिया** की ओर व्यापक श्रम-शक्ति को प्रव्रजन की भी स्थिति उत्पन्न कर सकती है, जिसके साथ ही जातीय तनाव की समस्याएं भी उठ खड़ी होंगी। और दूसरा बड़ा संकट तो स्वयं पारिस्थितिकीय संकट ही हैं, जो उद्योगीकरण के फैलाव की बढ़ती रफ्तार को नियंत्रित न कर पाने के कारण और गहराता जा रहा है: "पर्यावरणीय दृष्टिकोण से, यदि मानवता के लिए एक भविष्य चाहिए, तो **संकटकालीन दशकों** वाले पूंजीवाद के पास ऐसा कुछ भी नहीं हैं" (पृ.570)।

निष्कर्ष

क्या इस बीसवीं शताब्दी का घटनाक्रम उत्तर-आधुनिकतावाद के जुडंवा बौद्धिक और राजनीतिक संशयवाद का औचित्य सिद्ध करता है? **हॉब्सबॉम** के विवरण पर इस संक्षिप्त विचार-विमर्श से तीन मुख्य निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

पहला, आधुनिक विश्व-इतिहास की एक व्यवस्थित या "सम्पूर्णकारी" व्याख्या के तौर पर, भव्य आख्यान देना या कोई भव्य आख्यान न देना विभ्रमग्रस्त बुद्धिजीवियों की महज एक जिद्‌भरी सनक नहीं है: यह स्वयं इस इतिहास की प्रकृति द्वारा आनुभाविक तौर पर उपस्थित की गयी एक आवश्यकता है। यह तो उन्नीसवीं शताब्दी में तभी दिखायी पड़ने लगी थी, जब **यूरोपीय** विस्तार का निमर्म तर्क, पहली बार मानवता को ज्यादा से ज्यादा एक ही भू-राजनीतिक प्रणाली के भीतर समाविष्ट करने लगा था। लेकिन, इस बीसवीं शताब्दी का अन्त आते-आते, यह जिद्द खुले तौर पर वह कोई भी व्यक्ति रखने लगा है, जो व्यापक स्तरीय और क्रमबद्ध ऐतिहासिक व्याख्या को दरकिनार कर देना चाहता है। इसका कारण यह है कि यह युग विश्व युद्धों का, एक भूमण्डलीय राज्य-प्रणाली के ऊपर अध्यारोपित विचाराधारात्मक टकरावों का, विश्वव्यापी संघात वाले उछालों और महामंदियों का, तथा आज सारी मानवता के सम्मुख उपस्थित (पारिस्थितिकीय और राजनीतिक) चुनौतियों का युग है।

हॉब्सबॉम का मानना है कि इस ऐतिहासिक ऊहापोह के पूंजीवादी चरित्र की छानबीन करने में ही इसे समझने की कुंजी निहित है। इस पर कोई यह पूछ सकता है कि **हॉब्सबॉम** स्वयं इस कार्यभार को पूरा करने में कितना सफल हुए हैं।[7] कोई स्वयं उनकी बुनियादी प्रस्थापना को ही चुनौती दे सकता है। लेकिन तब इन घटनाओं की एक बेहतर व्याख्या भी तो देनी होगी: व्याख्या से पीछे हटकर ज्ञानशास्त्रीय संशयवाद में उलझने से काम नहीं चलने वाला।

फिर भी, जब हमें दूसरे निष्कर्ष के लिए, इस शताब्दी के घटनाक्रम पर गौर करना ही पड़ता है, तो क्या इसकी दुश्वारियां और विडम्बनाएं उन्नीसवीं शताब्दी के बुद्धिवादी आशावाद के उन प्रगतिवादी राजनीतिक सिद्धांतों को, जो उस शताब्दी में निरुपित किये गये थे, कालातीत सिद्ध करके स्पष्टत: खारिज करती नहीं मालूम पड़ती हैं? क्या इस मायने में हम एक भिन्न, "उत्तर-आधुनिक" युग में नहीं आ गये हैं? यहां पर जरा एक अलग बात कहने की जरूरत है। इतिहास के गति पर **मार्क्स** की समझदारी प्रगति के प्रति एक सरल-सीधी आस्था पर आधारित नहीं थीं। *कैपिटल* के लेखक ने कभी भी अपना नाता इस बीसवीं शताब्दी के बारे में **रैशनॅलिस्ट प्रेस एसोसिएशन** द्वारा की गयी भविष्यवाणी से नहीं जोड़ना था। इसके विपरीत, उनकी ज्यादातर बौद्धिक ऊर्जा **प्रबोधनकालीन** चिन्तन की एक स्मारकीय समालोचना प्रस्तुत करने में समर्पित रही, और उन्होंने यह स्पष्ट किया कि क्यों उससे जुड़ा पूंजीवादी समाज उसके आदर्शों के व्यवहार में चरितार्थ होने के लिए बाधक था। कारण कि यह व्यक्ति की जिस राजनीतिक आजादी की वकालत करता था, वह प्रभुत्व और शोषण के नये "आर्थिक" वर्ग-सम्बंधों से अविभाज्यत: जुड़ी हुई थी। और इसके जुड़ी मानवीय उत्पादक शक्तियों की भारी बढ़ोत्तरी, जो मुख्यत: बाजार के अराजक प्रतिस्पर्द्धात्मक तर्क द्वारा संचालित होने के कारण ही हो रही थी, सामाजिक विकास-क्रम के लिए विवेकसंगत दिशा-निर्देश के परित्याग की कीमत पर हासिल की जा रही थी। ये अन्तरविरोध जिन दो रूपों में अभिव्यक्त हो रहे थे, वे थे निरन्तर जारी वर्ग-संघर्ष, और आवर्ती आर्थिक संकट। फिर भी **मार्क्स** ने मानव-विकास की संभावना के लिए **प्रबोधन** की आस्था का परित्याग नहीं किया, और समाजवादी रूपान्तरण के दवाब का जो पूर्वानुमान किया, वह प्रगति के किन्हीं इतिहासेतर नियमों के तहत नहीं, बल्कि उन अन्तरविरोधों को ध्यान में रखकर किया, जो समाज के एक प्रकार के रूप में पूंजीवाद की ही विशष्टिता थे।

हॉब्सबॉम की यह इतिहास-समीक्षा यही दर्शाती है कि किसी शुद्ध सैद्धान्तिक रूप में नहीं, बल्कि इन्हीं अन्तरविरोधों के तहत, असमान विकास के यथार्थ घटना-क्रम से गुजर कर यह अल्पावधिक बीसवीं शताब्दी ठीक वैसे ही रूपायित हुई है, जैसे इससे पहले (भिन्न तरीकों से) उन्नीसवीं शताब्दी रूपायित हुई थी। फिर भी, कुल मिलाकर हम, इस शताब्दी को क्या कहें, जो पूंजीवाद के आम संकट और **शीतयुद्धोत्तर** दुष्प्रभाव की चपेट में हैं, जिसने दुनिया की किसान आबादियों के विलीनीकरण की रफ्तार को तेज किया, और पूंजीवाद के सबसे बड़े भौगोलिक विस्तार को- यहां तक कि भूतपूर्व **सोवियत** शिविर और चीन तक में भी – अंजाम दिया? निश्चय ही यह सब भयोत्पादक, विस्मयकारी, स्तब्ध कर देने वाला, और त्रासद रहा है। लेकिन क्या उत्तर-आधुनिक भी? निश्चय ही नहीं।

इसका मतलब यही है कि पूंजीवाद का एक सिद्धांत, इस बीसवीं शताब्दी और इसके आखिरी समय में मानवता के सम्मुख उपस्थित चुनौतियों की किसी भी समझदारी के लिए, अभी भी केन्द्रीय बना हुआ है। इसका मतलब यह भी है कि इन चुनौतियों से सम्मुखीन होने वाले किसी भी प्रगतिशील राजनीति को इन चुनौतियों के स्रोत रूपी पूंजीवाद सामाजिक सम्बंधों से, उनकी गहराई में जाकर, जूझना ही होगा।

अंतिम निष्कर्ष, निश्चित तौर पर, उस निष्कर्ष से आगे जाता है, जो **हॉब्सबॉम** इस किताब में दे सके हैं। विनाश की एक जर्बदस्त घुड़दौड़ के रूप में पूंजीवाद के रूप-विधान अपने अस्तित्व की दो शताब्दियों के दौरान एक आवर्ती आशय ग्रहण करते रहे हैं। और यह किताब भी उसका पूर्वाभास करने में पीछे नहीं है। बीसवीं शताब्दी के बारे में **हॉब्सबॉम** का आख्यान "चिराग... पूरे यूरोप में जलते हुए" से शुरू होता है और लगभग निराशभाव से "अंधेरा" शब्द पर खत्म हो जाता है(पृ.22)। शायद उन्हें स्वाभाविक तौर पर ऐसा लगता हो। पर क्या इस तरह का निराशावाद सचमुच इस बीसवीं शताब्दी के मार्क्सवादी इतिहास के लिए एक जरूरी निष्कर्ष हो सकता है? अथवा यह कि क्या यह शताब्दी भी, इससे पहले की उन्नीसवीं शताब्दी की भांति ही, पूंजीवादी विकास की अन्तरविरोधी संभावनाओं से नहीं भरी हुई हैं? **हॉब्सबॉम** के मामले में यह गौरतलब है कि उनकी निराशा वास्तव में काफी हद तक **सोवियत संघ** की समाप्ति से जुड़ी हुई है। उनकी दृष्टि में यह समाप्ति एक दोहरी पराजय से अभिचिन्हित है। यह पूंजीवाद के सिर्फ एकमात्र मौजूद विकल्प के विचारधारात्मक दिवालियेपन को सिद्ध करती है। और यह उस राजनीतिक और भू-राजनीतिक प्रतिभार को दरकिनार कर देती है जिसके अस्तित्व ने **पश्चिमी जगत** के राज्यों को पूंजीवाद द्वारा पैदा की गयी सामाजिक असमानताओं को कम करने और उसकी अराजक प्रवृत्तियों को अस्थायी नियंत्रण में लाने को मजबूर कर दिया था। *इसमें कुछ सच्चाई तो है, पर यही पूरी कहानी नहीं है।* द *एज ऑफ एक्सट्रीम्स* पूंजीवादी समाज के भीतर विरोध के स्रोतों और न्याय की मांगों के प्रति भारी चुप्पी साधे हुए

हैं। परन्तु ये मजदूर-आंदोलन के संघर्षों और मांगों के रूप में अभिव्यक्त होने वाले दबाव ही थे जो- किसी अन्य बाहरी कारण से कहीं अधिक रूप में – युद्धोत्तर काल के कल्याणकारी राज्यों और सामाजिक जनतांत्रिक नीतियों की पृष्ठभूमि बनें। लेकिन ऐसा लगता है कि **हॉब्सबॉम** लगभग यह भूल ही गये थे कि समाजवादी राजनीति की वास्तविक जमीन कभी भी **सोवियत संघ** की मौजूदगी नहीं, बल्कि पूंजीवाद की मौजूदगी ही रही है।

अगर यही बात है, तब उनका इस तरह निराश होना आश्चर्यजनक नहीं है, लेकिन उनका निराशावाद कतई उचित भी नहीं हैं। बेशक कोई यह दलील भी दे सकता है कि इस बीसवीं शताब्दी में सोवियत संघ की मौजूदगी से अधिक कुछ दूसरी चीजों ने ही समाजवाद को बदनाम किया। फिर भी, भविष्य के बारे में हम कम से कम इतना तो कह ही सकते हैं कि यदि पूंजीवाद भूमंडलीय विकास के एक नये चरण में प्रवेश कर रहा है, तो यह नया चरण राजनीतिक संघर्ष और टकराव के नये-नये रूप पैदा किये बगैर न रहेगा। तब इन्हीं वास्तविक ऐतिहासिक संघर्षों के आधार पर इक्कीसवीं शताब्दी की समाजवादी राजनीति भी गठित होगी।

टिप्पणियां

1. माइकेल जोसेफ, लन्दन, 1994

2. रोज़ा लक्जेमबुर्ग, *सेलेक्टेड पॉलिटिकल राइटिंग्स,* आर. लूकर (संपादित); लक्जेमबुर्ग वस्तुत: एंगेल्स को उद्धृत कर रही थीं।

3. कोष्ठकों में दी गयी संख्याएं द *एज ऑफ इक्स्ट्रीम्स: ए हिस्ट्री ऑफ द वर्ल्ड, 1914-1991* (न्यूयार्क: पैंथिऑन, 1995) के संदर्भों की सूचक हैं।

4. **एज ऑफ कैटैस्ट्रॉफ** (महाविपदा का युग) की चर्चा वाले अध्यायों में **स्टालिनवाद** पर कोई खास चर्चा नहीं है। इसके बजाय, इस कृति के तिथिवार संयोजन में एक आश्चर्यजनक और अकारण व्यतिक्रम करके, 1930 के दशक में स्टालिनवादी विरूपण को किताब के भाग-2 में ले जाकर वर्णित किया गया है, जिसमें **गोल्डेन एज (स्वर्णयुग)** पर चर्चा है (1940 के दशक के अन्त से लेकर 1970 के दशक के आरंभ तक)।

5. *द स्टेजेज ऑफ इकॅनोमिक ग्रोथ,* 1960

6. *पॉलिटिकल आर्डर इन चैंजिग सोसाइटीज* (न्यू हैवेन, 1968)

7. उदाहरण के तौर पर, युद्धोत्तर तीसरी दुनिया में "आधुनिकीकरण" पर उनका समाजशास्त्रीय विवेचन बेहद सतही है, जो जनगणना संबंधी और पेशा बदलने संबंधी सांख्यिकीय आंकड़ों से बाहर नहीं जाता। और एक ऐसे काल-खंड में, जिसमें अन्य किसी भी कालखंड की अपेक्षा, निश्चय ही अधिक संख्या में सम्प्रभुतासंपन्न राज्यों का उदय हुआ था, राज्य-निर्माण की प्रक्रियाओं पर कोई विचार नहीं किया गया है।

[स्रोत: *'मंथली रिव्यू'* जुलाई-अगस्त, 1995, पृष्ठ 139-157]

— अनुवाद : विश्वनाथ मिश्र

दायित्वबोध यहां से प्राप्त करें

उत्तर प्रदेश • संस्कृति कुटीर, कल्याणपुर, **गोरखपुर** • जनचेतना, जाफरा बाजार, **गोरखपुर** • विजय इन्फार्मेशन सेंटर, कचहरी बस स्टैण्ड, **गोरखपुर** • राहुल फाउण्डेशन, 3/274, विश्वास खण्ड, गोमतीनगर, **लखनऊ** • जनचेतना स्टाल, निकट काफी हाउस, हजरतगंज, **लखनऊ** (शाम पांच से साढ़े सात) • सत्यम वर्मा, यूनीवार्ता, काजमी चैम्बर्स, 5, पार्क रोड, **लखनऊ** • ओ.पी. सिन्हा, 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, **लखनऊ** • डी.सी. वर्मा, बी-118, आजादनगर, कैम्पबेल रोड, **लखनऊ** • इण्डियन बुक डिपो, अमीनाबाद, **लखनऊ** • विश्वनाथ मिश्र, चेतना कार्यालय, **बड़हलगंज, गोरखपुर** • शहीद पुस्तकालय, द्वारा, डा. दूधनाथ, जनगण होम्यो सेवा सदन, **मर्यादपुर, मऊ** • **मौर्या बुक स्टाल, सआदतपुरा (निकट रोडवेज), मऊ** • प्रो. प्यारे लाल, 139, फूलबाग कालोनी, पंतनगर कृषि विश्वविद्यालय, **पंतनगर** • डी.के. सचान, कृषि विज्ञान केन्द्र, (पन्तनगर कृषि विश्वविद्यालय) धमौरा, **रामपुर** • ललित सती, द्वारा विजय कुमार, 55/3 ई.डब्ल्यू.एस., आवास विकास, **रुद्रपुर** • श्री. ए.के. त्रिपाठी, 21, विश्वविद्यालय मार्ग, **इलाहाबाद** • श्री रामधीरज, स्वराज्य स्टेशनर्स, प्रयाग चुंगी, मोती लाल नेहरू मार्ग, **इलाहाबाद** • करेंट बुक डिपो, 18/53, माल रोड, (फूलबाग के सामने), **कानपुर** • प्रतिभा प्रकाशन, (पेप्सी होटल के नीचे), स्टेशन रोड, **बलिया** • राजेन्द्र प्रसाद, रेणु मेडिकल की गली, मुख्य सड़क, रेणुकूट, **सोनभद्र** • नेशनल न्यूज एजेन्सी, पल्टन बाजार, **देहरादून** • श्री मुचकुंद, प्रोग्रेसिव बुक सेंटर, लंका, **वाराणसी**

बिहार • संतोष शर्मा, क्वा.नं. एल/61 के, बरौनी, **बेगूसराय** • समकालीन प्रकाशन, पुस्तक बिक्री केन्द्र, आजाद मार्केट, पीरमुहानी, **पटना** • राजकमल प्रकाशन, साइंस कालेज के सामने, अशोक राजपथ, **पटना** • पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, पटना कालेज के सामने, **पटना** • अविनाश कुमार सिन्हा/रणजीत कुमार श्रीवास्तव, द्वारा, शैलेन्द्र श्रीवास्तव, बरियारी चक, पो. **मेंहसी, पूर्वी चम्पारण** • मैत्रेयी साहित्य संगम, (सर्वे आफिस के सामने), लालबाग के.डी.एस., **दरभंगा** • विजय कुमार आर्य, सचिव -'मजदूर संगठन समिति', गुरारू चीनी मिल्स, गुरारू, पो.-**गुरारू**, जि.-**गया** • वी. प्रशान्त, कन्हौली (बी.एम.पी.-6 से पूरब), **मुजफ्फरपुर** • दीपशिखा पत्रिका मण्डप, द्वारा श्री शिवदास पाण्डेय, पानी टंकी चौकी, क्लब रोड, **मुजफ्फरपुर** • रामपुकार सिंह, ग्रा.-पो.-भदई, जि.-**मुजफ्फरपुर** • विद्यानन्द सिंह, वार्ड न. 4, **सुपौल** • श्री भुवन वेणु, 'प्रतीक्षा', मधुबनी, चूनापुर रोड, **पूर्णिया**

दिल्ली • शिवरतन, सी-2/27, न्यूकोण्डली, जे.जे. कालोनी • एतकाद अहमद, डिपार्टमेण्ट ऑफ फाउण्डेशन आफ एजुकेशन, जामिया मिल्लिया इस्लामिया • सेंट्रल न्यूज एजेन्सी, 29/30, कनाट सर्कस • बुक कार्नर, श्रीराम सेंटर, सफदर हाशमी मार्ग, मण्डी हाउस • गीता बुक सेण्टर, शापिंग काम्प्लेक्स, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय • जवाहर बुक सेण्टर, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय • बोधन लाल एण्ड कम्पनी, निकट क्लॉकटावर, शिवाजी स्टेडियम • पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, मरीना होटल बिल्डिंग, कनाटप्लेस

महाराष्ट्र • परिदृश्य प्रकाशन, 6, दादी संतुक लेन, इंजीनियर हाउस, धोबी तालाब, **मुम्बई** • सतीश कालसेकर, पीपुल्स बुक हाउस, मेहर हाउस, 15, कावसजी पटेल स्ट्रीट, फोर्ट, **मुम्बई** • शैलेश वाकड़े, विजयालक्ष्मी नगर, टीचर्स कालोनी, बल्लारपुर, **चन्द्रपुर** • सूर्यदेव उपाधयाय, लेनिन लाइब्रेरी, उल्हास नगर, जि.-**ठाणे**

गुजरात • डा. हरियश राय, ए-205, सुजल अपार्टमेण्ट, सेटेलाइटरोड, रामदेवनगर, **अहमदाबाद**

हिमाचल प्रदेश • एस.आर. हरनोट, हिमाचल पर्यटन विकास निगम, रिट्ज एनेक्सी, **शिमला**

हरियाणा • नरभिंदर सिंह, द्वारा, डा. सुखदेव हुंदल, ग्रा.-पो.-संतनगर, जि.-**सिरसा** • राजीव रंजन, द्वारा पाश पुस्तकालय, पुलिस लाइन, **करनाल** • सुरेश जांगिड़, अक्षर धाम, सुकीर्ति प्रिंटर्स, डी.सी. निवास के सामने, करनाल रोड, **कैथल**

राजस्थान • हंसा प्रकाशन, 316, खूंटेटों का रास्ता, किशन पोल बाजार, **जयपुर** • संजय श्रीवास्तव, 221, उत्तरी सुन्दरवास, गंगा फ्लोर मिल, **उदयपुर**

उड़ीसा • गाला बुक्स, 61-62, बस स्टैण्ड, **अस्का**, जिला-गंजम

असम • शर्मा बुक स्टाल, थाना रोड, चराली, **तिनसुकिया** • दिनकर कुमार, चाणक्य पथ, जी एस रोड, दिसपुर, **गुवाहाटी**

पं. बंगाल • श्याम अविनाश, पी. एन. घोष स्ट्रीट, **पुरुलिया** • राकेश गोरखा, सरस्वती पुस्तक मन्दिर प्रधान नगर, सिलीगुड़ी, **दार्जीलिंग** • बुक मार्क, 6, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, **कलकत्ता** • जनार्दन थापा, लुकसान बाजार, पो. आ.-केरन, जि.-**जलपाईगुड़ी** • ओमप्रकाश पाण्डेय, प्राध्यापक, 35/डी, सेंट्रल कालोनी, पो. भक्तिनगर, **न्यू जलपाईगुड़ी**

आन्ध्र प्रदेश • गोविन्द अक्षय, 'सारस्वत सदन', 13/6/411/2, रामसिंहपुरा, कारवान, **हैदराबाद**

मध्यप्रदेश • जयप्रकाश जायसवाल, 'पितृछाया,' अमृत सागर कालोनी, एम.आई.जी. 96-97 **रतलाम** • चिंचोलकर बुक हाउस, बस स्टैण्ड, **जगदलपुर, बस्तर** • 'विकल्प' सांस्कृतिक मोर्चा, 1835, सिलवर ओक कम्पाउंड, नेपियर टाउन, **जबलपुर**

नेपाल • पुस्तक पत्र-पत्रिका बिक्री वितरण केन्द्र, डिल्ली बाजार, उकालो, **काठमाण्डू** • जलजला पुस्तक सदन, धमबोजी चौक, **नेपालगंज, बांके** • विशाल पुस्तक पसल, अस्पताल लाइन, **बुटवल, लुम्बिनी** • विशाल पुस्तक सदन, विजुवार बाजार, प्यूठान, **राप्ती अंचल** • गुरुप्रसाद, विश्व नेपाली पुस्तक सदन, श्रवन पथ, बुटवल-8, **रूपनदेई** • श्री मंगल नेपाली, मंगल मेडिकल हाल, सुर्खेत, वीरेन्द्रनगर, भेरी अंकल, जिल्ला **सुर्खेत, मध्य पश्चिमांचल क्षेत्र**

•

जन्मदिन (26 दिसम्बर) के अवसर पर

माओ त्से-तुङ की कुछ कविताएं

अनुवाद व विस्तृत टिप्पणियां

● **सत्यव्रत**

कुनलुन[1]

(अक्टूबर, 1935)

बहुत-बहुत ऊपर इस धरती से,
नीले आकाश की गहराइयों में
तुमने देखा है, ओ बीहड़, उद्धत कुनलुन,
वह सब कुछ जो सबसे बढ़िया है
इंसानों की इस दुनिया में।
उड़ते हैं तुम्हारे तीस लाख श्वेत-धवल जेङ से अजदहे[2]
और हड्डियां छेदती ठण्ड से
जम-सा जाता है यह पूरा आकाश।
गर्मियों में पिघलती है तुम्हारी बर्फ
और प्रचण्ड धाराएं उफनाने लगती हैं
झरनों और नदियों में।
किसने फैसले दिये हैं
उन अच्छाइयों और बुराइयों पर
जो तुमने कर डाले हैं
इन हजारों शरद ऋतुओं के दौरान?

सुन लो कुनलुन! अब मेरा यह कहना है
नहीं चाहिए हमें तुम्हारी यह ऊंचाई
और न ही दरकार है हमें
बर्फ के तुम्हारे इस अम्बार की।
यदि मैं खींच सकूं अपनी यह तलवार
आसमान को चीरती हुई
तो तीन टुकड़े कर दूं तत्क्षण तुम्हारे:
एक टुकड़ा यूरोप के लिए,
दूसरा अमेरिका के लिए
और तीसरा संजो कर रख लूं पूरब के लिए।
पूरी दुनिया पर छा जाता फिर शान्ति का साम्राज्य,
एक-सी गरमी
और एक-सी ठंडक
पूरी इस धरती पर

ल्यूफान पर्वत[1]

(अक्टूबर, 1935)

ऊंचा आकाश, निस्तेज विरल बादल,
देख रहे हैं हम जंगली हंसों के झुंडों को
उड़ते हुए दक्षिण की ओर, ओझल होते हुए।
इंसान नहीं है हम, अगर नहीं पहुंच पाते
महान लम्बी दीवार तक,
हम, जो तय कर चुके हैं
बीस हजार ली की दूरियां।

ल्यूफान पर्वत-शिखरों की ऊंचाइयों पर
पश्चिमी हवाओं में पूरी आजादी के साथ
लहराते हैं लाल झंडे और परचम
थाम्हें हैं आज हम अपने हाथों में लम्बी जंजीर,
कब हम जकड़ लेंगे भूरे अजदहे को[2]
अपनी गिरफ्त में?

ल्यू या-त्जू को उत्तर[1]

(29 अप्रैल, 1949)

याद करता हूं अभी भी मैं
क्वाङचओ में चाय पीना हमारा
साथ-साथ
और चुङकिङ में तुम्हारा आग्रह करना
कविताओं के लिए
जब पत्तियां पीली पड़ रही थीं।

इकतीस वर्षों बाद पुरानी राजधानी में वापस आकर
फूलों के झरने के मौसम में
मैं पढ़ रहा हूं तुम्हारी कविता की
परिपक्व-परिष्कृत पंक्तियां।

तनिक सम्भलना, दुखों से लबरेज कहीं
दिल न तोड़ लेना अपना,
सुदूर परिदृश्य पर केन्द्रित करना अपनी निगाहें।
मत कहो कि कुनमिङ झील[2] का पानी
सिर्फ उथला है,
मछलियों को देखते रहने के लिए
बेहतर है यह
फूचुन नदी[3] के मुकाबले

ल्यू या-त्जू की कविता

अध्यक्ष माओ को समर्पित मेरे विचार

श्रेष्ठ हो तुम
एक नये युग के निर्माता के रूप में।
मेरे लिए कठिन था
अंधेरे दौरों में
रोशनी की बातें करना पूरे जोर-शोर से।
व्याख्यान देता हूं क्लासिकी ग्रंथों पर,
नहीं हूं ऐसा विद्वान जो
कर सके समयानुवर्तन
और अफसोस,
नहीं हुआ मेरा कहीं कोई गर्मजोशी भरा स्वागत।
भर उठता हूं पश्चाताप से
जब सोचता हूं व्यर्थ ही गंवाये गये
अपने जीवन के बारे में,
फिर भी मेरा हृदय सच्चा बना रहेगा अंतिम सांस तक।
विकल प्रतीक्षा है
दक्षिणी अभियान से खुशखबरियों की!
फिर तो फेनहू झील[1] होगा
मेरा एकान्त निवास।

ल्यू या-त्जू को उत्तर[1]

(अक्टूबर, 1950)

*(1950 में राष्ट्रीय दिवस समारोह के अवसर पर जब हम एक संगीत-नृत्य का कार्यक्रम देख रहे थे तो श्री ल्यू या-त्जू ने **'वान सी-शा'** छन्द की लय में एक आशु कविता लिखकर मेरे पास भेजी। उत्तर में मैंने भी उसी छन्द का प्रयोग करते हुए निम्नलिखित कविता की रचना की।- **माओ**)*

रात लम्बी थी।
भोर उतरी रक्तिम धरा[2] पर
धीरे-धीरे।
एक सदी तक जारी रहा यहां
प्रेतों और राक्षसों का
उन्मत्त पैशाचित नृत्य,
और पचास करोड़ लोग आपस में विभाजित रहे।

अब मुर्गा बांग दे रहा है
और आलोकमय है सबकुछ
इस आकाश के नीचे।
यहां गूंज रहा है संगीत हमारे तमाम लोगों का,
युतिएन[3] का भी
और कवि-मन हो रहा है अनुप्राणित
जैसा पहले कभी नहीं हुआ था।

ल्यू या-त्जू की कविता

(3 अक्टूबर को मैं हुआइ ज़ेन ताङ भवन में आयोजित एक सांध्य समारोह में सम्मिलित हुआ। इस अवसर पर दक्षिणी-पश्चिमी चीन, की विभिन्न राष्ट्रीयताओं तथा सिंकियाङ, किरिन प्रांत के येनपिएन और भीतरी मंगोलिया की कला मण्डलियों ने अपने-अपने कार्यक्रम प्रस्तुत किये। अध्यक्ष माओ के अनुरोध पर, चीन की सभी राष्ट्रीयताओं की महान एकता की प्रशंसा में मैंने निम्नलिखित पंक्तियों की रचना की। — ल्यू या-त्जू)

अग्नि-वृक्षों और रजत-पुष्पों से सजी हुई
अंधेरे से मुक्त एक रात।
थिरकते हुए मनोहर नृत्य मुद्राओं- भंगिमाओं से
आकर्षित करते हैं हमारे ये भाई-बहन।
पूनम के चांद[1] की उल्लासमय स्वरलहरियां
तैरती हैं हवाओं में।
हासिल नहीं होता यदि हमें उस एक व्यक्ति का
कुशल नेतृत्व,
कैसे जुट पातीं भला ये
सौ के आसपास राष्ट्रीयताएं एक साथ?
बेमिसाल है
खुशियों भरी शाम का यह आनन्दोत्सव!

तैरना[1]

(जून, 1956)

अभी-अभी मैंने पिया है चाङशा का पानी
और आया हूं अब चखने ऊचाङ की मछली।
तैर रहा हूं मैं अब याङत्सी महानदी में
इस पार से उस पार तक,
देखते हुए चू प्रदेश[2] के खुले आकाश में दूर-दूर तक।
चलें हवाएं जोरदार और
पछाड़ खायें लहरें, टकराएं उन्मत्त करने से तो
बेहतर ही है यहां होना
इन लहरों के बीच।
आज मैं निश्चिन्त हूं।
ऐसी ही किसी एक धारा के सन्निकट कहा था कन्फ्यूशियस ने–
"यूं चीजें बहती जाती हैं अविरल गति से।"

हवा के झकोरों से हिलते हैं मस्तूल।
निश्चल खड़े हैं सर्प और कच्छप पर्वत।
अमल हो रहा है आज महान योजनाओं पर:
एक पुल[3] उड़ता हुआ-सा हवा में
उत्तर को जोड़ेगा दक्षिण से,
एक गहरी खाई है जहां,
वहां एक रास्ता होगा
इस पार से उस पार तक;
उधर पश्चिम की ओर बहती प्रतिकूल धारा में
खड़ी होंगी पत्थर की दीवारें
ऊशान पर्वत[4] से आने वाले बादलों
और बारिश को रोकती हुई,
तबतक तंग दर्रों में
तरंगायित होने लगेगी एक चौरस झील
पर्वत की देवी, यदि होगी अभी भी वहां,
चकित रह जायेगी
इस कदर बदली हुई दुनिया को देखकर।

ली शू-ई को उत्तर[1]

(11 मई, 1957)

मैंने खो दिया अपना गर्वीला पॉपलर[2]
और तुमने अपना विलो[3],
पॉपलर और विलो ऊपर उठते हुए
सीधे जा पहुंचते हैं नवें आसमान तक।
पूछते हैं ऊ काङ[4] से कि
वह उन्हें क्या दे सकता है?
पेश करता है वह उनकी खिदमत में
जयपत्रों से निकाली गई शराब।

एकाकी चांद की देवी[5] फैला देती है
अपनी बांहें, लहराते हुए विस्तृत आंचल
उन्मुक्त आकाश में
नृत्य करती है इन ध्येयनिष्ठ आत्माओं के लिए।
तभी अचानक धरती से आती है यह खबर
कि बाघ[6] को पराजित किया जा चुका है।
बारिश की झड़ी में
बरस पड़ते हैं धारासार
खुशी के आंसू।

महामारी के देवता[1] को विदाई

(दो कविताएं)

(1 जुलाई, 1958)

(30 जून, 1958 के रेन मिन रिबाओ (जन दैनिक) में जब मैंने यह पढ़ा कि ऊकियाङ काउण्टी[2] से सिस्टोसोमियासिस (घोंघा-ज्वर) को जड़मूल से नष्ट कर दिया गया है, तो मेरे मन में अनेक विचार-तरंगे उठने लगीं और मैं रातभर सो न सका। सुबह की गुनगुनी, सुहावनी बयार में जब सूरज की किरणें मेरी खिड़की पर पड़ी तो मैने दूर पश्चिम की ओर नजर दौड़ाई और खुशी के उन क्षणों में निम्नलिखित पंक्तिया लिख डाली।- माओ)

I

इतनी सारी हरितवर्णी जलधाराएं
इतने सारे नीलवर्णी पहाड़—मगर भला ये किस काम के?
इस क्षुद्र प्राणी ने अवश कर डाला था हुआ तो[3] तक को
सैकड़ों गांवों में नहीं बचा इंसानों का नामोनिशान तक,
उग आये बीहड़ जंगल-झाड़।
हजारों घर उजड़ गये,
घूमती रही गलियों में प्रेतात्माएं बिलखती हुई।
इस धरती पर एक दिन मैं तय करता हूं
अस्सी हजार ली[4] की दूरी
और कहीं नहीं दिखता है जीवन का कोई चिन्ह,
सुदूर आकाश में निगाहें दौड़ाता हूं
देखता हूं अनगिन आकाश-गंगाएं[5]।
पूछता यदि ग्वाला नक्षत्र[6]
खबर-महामारी के देवता की,
यही कहा जाता है,
समय की धारा में बहता जा रहा है
वही शोक-संताप।

II

सरपत के जंगलों में डोलती हैं
बासंती हवाएं,
साठ करोड़ लोगों की इस दैवी धरती[7] पर
सभी बराबर हैं, याओ और शुन[8]।
रक्ताभ जलवृष्टि जलधाराओं की लहरें बन
उमड़ने लगती है।
हमारी इच्छा के वशीभूत होकर
और हरितवर्णी पर्वत हमारे चाहने भर से
पुलों में बदल जाते हैं।
आसमान छूते पांच पहाड़ों[9] पर

गिरती हैं चमकती हुई गैंतियां
तीन नदियों के इर्दगिर्द की
धरती[10] को हिला देने के लिए
आगे बढ़ती हैं शक्तिशाली भुजाएं
पूछते हैं हम महामारी के देवता से:
"कहां चल दिए तुम?"
जलने लगती हैं कागज की नावें
और मोमबत्तियों की रोशनी[11] से
आसमान जगमगाने लगता है।

लूशान पर चढ़ते हुए[1]

(1 जुलाई, 1959)

याङत्सी के ऊपर
यह गगनचुम्बी पर्वत,
ज्यों उड़कर जा टिका है आसमान में;
आ पहुंचा हूं मैं
इसके हरित शिखर तक
चार सौ मोड़ों को लांघने के बाद।
ठण्डी आंखों से निहारता हूं
समुद्रों के पार इस धरती का विस्तार;
आसमान में छितरे बादलों पर
गरम हवा छिड़कती है बारिश की बूंदें,
नौ जलधाराओं[2] पर उमड़ते-घुमड़ते
गहराते जाते हैं बादल
मानो पंख पसारे तैरते हुए
पीले सारस वाली मीनार[3] के ऊपर से
और प्रचंड लहरे-पछाड़ खाती हैं पूर्वी किनारे पर,
उड़ता है सफेद झाग।
कौन जानता है, कहां चला गया प्रिफेक्ट ताओ युआन-मिङ[4]
अब सतालू-पुष्पों की इस धरती पर[5]
वह कर सकता था खेती।

मिलिशिया की औरतें

(फरवरी, 1961)

(एक फोटोग्राफ के पीछे अंकित)

कंधों पर उठाये हुए पांच फुट की राइफलें
दिखती हैं वे कितनी तेजस्वी और बहादुर
दिन की पहली किरणों से आलोकित
परेड के मैदान में।
चीन की बेटियों के दिलो-दिमाग में
उफन रही हैं ऊंची आकांक्षाएं,
रेशम-साटन से नहीं,
प्यार करती हैं वे
अपने युद्ध-परिधानों से।

एक मित्र को उत्तर[1]

(1961)

तैर रहे हैं श्वेत-धवल बादल
च्यूई पर्वत के ऊपर,
हवा पर सवार शहजादियां[2]
उतर रही हैं हरी-भरी पहाड़ियों में।
कभी उनके बेशुमार आंसुओं से
बांस के पेड़ों पर चित्तियां पड़ गई थीं,
अब वे सजी हुई हैं
गुलाबी-लाल बादलों के परिधानों में।
तुङतिङ[3] झील की बर्फ-सी सफेद लहरें
उफनती हैं ऊपर आसमान की ओर,
धरती को हिला देने वाले तराने की लय के साथ
कांप उठता है यह विशाल द्वीप[4]।
और मैं खो जाता हूं सपनों में,
सुबह की रोशनी में चमकते जवाकुसुम की धरती[5]
के निबार्ध-उन्मुक्त सपनों में।

परी गुफा[1]

कामरेड लि चिन (चियाङ-चिङ)द्वारा लिये गये
एक फोटोग्राफ के पीछे अंकित

(9 सितम्बर, 1961)

शाम की गहराती छाया में
खड़े हैं देवदारु के कड़ियल दरख्त
तेजी से उमड़ते-घुमड़ते हुए
गुजर रहे हैं तूफानी बादल
एक गहरी शान्ति धारे हुए।
परी गुफा में प्रकृति
बिखेर रही है अभिभूत कर देने वाली छटाएं।
दुर्गम खतरनाक ऊंचाइयों पर ही
दिखती है सुन्दरता
अपने अनन्त रूपों में।

कामरेड कुओ मो-जो को उत्तर[1]

(17 नवम्बर, 1961)

टूट पड़ता है धरती पर
एक तूफानी झंझावत
और इस तरह सफेद हड्डियों के ढेर से
उठता है एक शैतान।
परे नहीं था प्रकाश से भ्रमित भिक्षु,
लेकिन वह दुष्ट पिशाच
कहर तो बरपा करता ही हर हाल में।
स्वर्णिम वानरराज ने क्रुद्ध होकर

घुमाई अपनी भारी गदा
और जेड-समान समूचे आसमान में
छंट गया सारा गर्दो-गुबार।
आज, जब एक बार फिर
उमड़ रहा है जहरीला कुहासा,
चमत्कार करने वाले सुन ऊ-कुङ का
हम करते हैं आह्वान।

कुओ मो-जो की कविता
वारनराज के हाथों पिशाच की पराजय ऑपेरा देखने के बाद

आदमियों और पिशाचों में, सही और गलत में
अन्तर नहीं कर पाता है भ्रमित भिक्षु;
रहम करता है दुश्मनों पर
और कुढ़ता है दोस्तों से।
अविरत वह करता रहा
"स्वर्णचक्र" का सस्वर मंत्रपाठ,
और तीन बार उसने
बच निकलने दिया सफेद हड्डियों के शैतान को।
इसी लायक था वह भिक्षु
कि उसकी बोटी-बोटी काट डाली जाती।
चमत्कारी वानरराज के लिए
कोई फर्क नहीं पड़ता एक बाल तोड़े जाने से।
ऐसी समयोचित शिक्षा के लिए ही है
सारी प्रशंसा,
एक सुअर भी मूर्खों से
अधिक समझदार बन जाता है।

कामरेड कुओ मो-जो को उत्तर[1]

(9 जनवरी, 1963)

इस छोटे-से भूमण्डल[2] पर
कुछ थोड़ी-सी मक्खियां[3]
सिर टकराती हैं दीवारों से,[4]
बिना रुके भनभन करती हैं
कभी चीखती हैं
तो कभी कराहने लगती हैं।
बबूल के पेड़ पर चढ़ी चीटियां
बड़े राष्ट्र का दर्प दिखाती हैं
और कुछ चीटें, जिनके पंख उग आये हैं
शेखचिल्ली की तरह मंसूबे बांधते हैं
विशाल, वृक्ष को उखाड़ फेंकने का[5]।
पचिश्मी हवा चाड़आन नगर[6] पर
बिखेर देती है पत्तियां[7]
और उड़ते हैं तीर[8],
गूंजती है टंकार-प्रत्यंचाओं से।
इतने सारे काम करने को पड़े हैं
हमारे सामने,
और हर हाल में इन्हें निपटाना है तत्काल;
दुनिया घूम रही है लगातार
समय बनाये हुए हैं अपना दबाव।
दस हजार वर्ष बहुत अधिक हैं
मूल्यवान है हर दिन, हर घंटा
जिसे यूं ही नहीं निकल जाने देना है!
उमड़ रहे हैं चारों महासमुद्र,
बादल क्रोधोन्मत्त हो रहे हैं और
लहरे प्रचंड होती जा रही हैं
प्रकम्पित हो रहे हैं पांचों महाद्वीप
गरज रही हैं तूफानी हवाएं
और बिजलियां कड़क रही हैं।[9]
खात्मा होना ही है सभी बलाओं का,
टिक नहीं सकता है कोई भी
हमारी ताकत के सामने!

कुओ मो-जो की कविता

जब महासमुद्रों को आलोड़ित करता है तूफान
वीरों का पराक्रम प्रचण्ड हो उठता है।
साठ करोड़ लोग ऐक्यबद्ध सुदृढ़ होकर,
अडिग रहकर सिद्धान्तों पर
थाम्ह सकते हैं गिरते हुए विराट आकाश को
और अराजकता के घटाटोप के भीतर से
रच सकते हैं व्यवस्था।
मुर्गे की बांग सुन रही है दुनिया
और पूरब में फूट रही है दिन की उजास।

सूरज उग रहा है
पिघल रहे हैं हिमशिलाखंड,
आग की लपटों पर तपकर
सोना दे रहा है अपने असली होने का सबूत।
चार महान खंड[1]
हमें रास्ता दिखाते हैं।
कैसी बेतुकी है यह बात कि चियेह का कुत्ता
भौंकता है याओ पर[2];
मिट्टी की सांड-कूद पड़ते हैं सागर में
और गलकर बिला जाते हैं।[3]
पूर्वी हवाओं में लहरा रहा है
क्रान्ति का लाल परचम,
रक्तिम आभा से दीप्तिमान हो उठा है पूरा ब्रह्माड!

टिप्पणियां

कुनलुन

1. कुनलुन पश्चिमी चीन में स्थित एक पर्वत श्रृंखला है, जो सिनच्याङ वेवुर स्वायत्त प्रदेश और तिब्बत के बीच फैली हुई है। इसी पर्वत श्रृंखला की

(शेष पृष्ठ पर)

जन्म शताब्दी वर्ष

(10 फरवरी 1998-1999)

के अवसर पर

विशेष सामग्री

बर्तोल्त ब्रेख्त की अट्ठाइस कविताएं

(मूल जर्मन से अनुवाद : **मोहन थपलियाल**)

•

और **मोहन थपलियाल** का लेख

दुख के कारणों की तलाश का कवि

•

क्या अंधेरे वक्त में भी
गीत गाये जायेंगे?
हां, अंधेरे के बारे में भी
गीत गाए जायेंगे।
(बर्तोल्त ब्रेख्त)

एक कठिन समय में ब्रेख्त का जन्मशताब्दी वर्ष आया है। एक अंधेरे समय की चुनौतियों और दायित्वों के रूबरू खड़े होकर हम ब्रेख्त को याद कर रहे हैं।

वह महान जर्मन चिन्तक कवि-नाटककार जीवनपर्यन्त अंधेरे की ताकतों का कोप झेलता रहा और उनसे जूझता रहा। इस प्रक्रिया में उसने जीवन और कविता की शक्ति की पहचान की और उनकी अजेयता में दृढ़ निष्ठा अर्जित की। ब्रेख्त ने अपनी रचनाओं के जरिए न केवल मानवद्रोही-मानवद्वेषी शक्तियों पर हमला बोला बल्कि उनकी शक्ति के स्रोतों की भी शिनाख्त की। उसने पूंजीवाद के मानवद्रोही-कलाद्रोही अन्तर्वस्तु को तार-तार करते हुए जिजीविषा और युयुत्सा के गीत गाये। फासीवाद के कहर और युद्ध के विनाश का साक्षी और भोक्ता होने के नाते ब्रेख्त ने अपने समकालीनों और आने वाली पीढ़ियों को सिखाया कि फासीवाद से रोम-रोम से नफरत की जानी चाहिए और इसके विरुद्ध अन्तिम फैसले तक लड़ाई लड़ी जानी चाहिए।

बर्तोल्त ब्रेख्त सर्वहारा कला-साहित्य का अप्रतिम सिद्धान्तकार था। उसके इस पहलू पर अलग से विस्तृत चर्चा आज के समय की जरूरत है। खासतौर पर ब्रेख्तियन नाट्यशास्त्र को आज नये सिरे से जानने-समझने की जरूरत है। समाजवादी यथार्थवाद के अग्रदूतों की कतार में ब्रेख्त का स्थान गोर्की, आइज़ेंस्ताइन, स्तानिस्लाव्स्की, हावर्ड फास्ट, राल्फ फॉक्स आदि के बीच है। हाइने, वेयेर्त और फ्रैलिगराथ जैसे पहली पीढ़ी के सर्वहारा कवियों की सर्जनात्मकता को ब्रेख्त के कवि कर्म ने आगे विस्तार दिया। नाटककार के रूप में ब्रेख्त ने शेक्सपियर-मौलियर-इब्सन आदि की यूरोपीय क्रान्तिकारी बुर्जुआ यथार्थवाद की धारा को आगे सर्वहारा यथार्थवाद के सीमान्तों के भीतर अद्वितीय विस्तार दिया।

हमारी योजना पूरे जन्मशताब्दी वर्ष के दौरान ब्रेख्त की चुनी हुई कविताओं, कुछ नाटकों और महत्वपूर्ण सैद्धान्तिक लेखों को प्रकाशित करने की है। इसकी शुरुआत हम इस अंक में मोहन थपलियाल के एक लेख और ब्रेख्त की 28 कविताओं से कर रहे हैं। कविताओं का अनुवाद मोहन थपलियाल ने मूल जर्मन से किया है। ये कविताएं ब्रेख्त की 71 कविताओं और कुछ छोटी कहानियों के उस संकलन में शामिल हैं जो शीघ्र ही **परिकल्पना प्रकाशन, लखनऊ** से प्रकाशित होने वाला है।

— सम्पादक

दुख के कारणों की तलाश का कवि

बर्तोल्त ब्रेख्त (असली नाम आयगन बर्थोल्ड फ्रीडरिख ब्रेख्त) के लिए कविता करना और नाटक लिखना दो अलग चीजें नहीं रहीं। अपनी कविताओं के बारे में ब्रेख्त का कहना था कि उन्होंने अक्सर नाटक के लिए काम किया है, इसलिए हमेशा ही बोलचाल की भाषा में सोचा है। बोलचाल की इस भाषा को कविता में एक खास ढंग से रखने की तकनीक को वह 'भंगिमा' कहते थे। प्रतीकवाद और रूमानियत को खत्म करने में ब्रेख्त का जबरदस्त हाथ रहा और साथ ही साथ जर्मन साहित्य की कुछ पुरानी परम्पराओं का सहारा लेते हुए उन्होंने छन्द, कथाशैली, लोकगीत और मुहावरों का इस्तेमाल अपनी कविता में उतने ही सशक्त ढंग से किया, जितना कि पुराने कवियों में हाइनरिख हाइने ने। ब्रेख्त की कविताओं में तीखी लेकिन सीधी-सादी भाषा मिलती है। आयरनी (irony)का प्रवाह शैली को बांधते हुए चलता है। एक ही कविता में कई उतार-चढ़ाव, असम्बद्धता या तेल और तेजाब की गंध एक साथ देखने को मिल जाती है।

बर्तोल्त ब्रेख्त का जन्म 10 फरवरी 1898 को जर्मनी के बावेरिया प्रान्त के ऑग्सबुर्ग कस्बे में हुआ था। ऑग्सबुर्ग में इनके पिता एक पेपरमिल में प्रबन्ध निदेशक थे। माता-पिता का सम्बन्ध किसान परिवारों से था। इनके पिता एक रोमन कैथोलिक और माता लूथर मत की अनुयायी थी। बचपन में ब्रेख्त का लालन-पालन लूथर पद्धति से ही हुआ। प्राथमिक व सेकेंडरी स्कूल तक की शिक्षा ऑग्सबुर्ग में पूरा करने के बाद 1917 के पतझड़ में ब्रेख्त ने म्यूनिख यूनिवर्सिटी में मेडिकल साइंस की पढ़ाई में दाखिला लिया। मगर डाक्टरी पढ़ने के दौरान इनका रुझान ज्यादातर कविता और नाट्यलेखन की ओर ही बना रहा। उनकी कुछ प्रारम्भिक कविताएं ऑग्सबुर्ग के एक अखबार में पहले ही प्रकाशित हो चुकी थीं। प्रथम विश्वयुद्ध के अन्तिम वर्ष में ब्रेख्त को फौज से भर्ती होने का बुलावा आ गया। क्योंकि वह मेडिकल की पढ़ाई कर रहे थे, इसलिए उन्हें अग्रिम मोर्चे पर न भेज कर सेना के चिकित्सा कोर में भर्ती कर दिया गया। पिता की सिफारिश के चलते उनकी नियुक्ति ऑग्सबुर्ग के सैनिक अस्पताल में ही कर दी गयी। अस्पताल में उनकी ड्यूटी यौन रोग विभाग में लगा दी गयी थी। सेना की नौकरी ने उनके जीवन पर जो प्रभाव छोड़ा, उसकी वजह से वह जिन्दगी भर युद्धविरोधी या शान्तिप्रिय बने रहे। इस शान्तिकामी दर्शन का असर बाद में उनके राजनीतिक दृष्टिकोण पर भी पड़ा।

शुरू के वर्षों में ब्रेख्त के कुछ खास दोस्तों में सर्वाधिक जिगरी दोस्त पेंटर व डिजायनर कैस्पर नेहर थे, जो अन्तिम समय तक ब्रेख्त के घनिष्ठ सहयोगी बने रहे। ब्रेख्त अपनी गाथा-कविताओं (Ballads) को खुद लिखते थे, खुद उनका संगीत तैयार करते थे और फिर इन गीतों को अपनी मित्र मंडली के बीच खुद ही गाकर सुनाया करते थे। साहित्यिक जीवन के शुरुआती दौर में लिखे गये नाटकों को भी वह दोस्तों के बीच पढ़कर सुनाया करते थे। अपना पहला नाटक 'बाल' (ball) उन्होंने 1918 में लिखा। इस नाटक में एक युवा कवि की ऐसी उदात्त भावनाओं को नाट्यकथा का आधार बनाया गया है, जो जीवन के नशे में चूर होकर इतना अधिक उन्मत्त हो गया है कि तमाम सामाजिक रस्मों को तिलांजलि देकर वह आवारा और हत्यारा बन जाता है।

कैसर की जर्मनी का पतन होने के बाद ब्रेख्त पुनः म्यूनिख चले आये। यूनिवर्सिटी की पढ़ाई पर इस बार भी उनका ध्यान कम रहा और नाटकों के लेखन-मंचन की ओर ही उनकी दिलचस्पी ज्यादा बनी रही। कुछ समय तक वह ऑग्सबुर्ग से प्रकाशित होने वाले एक वामपन्थी अखबार-'देर फाल्क्सविले' (Der Volkswill) के नाट्य समीक्षक भी रहे। 1919 में ब्रेख्त ने अपना दूसरा नाटक 'ट्रामेल्न्न इन देर नाख्त' (ड्रम्स इन द नाइट) मंचन के लिए लियोन फायख्तवेंगर के सुपुर्द किया। फायख्तवेंगर उन दिनों म्यूनिख स्थित 'कायमस्पीले थियेटर' के साहित्यिक सलाहकारों में से एक थे। बाद में उन्होंने उपन्यास लेखन में भी काफी नाम कमाया। ब्रेख्त के साथ फायख्तवेंगर की दोस्ती भी आजीवन चली। फायख्तवेंगर ने-'ड्रम्स इन द नाइट' को उच्चस्तरीय नाटक करार देकर उसकी खूब प्रशंसा की। 29 सितम्बर 1922 को इस नाटक का पहला मंचन हुआ और इसी के साथ एक सफल एवं सक्षम नाटककार के रूप में ब्रेख्त को मान्यता मिलने में ज्यादा देर नहीं लगी। मेधावी युवा प्रतिभा को दिया जाने वाला उस वर्ष का 'क्लाइस्ट पुरस्कार' भी इस नाट्य रचना पर ब्रेख्त को दिया गया। नाटककार के रूप में मिली इस पहली सफलता के उल्लास में ब्रेख्त ने उसी वर्ष नवम्बर माह में युवा अभिनेत्री मारिया ने शोल्फ से शादी कर ली। ब्रेख्त के नाटक 'ड्रम्स इन द नाइट' की कहानी में मार्क्सवाद का प्रभाव नहीं है। इसकी कहानी संक्षेप में इस प्रकार है : प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान युद्ध के मोर्चे से घर लौटने पर एक सिपाही देखता है कि उसकी प्रेमिका को किसी अन्य व्यक्ति ने गर्भवती बना डाला है। ऐसी स्थिति में वह सिपाही बजाय इसके कि प्रेमिका के करतब से खिन्न होकर जनवरी 1919 में स्पार्टाकिस्ट्स के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी विद्रोह में हिस्सा लेता, वह उसी प्रेमिका के साथ सुविधाभोगी जीवन बिताने पर राजी हो जाता है। इस नाटक के बाद ब्रेख्त ने 'इन द जंगल आफ सिटीज' लिखा, जिसमें कि उनका दिशाहीन नजरिया जारी रहा। इस नाटक का पहला प्रदर्शन मार्च 1923 में म्यूनिख में हुआ था।

1924 में ब्रेख्त बर्लिन चले आये, जो कि उस वक्त जर्मनी की राजनीतिक और रंगमंचीय दोनों गतिविधियों का प्रमुख केन्द्र था। बर्लिन में ब्रेख्त ने मैक्स राइन हार्टस् के 'डयचे थियेटर' (जर्मन थियेटर) में कुछ समय तक नाटक लेखक एवं संपादन सहयोगी के रूप में काम किया। बर्लिन में वह वामपंथी कलाकार और बुद्धिजीवियों के बीच में खासकर लोकप्रिय होते गये और कुछ ही समय में इस गोल के केंद्रबिन्दु के रूप में स्थापित

हो गये। 1928 में उन्होंने अपनी पहली पत्नी मारिया ने शोल्फ से तलाक लेकर अभिनेत्री हेलने वाइगल से शादी कर ली।

ब्रेख्त की कला की मुख्य प्रवृत्ति पूंजीवादी नजरिये पर तीखा प्रहार करना रहा। दरअसल प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति पर जर्मनी की जनता बुरी तरह अपमानित और संत्रस्त हो चुकी थी। उस समय ब्रेख्त के कुछ साहित्यिक मित्र ऐसे भी थे, जिनका सम्बन्ध कला एवं साहित्य के 'दादा मूवमेंट' से रहा था। स्थापित व्यवस्था के खिलाफ एक नकारवादी आन्दोलन के रूप में 'दादा मूवमेंट' की शुरुआत 1996 के आसपास ज्यूरिख (स्विटजरलैंड) में हुई थी और 1920 के मध्य तक इस आन्दोलन की गतिविधियों का प्रमुख केन्द्र पेरिस हो गया था। 'दादा मूवमेंट' के समर्थक पूंजीवादी कला मूल्यों को नेस्तनाबूद करने का बीड़ा उठाये हुए थे। पूंजीवादी मूल्यों पर तीखे प्रहार का उदाहरण ब्रेख्त की उस दौर की लिखी 'हाउस पाउस टीले' (घरेलू स्रोत संग्रह) शीर्षक कविताओं में मिलता है। इन कविताओं का अंग्रेजी अनुवाद एरिक बेंटले ने 1927 में 'मैनुअल आफ पायटी' नाम देकर छापा था। इन कविताओं में एक युवा व्यक्ति की ऐसी भावनाएं हैं, जो बार-बार यह महसूस करता है कि उस पर चारों तरफ से कुदरत, युद्ध, यौनाकांक्षा और मौत ने हमला बोल दिया है और इस हमले से वह खुद को बेहद डरा-डरा पाता है। इसके बाद ब्रेख्त ज्यों-ज्यों इतिहास की सुसंगत एवं वैज्ञानिक विवेचना वाले मार्क्सवादी विचारों के प्रभाव में आये, त्यों-त्यों इस अराजक नकारवाद का असर उनकी रचनाओं से अदृश्य होने लगा। आगे चलकर ब्रेख्त ने मार्क्सवादी विचारधारा को ही वह एकमात्र उपाय माना, जिसके जरिए आदमी के दुखों का अन्त हो सकता है। बीसवीं सदी के तीसरे दशक के अन्तिम वर्षों में जिस व्यक्ति ने ब्रेख्त को मार्क्सवादी विचारधारा से परिचित कराया था, उसका नाम कार्ल कोर्श (karl korsch) था, जो एक प्रखर मार्क्सवादी चिन्तक होने के साथ-साथ राईखस्टाग (जर्मन संसद) में कम्युनिस्ट सदस्य भी रह चुका था।

प्रयोगधर्मी नाटक 'बाल' के दौर में ब्रेख्त अत्यधिक मस्तमौलेपन के शिकार रहे। इसके बाद कुछ समय तक उन पर फ्रांसिसी प्रतीकवादी कवि पॉल वरलीन, आर्थर रिम्बाउ, अंग्रेजी उपन्यासकार रुडयार्ड किपलिंग, जर्मन नाटककार ज्यॉर्ज बूखनेर और फ्रैंक वेडेकिंड का काफी प्रभाव रहा। मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित होकर लिखी गयी उनकी पहली रचना 'मन इस्ट मन' (A man is a man) है। यह नाटक पहली बार ड्रामस्टट में सितम्बर 1926 को मंचित किया गया था। लगभग दो वर्ष बाद बर्लिन के 'सिफबाउरदम' थियेटर में उनके नाटक 'थ्री पेनी ओपेरा' (ड्राइ ग्रोशेन ओपर) का मंचन हुआ, जिसने ब्रेख्त को आशातीत ख्याति दिलायी। इस नाटक के अत्यधिक लोकप्रिय होने का एक बड़ा कारण कुर्त वाइल्स का मोहक संगीत भी था। 9 मार्च 1930 को लाइपत्सिग में एक और ओपेरा 'राइज एंड फॉल ऑफ द सिटी महोगनी' का सफल मंचन हुआ। इसका संगीत भी कुर्त वाइल्स ने ही तैयार किया था।

इन नाटकों में ब्रेख्त ने अराजकता, यौनलिप्सा, लालच और हिंसा को पूंजीवादी समाज की निरंकुशता और खुदगर्जी की देन माना है। इसी क्रम में ब्रेख्त ने और भी कई शिक्षात्मक नाटक व ओपेरा (Didactie plays-opersa) लिखे, जिनका मकसद आम जनता को मार्क्सवाद का आत्मानुशासन और आत्मनिषेध समझाना था। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि इन शिक्षात्मक नाटकों में भी ब्रेख्त ने कलात्मकता के बेहतरीन मानदण्डों को बरकरार रखा है। जाहिर है ऐसा करने में उन्होंने अपने शुरुआती लेखन की ओजस्विता और बेलाग कथनशैली का बखूबी निर्वाह किया है। इस कड़ी के अन्तर्गत लिखे गये नाटकों में मार्क्सवादी आत्मानुशासन का यहां तक अनुपालन किया गया है कि व्यक्ति खुद अपना बलिदान तक करने को राजी हो जाता है। 'देर या जागर उंट देर ना जागर' (ही हू सेज़ यस एंड ही हू सेज नो) नाटक भी एक सामूहिक उद्देश्य के लिए आत्महत्या की समस्या पर केन्द्रित है। 1930 में मंचित दो नाटक 'दी आउसनामे उंट दी रेगल' (द एक्सेपशन एंड द रूल) और 'दी मासनामे' (द मेजर्स टेकन) भी शिक्षात्मक नाटकों में उत्तम ठहरते हैं। 'दी मासनामे' (हिंदी में 'फैसला') ब्रेख्त के शिक्षात्मक नाटकों में उत्कृष्ट कृति मानी जाती है। इसका संगीत हंस आइसलर ने तैयार किया था। इस नाटक की कहानी में यह दिखाया गया है कि चीनी क्रान्ति के दौरान एक कम्युनिस्ट युवा क्रान्तिकारी जो पार्टी अनुशासन तोड़ डालता है, बाद में इस बात के लिए राजी हो जाता है कि उसका सफाया कर दिया जाये। वह तर्क देता है कि ऐसा करने पर जिस जनसंघर्ष को उसने खतरे में डाला है, वह पुन: जारी रह सकता है।

इन छोटे शिक्षात्मक नाटकों के बाद ब्रेख्त ने दो लम्बे शिक्षात्मक नाटक और लिखे। इस कड़ी में पहला लम्बा नाटक उन्होंने मैक्सिम गोर्की के उपन्यास 'द मदर' की कथा को आधार बना कर यही शीर्षक देकर लिखा, जिसका मंचन 12 जनवरी 1932 को हुआ। दूसरा नाटक उन्होंने 'स्टाकयार्ड्स का सेंट जुआन' लिखा। इस नाटक के जरिए उन्होंने 1929 की भयानक आर्थिक मंदी के कारणों का पर्दाफाश-शिकागो गोश्तमंडी के उतार-चढ़ाव के जरिये दिखाया था। यह नाटक जिन दिनों लिखा गया, तब तक जर्मनी की राजनीतिक स्थिति काफी बदहाल हो चुकी थी अत: इस नाटक का मंचन सम्भव नहीं हो सका। अलबत्ता काफी काट-छांट करने के बाद 11 अप्रैल 1932 को इस नाटक का रेडियो रूपान्तरण अवश्य प्रसारित किया गया था।

30 जनवरी 1933 को जब हिटलर जर्मनी की सत्ता पर काबिज हुआ, तब तक यह साफ हो चुका था कि ब्रेख्त अब जर्मनी में नहीं रह सकेंगे। फलस्वरूप ब्रेख्त के जीवन में निर्वासन का लम्बा सिलसिला शुरू हुआ। सबसे पहले वह जर्मनी से निकल कर डेनमार्क आये, जहां फिन टापू पर सेवेंडबोर्ग नामक कस्बे में उन्होंने अपना ठिकाना जमाया। हिटलर के शासन के पहले वर्ष के दौरान सेवेंडबोर्ग में रहते हुए उन्होंने जो नाटक लिखे, उनकी विषयवस्तु ज्यादातर प्रचारात्मक थी। अत: इनका महत्व काफी हद तक अल्पकालिक ही रहा। मसलन नस्लवाद पर करारा व्यंग्य के रूप में लिखित उनका नाटक 'द राउंड हेड्स एंड द पीकहेड्स' तथा उस दौरान हिटलर की जर्मनी में छाये खौफ को दर्शाने वाले छोटे-छोटे एकांकी नाटकों का संग्रह – 'फीयर्स एंड मिजरीज़ ऑफ द थर्ड राइख'। एक और नाटक उन्होंने स्पेनी गृहयुद्ध की विभीषिका पर भी लिखा, जिसका शीर्षक 'सेनेरा कारार की रायफल' (सेनेरा कारार्स रायफल) था।

मार्च 1938 में जर्मनी द्वारा आस्ट्रिया का अधिग्रहण करने के बाद ब्रेख्त को यह महसूस होने लगा था कि अब किसी भी सूरत में युद्ध को टाला जाना सम्भव नहीं है और ऐसी परिस्थिति में भविष्य में जो कुछ होने वाला है, उसे बदलना उनके बूते के बाहर है। यह सोचकर उन्होंने अपने लेखन को गम्भीर वैचारिक दर्शन की ओर मोड़ना ही सर्वोपरि समझा और पूरे मनोयोग से इसी दिशा में जुट गये। इस प्रकार ब्रेख्त के रचनात्मक संसार का सर्वाधिक सर्जनात्मक युग शुरू हुआ। ब्रेख्त ने अपने शुरुआती जीवन की रचनात्मक ऊर्जा और शिक्षात्मक युग के वैचारिक अनुशासन को मिलाकर इस दौरान अपनी रचनाओं में एक गहरी काव्यरूपकता देकर उसे नवीनीकृत किया। इस दौर का सर्वाधिक उल्लेखनीय नाटक 'द लाइफ ऑफ गैलीलियो' है, जो एक ऐसे संसार में रह रहे प्रतिभाशाली वैज्ञानिक की साहसपूर्ण जिम्मेदारी व्यक्त करता है, जो चारों ओर अपने को प्रतिद्वन्द्वियों से घिरा हुआ पाता है। इस दौर का दूसरा महत्वपूर्ण नाटक 'द गुड वूमेन ऑफ सेजुआं' है। इस नाटक का कथासार यह है कि लालच पर आधारित समाज में यह कतई संभव नहीं है कि वहां अच्छे आदमी मिल जायें! एक और नाटक ब्रेख्त ने 'तीस वर्षीय युद्ध' (थर्टी इयर्स वार) की त्रासदी पर 'मदर करेज एंड हर चिल्ड्रेन' नाम से लिखा। इस नाटक में ब्रेख्त ने यह दिखाया है कि युद्ध की क्रूरताओं के लिए सीधे-सरल लोग भी दोषी होते हैं, खासकर जब ऐसे लोग अपने छोटे-मोटे क्रिया-कलापों की वजह से युद्ध में सहायक होकर

उसे तरजीह देते हैं।

द्वितीय विश्वयुद्ध का खतरा ज्यों-ज्यों सामने आ रहा था, ब्रेख्त को यह लगने लगा था कि अब उनका डेनमार्क में रह पाना भी सुरक्षित नहीं होगा। यह सोचकर वह अप्रैल 1939 में स्वीडन और एक वर्ष बाद फिनलैंड चले आये। फिनलैंड की पृष्ठभूमि पर उन्होंने वहां अपना नया नाटक – 'मिस्टर पुंतीला और उसका सेवक माती' (मिस्टर पुंटीला एंड हिज सर्वेंट माटी') लिखा। इस नाटक में ब्रेख्त ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि पूंजीवादी निपुणता और मानवीय उदारता – इन दो तत्वों का सामंजस्य होना असंभव है। इसी दौर में उन्होंने 'द रेज़िस्टिबल राइज़ ऑफ अर्तुरी उई' लिखा, जो तानाशाह हिटलर के उत्थान पर एक जबरदस्त प्रहसन (कैरीकेचर) है। इस नाटक में हिटलर की तुलना शिकागो के गैंगस्टरों से की गयी है।

ब्रेख्त शायद यूरोप में चारों तरफ मंडरा रहे युद्ध के खतरों से बचना चाहते थे। इसीलिए प्रतिबद्ध मार्क्सवादी विचारक और कम्युनिस्ट समर्थक होते हुए भी उन्होंने सोवियत संघ में रुकना उचित नहीं समझा, जबकि 1936 से 1939 तक मास्को से प्रकाशित होने वाली एक जर्मन साहित्यिक पत्रिका में वह बतौर सहायक सम्पादक के रूप में जुड़े रहे थे। अत: मई 1941 में अमेरिकी वीसा प्राप्त होने पर वह पूरे सोवियत संघ की यात्रा करने के बाद व्लाडीवोस्टक पहुंचे और वहां से समुद्री जहाज पर बैठकर अमेरिका चले आये। ब्रेख्त के अमेरिका पहुंचने के कुछ ही दिन बाद जर्मनी ने सोवियत संघ पर हमला बोल दिया था।

अमेरिका में आकर ब्रेख्त सांता मोनिका (केलीफोर्निया) में रहे, लेकिन बीच-बीच में लम्बे पड़ावों पर वह न्यूयार्क भी जाते रहे। हालीवुड फिल्म इंडस्ट्री के लिए भी उन्होंने काम करने की कोशिश की, लेकिन इस दिशा में वह ज्यादा सफल नहीं हो सके। उन्होंने केवल एक ही पटकथा सिनेमा वालों को बेची, जिसका शीर्षक 'हैंगमैन आल्सो दी' (Hangman also die) था। 1942 में इस फिल्म का निर्देशन प्रसिद्ध निर्देशक फ्रित्स लांग ने किया था। अमेरिका प्रवास में ब्रेख्त ने अपना अन्तिम महान नाटक 'द काकेशियन चाक सर्किल' पूरा किया। इस नाटक में भी नेकी (Goodnes) की समस्या का ज्वलन्त चित्रण किया गया है और यह दिखाया गया है कि एक आततायी समाज में इंसाफ पाने के रास्ते में क्या-क्या कठिनाइयां पैदा हो सकती हैं?

हालीवुड में ब्रेख्त ब्रितानी अभिनेता चार्ल्स लागटन से भी मिले। 'द लाइफ ऑफ गैलीलियो' के अंग्रेजी रूपान्तर पर उन्होंने लागटन के साथ काम किया। लागटन ने 'गैलीलियो' के अंग्रेजी संस्करण का सफल मंचन जुलाई 1947 में लास एंजल्स में किया। एक समर्थ नाटककार और कवि के बतौर अमरीका में ब्रेख्त को काफी प्रसिद्धि और मान्यता मिलने लगी थी, लेकिन इसी बीच 30 अक्टूबर 1947 को उन्हें 'अमेरिकी विरोधी गतिविधियों' की जांच के लिए गठित मैकार्थी कमेटी के समक्ष बतौर गवाह हाजिर होना पड़ा। यह कमेटी हालीवुड के सिनेमाजगत में कम्युनिस्ट समर्थकों की जांच-पड़ताल कर रही थी। मैकार्थी कमेटी के सामने ब्रेख्त ने अपनी हाजिरजवाबी और तीक्ष्ण बुद्धिमत्ता का अद्‌भुत परिचय दिया, लेकिन कुल मिलाकर यह अनुभव उन्हें बेहद नागवार लगा और उसी के अगले दिन उन्होंने अमेरिका को अलविदा कहकर यूरोप के लिए प्रस्थान कर दिया।

अमेरिका से लौटकर ब्रेख्त ने सर्वप्रथम स्विट्‌जरलैंड में अपना ठिकाना जमाया। यहां रहते हुए वह उन संभावनाओं का पता भी लगाते रहे कि कहां रहकर वह अपनी विचारधारा के नाटकों का मंचन बेहतर ढंग से कर सकेंगे। इस दिशा में वह आस्ट्रिया को उपयुक्त समझते थे, क्योंकि वहां की भाषा भी जर्मन थी और वहां से वह पूर्वी और पश्चिमी दोनों जर्मन देशों के बीच आ-जा सकते थे। बीच में एक मौका ऐसा भी आया जब उन्हें यह लगने लगा था कि साल्सबुर्ग महोत्सव में उन्हें कला निदेशक का पद दिया जा सकता है। फलस्वरूप उन्होंने आस्ट्रियाई नागरिकता के लिए प्रार्थनापत्र दे दिया था, परन्तु इसी बीच अक्टूबर 1948 में उन्हें 'मदर करेज' के मंचन के लिए पूर्वी बर्लिन आने का न्यौता मिला। पूर्वी बर्लिन में यह नाटक बेहद सफल रहा। नाटक के मंचन के बाद ब्रेख्त पुन: 11 जनवरी 1949 को वापस ज्यूरिख चले आये। ज्यूरिख पहुंच कर उन्होंने एक बार फिर आस्ट्रिया की नागरिकता के लिए नये सिरे से दबाव डालना शुरू किया ही था कि तभी पूर्वी जर्मनी से उन्हें इस आशय का प्रस्ताव मिला कि वहां रहकर वह अपनी स्वयं की नाट्य मंडली का संचालन कर सकते हैं। यह प्रस्ताव उनकी समझ में आ गया और आखिरकार उन्होंने पूर्वी बर्लिन जाने का फैसला कर लिया। यहां आकर वह 'बर्लिनर इनसेम्बले' की स्थापना में जुट गये। 12 नवम्बर 1949 को 'पुंतीला' नाटक के मंचन के साथ उन्होंने विधिवत रूप से इनसेम्बले का उद्‌घाटन किया। पूर्वी बर्लिन में अपना काम शुरू कर चुकने के बावजूद ब्रेख्त बराबर यह चाहते रहे कि अपने नाटकों का मंचन वह पूर्वी जर्मनी से बाहर भी करते रहें, इसलिए उन्होंने आस्ट्रियाई राष्ट्रीयता लेने की कोशिश की, जो उन्हें अप्रैल 1950 में स्वीकृत हुई। इसी के साथ उन्होंने अपने नाटकों के सर्वाधिकार भी पश्चिमी जर्मनी के प्रकाशक- 'सुरकाम्प फेरलाग' को दिये। इस तरह उन्होंने पूर्वी जर्मनी की बाध्यता (सेंसरशिप) से अपने को काफी हद तक मुक्त कर लिया था और पश्चिम में थोड़ा-बहुत अपनी कमाई का जरिया भी खुला रख छोड़ा था।

पूर्वी बर्लिन में ब्रेख्त ने अपने उन नाटकों का मंचन किया, जो उन्होंने अपने निर्वासन काल में लिखे थे। मंचन के दौरान उन्होंने अपनी विचारधारा के अनुरूप इन नाटकों में जरूरी संशोधन एवं संवर्द्धन भी किये। पूर्वी जर्मनी में आने से पहले 1948 में ज्यूरिख में रहते हुए उन्होंने अपना 'संक्षिप्त नाट्यशास्त्र' भी तैयार कर डाला था।

ब्रेख्त ने अपने नाटकों के लिए जो विचारधारा प्रतिपादित की, उसे उन्होंने इपिक थियेटर (लोकनाटक) का नाम दिया। उन्होंने अभीष्ट मार्क्सवादी नाटक वही माना जो अरस्तूवादी नाटकों की उस परम्परा से अलग खड़ा हो, जिसमें यह माना जाता है कि दर्शक जो कुछ मंच पर घटित होते देख रहा है, यह मान कर देख रहा है कि वह सारा कुछ उसके सामने तत्काल घटित हो रहा है। इसके विपरीत ब्रेख्त का यह मानना था कि यदि अतीत के नायकों- ओडीपस, किंग लीयर अथवा हेमलेट- के मनोभावों की आज के दर्शकों पर वही प्रतिक्रिया हो सकती है, जो उनके युगों में होती थी, तब मार्क्सवादी दर्शन की यह विचारधारा कि मानवीय स्वभाव स्थिर न रहकर निरन्तर बदलती परिस्थितियों में परिवर्तनशील है, गलत सिद्ध हो जायेगा। ब्रेख्त ने इसीलिए यह तर्क दिया कि एक नाटक को-जो कुछ वह अपने पात्रों द्वारा मंच पर घटित होता दिखा रहा है, उससे- दर्शकों का तादात्म्य स्थापित करने की कोशिश हरगिज नहीं करनी चाहिए और न ही दर्शकों के दिमाग में पात्रों की ऐतिहासिकता का 'सच' घुसाने की कोशिश करनी चाहिए। बल्कि इसके विपरीत एक नाटक को ऐसी भूमिका अदा करनी चाहिए, जैसा लोकगायक की कला करती है- जिसमें कि दर्शक को बार-बार यह आगाह किया जाता है कि जो कुछ वह मंच पर घटित होते देख रहा है, वह महज अतीत का लेखा-जोखा है, जिसे उसे (दर्शक) अपनी पैनी निगाह के साथ कुछ फासला रख कर (with detachment) देखना चाहिए। कुल मिलाकर ब्रेख्त ने अपने इपिक थियेटर (लोकनाटक) का आधार कथनात्मक (नैरेटिव) अथवा अनाटकीय (अनड्रामाटिक) ही माना। इपिक थियेटर का सम्बन्ध उन्होंने सीधे-सीधे अलगाव/पृथकपन/अजनबीपन/दूरस्थता अथवा फासला जैसे तत्वों से जोड़ा और इस तरह के अलगाव प्रभाव (Alienation effect) को पैदा करने के लिए उन्होंने कई तरह की विधियों का प्रयोग अपने नाटकों में किया, जिनके जरिए दर्शक को बार-बार यह चेताया जाता है कि उसके समक्ष मंच पर यथार्थ (रियलिटी) को किसी भ्रम (इल्यूजन) के रूप में न दिखाकर मानव स्वभाव के एक नमूने (माडल) के बतौर पेश किया जा

रहा है। अर्थात दर्शक सिर्फ एक नाटक देख रहा है, कोई हकीकत नहीं। वाल्टर बेंजामिन ने ब्रेख्त के इपिक थियेटर पर टिप्पणी करते हुए कहा था कि वह एक साथ दो तरह का प्रभाव दर्शक पर छोड़ता है: ब्रेख्त जहां नाटकीय तत्वों को ध्वस्त करते हैं, वहां वह दर्शक को सोचने के लिए मजबूर करने के साथ-साथ एक अलग किस्म का हास्य पैदा करके उसे (दर्शक) तनावमुक्त भी करते हैं। बेंजामिन ब्रेख्तियन थियेटर (इपिक थियेटर) को समय के बिस्तर पर से फूटी हुई एक ऐसी वेगवती सतरंगी धारा मानते थे, जो कुछ क्षणों तक आकाश में मंडराती हुई फिर समय के बिस्तर पर आकर खत्म हो जाती है। युवा मार्क्सवादी आलोचकों में टेरी इगलटन (terry eagleton) का यह मानना है कि एर्न्स्ट ब्लाख, ज्यार्ज लुकाच, बर्तोल्त ब्रेख्त, वाल्टर बेंजामिन और थियोडोर अडोर्नो में से सिर्फ ब्रेख्त ही ऐसे लेखक हैं, जिनमें कामदी का तत्व मिलता है। कुछ आलोचकों ने ब्रेख्त की रचनाओं में कामदी, विनोदप्रियता (ह्यूमर) और विचारों का एक साथ अद्भुत निचोड़ माना है। जीवन के अंतिम वर्षों में ब्रेख्त अपने नाटकों की विचारधारा को 'द्वन्द्वात्मक नाटक' (डायलेक्टिकल थियेटर) की संज्ञा देने लगे थे, लेकिन कमोबेश यह नया नाम भी 'इपिक थियेटर' का स्थानापन्न भर ही था। एक खास विश्व दृष्टिकोण के जरिए ब्रेख्त के नाटकों में जो रचनात्मक संश्लिष्टता पैदा हुई, उसके फलस्वरूप आधुनिक नाटक को ऐसी गहरी अन्तर्दृष्टि और चारित्रिक समृद्धता मिली, जो ब्रेख्त से पूर्व लिखे जाने वाले तथाकथित आधुनिक नाटकों में एकदम गायब थी।

1920 के आसपास जो ब्रेख्त अपने रचना-संसार में बेहद उदण्ड और स्वेच्छाचारी थे, छठे दशक के पूर्वार्द्ध में वही ब्रेख्त पूर्वी जर्मनी की समाजवादी सरकार के शिखर पुरुष के रूप में स्थापित हो चुके थे। उनके निर्देशन में बर्लिनर इनसेम्बले ने विश्वव्यापी ख्याति अर्जित की । सिर्फ उलब्रिख्त के शासनकाल (1951) में उन्हें कुछ मुश्किलों का सामना करना पड़ा। उलब्रिख्त शासन ने ब्रेख्त के एक ओपेरा– 'द ट्रायल ऑफ लुकुलस' को, जिसे उन्होंने 1940 में प्रसारित एक रेडियो नाटक के आधार पर लिखा था, कुछ मंचनों के बाद शांतिवाद का पोषक होने का आरोप लगाकर प्रदर्शन की अनुमति देने से मना कर दिया था। 1954 में 'बर्लिनर इनसेम्बले' अपनी निजी इमारत – सिफबाउरडम थियेटर में चला गया, जहां 1928 में कभी ब्रेख्त के नाटक 'थ्री पेनी ओपेरा' ने धूम मचाई थी। मई 1955 में ब्रेख्त को लेनिन शांति पुरस्कार से सम्मानित किया गया, जिसे लेने वह मास्को गये। 27 अगस्त 1956 से बर्लिनर इनसेम्बले की टीम को लंदन में अपने नाटकों का प्रदर्शन करने जाना था, लेकिन इससे कुछ ही दिन पहले मंगलवार 14 अगस्त 1956 को दिल का दौरा पड़ने से बीसवीं सदी के इस महान कवि-नाटककार का देहान्त हो गया।

नाटक के लिए एक अभीष्ट मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र निर्माण करने की कोशिश में ब्रेख्त कहां तक सफल हुए, इस प्रश्न पर विद्वानों में यद्यपि आज भी मतभेद कायम हैं, लेकिन एक समर्थ नाटककार और उससे भी बढ़कर एक सशक्त कवि के रूप में उनकी प्रतिष्ठा विश्व रंगमंच एवं कविता के फलक पर आज भी संदेह से परे है। सामाजिक और राजनीतिक चेतना को लेखन की पहली शर्त मानते हुए ब्रेख्त ने मार्क्सवाद के द्वन्द्वात्मक सिद्धान्त को कविता में कायम रखा। व्यक्ति और समूह के बीच के वास्तविक तनावों को मजबूती से पकड़ते हुए उन्होंने खासकर छोटी कविताएं ज्यादा लिखीं। शब्दों की भरमार से कविता को बचाया और भाषा के सजीले कपड़ों को उतारते हुए नंगी और ठिठुरती हुई भाषा को समाज के निचले वर्गों तक पहुंचाया, जहां यह म्यान रहित भाषा कविता को हथियार की शक्ल दे सकी। दोनों बड़ी लड़ाइयों के दौरान और बाद में भी जब कि यूरोप और अमरीका के बुर्जुआ कवियों ने कविता को विलास का साधन मानते हुए उसे सिर्फ सुविधाभोगी, सम्पन्न और पढ़े-लिखे आदमियों की थाती समझ रखा था, ब्रेख्त मुस्तैदी के साथ अपनी कविता में जनता के पक्षधर की हैसियत से लड़ते रहे। ब्रेख्त की यह कविता जर्मन साहित्य के न सिर्फ समकालीन बल्कि किसी भी युग के साहित्य की अमूल्य धरोहर के रूप में सुरक्षित रखे जाने के योग्य है।

कला और राजनीति पर अपने विचारों को प्रकट करते हुए ब्रेख्त ने यह स्पष्ट किया कि कला का महत्व तभी तक है, जब तक कि मनुष्य जाति का अस्तित्व बरकरार है; मनुष्य आ अस्तित्व यदि समाप्त हो जाता है तो कला भी स्वयं नष्ट हो जायेगी। उनका यह भी कहना था कि बहुत सारे खूबसूरत शब्दों को एक साथ रख देने भर से वह कला नहीं बन जाती है। महज इसी कारण ब्रेख्त ने अपनी कविता में एक गंवारू काव्य भाषा का संसार भी रचा और अन्त तक इस लोकभाषा के जबरदस्त समर्थक बने रहे।

नाटक और कविता के अलावा 'कौयनर महाशय की कहानियों' तथा 'ब' महाशय की कहानियों में ब्रेख्त ने शब्दों की जिस किफायतशारी का परिचय दिया है, वह भी अन्यत्र दुर्लभ है। जर्मन साहित्य के एक समीक्षक सीगफ्रीड ने ब्रेख्त की इन छोटी कहानियों को जर्मन गद्य का रत्न कहा है। सीगफ्रीड का यह भी मानना है कि 'क' महाशय का मनपसंद जानवर, जैसी कहानी निश्चित रूप से ब्रेख्त का 'सेल्फ पोर्ट्रेट ' है। यानी ब्रेख्त की नैतिकता, शिक्षाओं और बुद्धिमानी का मिलाजुला रूप। 'क' (कौयनर) सीरीज की कहानियों में 'क' महाशय या तो ब्रेख्त स्वयं हैं, या फिर कम्युनिस्ट विचारों से लैस व्यक्ति हैं, जबकि 'ब' सीरीज में स्वयं ब्रेख्त ही 'ब' हैं। 'ब' सीरीज के अंग्रेजी अनुवाद भी बहुत कम देखने को मिलते हैं।

मार्क्सवाद के प्रति ब्रेख्त की प्रतिबद्धता ने उन्हें लिखने की गहरी आकुलता दी और साथ ही एक ऐसा सशक्त विश्व दृष्टिकोण भी दिया, जिसके जरिये वह दुनिया में जो कुछ घट रहा है, उसका वैज्ञानिक सर्वेक्षण-विश्लेषण साफ-साफ करने में कामयाब रहे। इसी के साथ उनके भीतर एक मानवीय कवि की जो ईमानदारी और छटपटाहट थी, उसने उन्हें चरित्रों के जीवन्त सच से कभी अलग नहीं होने दिया। अपनी रचनाओं में उन्होंने महज दुख का बखान नहीं किया बल्कि दुख के कारणों की जांच-पड़ताल में भी गहराई तक गये। इस प्रकार नाटक के पात्रों का चित्रण करते हुए उन्होंने एक ओर जहां ईमानदार नाटककार की भूमिका निभाई, वहीं दूसरी ओर इसी सत्यनिष्ठा के चलते अंतिम दौर के नाटकों में, यद्यपि उनकी अवधारणा मार्क्सवादी पाठ (text) के रूप में ही की गयी थी, वह मूलभूत उद्देश्यों से काफी आगे निकल आये थे। एक सत्यनिष्ठ, ईमानदार और मानवीय व्यक्ति की रचनात्मक संवेदना की यह ऊंची छलांग ही ब्रेख्त को एक महान कवि और नाटककार के रूप में स्थापित कर गयी।

● मोहन थपलियाल

बर्तोल्त ब्रेख्त की जन्मशताब्दी
(10 फरवरी 1898–1999) के अवसर पर
परिकल्पना की विशेष भेंट

इकहत्तर कविताएं और तीस छोटी कहानियां – *बर्तोल्त ब्रेख्त*

मूल्य : 50 रुपये

अनुवाद (मूल जर्मन से) : **मोहन थपलियाल**

ब्रेख्त के दुर्लभ चित्रों व कैरिकेचर्स से सज्जित

मंगवाने के लिए धनादेश भेजें और पत्र लिखें :
परिकल्पना
3/274, विश्वासखण्ड, गोमतीनगर, लखनऊ – 226010

अट्ठाइस कविताएं

•

बर्तोल्त ब्रेख्त

1. भूखों की रोटी हड़प ली गई है

भूखों की रोटी हड़प ली गई है
भूल चुका है आदमी मांस की शिनाख्त
व्यर्थ ही भुला दिया गया है जनता का पसीना।
जय पत्रों के कुंज हो चुके हैं साफ।

गोला बारूद के कारखानों की चिमनियों से
उठता है धुआं।

(1933-47)

2. लड़ाई का कारोबार

एक घाटी पाट दी गयी है
और बना दी गयी है एक खाई।

(1933-47)

3. आने वाले महान समय की रंगीन कहावत

जंगल पनपेंगे फिर भी
किसान पैदा करेंगे फिर भी
मौजूद रहेंगे शहर फिर भी
आदमी लेंगे सांस फिर भी।

(1933-47)

4. युद्ध जो आ रहा है

युद्ध जो आ रहा है
पहला युद्ध नहीं है।
इसे पहले भी युद्ध हुए थे।
पिछला युद्ध जब खत्म हुआ
तब कुछ विजेता बने और कुछ विजित.
विजितों के बीच आम आदमी भूखों मरा
विजेताओं के बीच भी मरा वह भूखा ही।

(1936-38)

5. दीवार पर खड़िया से लिखा था :

दीवार पर खड़िया से लिखा था :
वे युद्ध चाहते हैं
जिस आदमी ने यह लिखा था
पहले ही धराशायी हो चुका है।

(1936-38)

6. ऊपर बैठने वालों का कहना है :

ऊपर बैठने वालों का कहना है :
यह महानता का रास्ता है
जो नीचे धंसे हैं, उनका कहना है:
यह रास्ता कब्र का है।

(1936-38)

7. नेता जब शान्ति की बात करते हैं

नेता जब शान्ति की बात करते हैं
आम आदमी जानता है
कि युद्ध सन्निकट है
नेता जब युद्ध का कोसते हैं
मोर्चे पर जाने का आदेश
हो चुका होता है

(1936-38)

8. जब कूच हो रहा होता है

जब कूच हो रहा होता है
बहुतेरे लोग नहीं जानते
कि दुश्मन उनकी ही खोपड़ी पर
कूच कर रहा है
वह आवाज जो उन्हें हुक्म देती है
उन्हीं के दुश्मन की आवाज होती है
और वह आदमी जो दुश्मन के बारे में बकता है
खुद दुश्मन होता है।

(1936-38)

9. वे जो शिखर पर बैठे हैं, कहते हैं :

वे जो शिखर पर बैठे हैं, कहते हैं :
शान्ति और युद्ध के सार तत्व अलग-अलग हैं
लेकिन उनकी शान्ति और उनका युद्ध
हवा और तूफान की तरह हैं
युद्ध उपजता है उनकी शान्ति से
जैसे मां की कोख से पुत्र
मां की डरावनी शक्ल की याद दिलाता हुआ
उनका युद्ध खत्म कर डालता है
जो कुछ उनकी शान्ति ने रख छोड़ा था।

(1936-38)

10. 1940 (6)

मेरा छोटा लड़का मुझसे पूछता है: क्या मैं गणित सीखूं?
क्या फायदा है, मैं कहने को होता हूं
कि रोटी के दो कौर एक से अधिक होते हैं
यह तुम एक दिन जान ही लोगे।

मेरा छोटा लड़का मुझसे पूछता है:
क्या मैं फ्रांसीसी सीखूं?
क्या फायदा है, मैं कहने को होता हूं
यह देश नेस्तनाबूद होने को है।
और यदि तुम अपने पेट को हाथों से मसलते हुए
कराह भरो, बिना तकलीफ के झट समझ लोगे।

मेरा छोटा लड़का मुझसे पूछता है: क्या मैं इतिहास पढूं?
क्या फायदा है, मैं कहने को होता हूं
अपने सिर को जमीन पर धंसाए रखना सीखो
तब शायद तुम जिन्दा रह सको।

(1936-38)

11. अच्छे कारण के लिए खदेड़ा गया

खाते-पीते घर के बच्चों की तरह
मेरा लालन-पालन हुआ
मेरे मां-बाप ने मेरे गले में
एक कालर बांधा और
खूब टहल-खिदमत करते हुए
मुझे पाला-पोसा और बड़ा किया
उन्होंने मुझे ऐसी शिक्षा दी ताकि
मैं दूसरों के ऊपर हुक्म वा रौब
गालिब कर सकूं
लेकिन मैं जब सयाना हुआ
और अपना अड़ोस-पड़ोस देखा तो
अपने खेमे के लोग मुझे कतई नहीं भाये
न मुझे हुक्म देना भाता
न अपनी खिदमत
सो अपने खेमे के लोगों से नाता तोड़कर
मैं तुच्छ श्रेणी के लोगों के बीच जा बैठा।

इस प्रकार
उन्होंने एक विश्वासघाती को पाला-पोसा
अपनी सभी चालें उसे सिखाईं और
उसने वे सारे भेद दुश्मन को जाकर खोल दिए।

हां, मैं उनके भेद खोलकर रख देता हूं
मैं लोगों के बीच जाकर उनकी
ठगी का पर्दाफाश कर देता हूं
मैं पहले ही बता आता हूं
कि आगे क्या होगा, क्योंकि मैं
उनकी योजनाओं की अन्दरूनी जानकारी रखता हूं।

उनके भ्रष्ट पंडितों की संस्कृत
मैं बदल डालता हूं शब्द-ब-शब्द
आम बोलचाल में और वह
दिखने लगती है साफ-साफ गप्प-गीता।

इंसाफ के तराजुओं पर
वे कैसे डंडी मारते हैं
यह पोल भी मैं खोल देता हूं।
और उनके मुखबिर बता आते हैं उन्हें
कि मैं ऐसे मौकों पर बेदखल लोगों के बीच
बैठता हूं, जब वे बगावत
की योजना बना रहे होते हैं।

उन्होंने मेरे लिए चेतावनी भेजी
और मैंने जो कुछ भी जोड़ा था अपनी मेहनत से
वह छीन लिया
इस पर भी मैं जब बाज न आया
वे मुझे पकड़ने के लिए आए
हालांकि उन्हें मेरे घर पर कुछ भी नहीं मिला
सिवाय उन पर्चों के
जिनमें जनता के खिलाफ
उनकी काली करतूतों का खुलासा था
सो, चटपट उन्होंने मेरे खिलाफ
एक वारंट जारी किया
जिसमें आरोप था कि मैं तुच्छ विचारों का हूं
यानी तुच्छ लोगों के तुच्छ विचार।

मैं जहां कहीं जाता
धनकुबेरों की आंख का कांटा सिद्ध होता,

लेकिन जो खाली हाथ होते
वे मेरे खिलाफ जारी वारंट पढ़कर
मुझे यह कहते हुए
छुपने की जगह देते कि—
"तुम्हें एक अच्छे कारण
के लिए खदेड़ा गया है।"

(1936-38)

12. अगली पीढ़ी के लिए

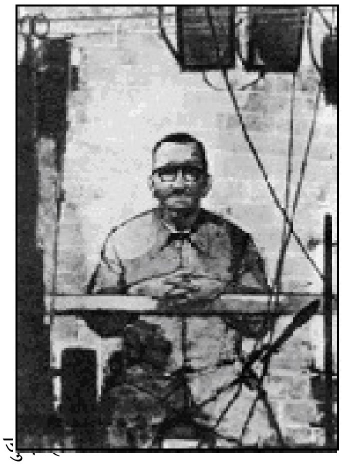

1.

सचमुच मैं अंधेरे युग में जी रहा हूं
सीधी-सादी बात का मतलब बेवकूफी है
और सपाट माथा दर्शाता है उदासीनता
वह, जो हंस रहा है
सिर्फ इसलिए कि भयानक खबरें
अभी उस तक नहीं पहुंची हैं

कैसा जमाना है
कि पेड़ों के बारे में बातचीत भी लगभग जु[illegible]
क्योंकि इसमें बहुत सारे कुकृत्यों के बारे में हमारी चुप्पी भी शामिल है।
वह जो चुपचाप सड़क पार कर रहा है
क्या वह अपने खतरे में पड़े हुए दोस्तों की पहुंच से बाहर नहीं है?
यह सच है : मैं अभी भी अपनी रोजी कमा रहा हूं
लेकिन विश्वास करो, यह महज संयोग है
इसमें ऐसा कुछ नहीं है कि मेरी पेट-भराई का औचित्य सिद्ध हो सके
यह इत्तफाक है कि मुझे बख्श दिया गया है
(किस्मत खोटी होगी तो मेरा खात्मा हो जायेगा)
वे मुझसे कहते हैं : खा, पी और मौज कर क्योंकि तेरे पास है
लेकिन मैं कैसे खा पी सकता हूं
जबकि जो मैं खा रहा हूं, वह भूखे से छीना हुआ है
और मेरा पानी का गिलास एक प्यासे मरते आदमी की जरूरत है।
और फिर भी मैं खाता और पीता हूं।

मैं बुद्धिमान भी होना पसन्द करता
पुरानी पोथियां बतलाती हैं कि क्या है बुद्धिमानी :
दुनिया के टंटों से खुद को दूर रखना
और छोटी सी जिन्दगी निडर जीना
अहिंसा का पालन
और बुराई के बदले भलाई
अपनी इच्छाओं की पूर्ति के बजाय
उन्हें भूल जाना
यही बुद्धिमानी है
यही सब मेरे वश का नहीं
सचमुच मैं अंधेरे युग में जी रहा हूं।

2.

मैं अराजकता के दौर में आया शहरों में
जब भूख का साम्राज्य था
बगावतों के दौरान मैं लोगों से मिला
और मैंने भी उनमें शिरकत की
इस तरह गुजरा मेरा वक्त
जो मुझे दुनिया में मिला था।

कत्लेआम के बीच मैंने खाना खाया
नींद ली हत्यारों के बीच
प्रेम में रहा निपट लापरवाह
और कुदरत को देखा हड़बड़ी में
इस तरह गुजरा मेरा वक्त
जो मुझे दुनिया में मिला था।

मेरे जमाने की सड़कें दलदल तक जाती थीं
भाषा ने मुझे कातिलों के हवाले कर दिया
मैं ज्यादा कर ही क्या सकता था
फिर भी शासक और भी चैन से जमे रहते मेरे बगैर
यही थी मेरी उम्मीद
इस तरह गुजरा मेरा वक्त
जो दुनिया से मिला था।

ताकत बहुत थोड़ी थी लक्ष्य था बहुत दूर,
वह दीखता था
साफ, गो कि मेरे लिए पहुंचना था कठिन
इस तरह गुजरा मेरा वक्त
जो मुझे दुनिया में मिला था।

3.

तुम जो कि इस बाढ़ से उबरोगे
जिसमें कि हम डूब गये
जब हमारी कमजोरियों की बात करो
तो उस अंधेरे युग के बारे में भी सोचना
जिससे तुम बचे रहे
जूतों से ज्यादा देश बदलते हुए
वर्ग-संघर्षों के बीच से हम गुजरते रहे चिन्तित
जब सिर्फ अन्याय था और कोई प्रतिरोध नहीं था।

हम यह भी जानते हैं कि

कमीनगी के प्रति घृणा भी
थोबड़ा बिगाड़ देती है
अन्याय के खिलाफ गुस्सा भी
आवाज को सख्त कर देता है
आह हम
जो भाईचारे की जमीन तैयार करना चाहते थे
खुद नहीं निभा सके भाईचारा
लेकिन तुम जब ऐसे हालात आएं
कि आदमी, आदमी का मददगार हो
हमारे बारे में सोचना
तो रियायत के साथ!

(1936-38)

13. हालीवुड

रोजाना रोटी कमाने की खातिर
मैं बाजार जाता हूं, जहां झूठ खरीदे जाते हैं
उम्मीद के साथ
मैं विक्रेताओं के बीच अपनी जगह बना लेता हूं।

(1941-47)

14. शरणार्थी वाल्टर बेंजामिन की आत्महत्या पर

कत्ल का अहसास होने पर
मुझे बताया गया कि तुमने
खुद के ही खिलाफ उठा दिये अपने हाथ
आठ वर्षों तक निर्वासन में रहने के बाद
दुश्मन का उत्थान देखते हुए
आखीर में एक अ-पार सीमा पर रोकते हुए
वे कहते हैं, तुम पार कर गये, एक पारणीय सीमा।

साम्राज्यों का पतन होता है
गैंग लीडरान चल रहे हैं अकड़ कर
राजनेताओं की तरह
फौजी वर्दियों के अलावा अब कहीं नहीं दिखेंगे आदमी

अत: भविष्य अब अंधेरे में है और
न्याय की ताकतें कमजोर हैं
यह सब कुछ साफ था तुम्हारे सामने
जब तुमने अपने कष्टयोग्य शरीर को नष्ट किया।

(1941-47)

15. गौरव

अमरीकी सिपाही ने जब मुझसे कहा
कि खाते-पीते मध्यवर्ग की जर्मन लड़कियां
तंबाकू के बदले और निम्न मध्य वर्ग की
चाकलेट के बदले में
खरीदी जा सकती हैं।
लेकिन भूख से तड़पते रूसी मजदूर
कभी नहीं खरीदे जा सकते
मुझे गौरव महसूस हुआ।

(1941-47)

16. हर चीज बदलती है

हर चीज बदलती है।
अपनी हर आखिरी सांस के साथ
तुम एक ताजा शुरुआत कर सकते हो।
लेकिन जो हो चुका, सो हो चुका।
जो पानी एक बार तुम शराब में
उंडेल चुके हो, उसे उलीच कर
बाहर नहीं कर सकते।

जो हो चुका, सो हो चुका है।
वह पानी जो एक बार तुम शराब में उंडेल चुके हो
उसे उलीच कर बाहर नहीं कर सकते
लेकिन
हर चीज बदलती है
अपनी हर आखिरी सांस के साथ
तुम एक ताजा शुरुआत कर सकते हो।

(1941-47)

17. एम. (मायकोवस्की) के लिए समाधिलेख

शार्क मछलियों को मैंने चकमा दिया
शेरों को मैंने छकाया
मुझे जिन्होंने हड़प लिया
वे खटमल थे।

(1941-47)

18. जब हमारे शहर बरबाद हुए

जब हमारे शहर बरबाद हुए
बूचड़ों की लड़ाई से नेस्तनाबूद
हमने उन्हें फिर से बनाना शुरू किया
ठंड, भूख और कमजोरी में।

मलबे लदे ठेलों को
खुद ही खींचा हमने, धूसर अतीत की तरह
नंगे हाथों खोदीं ईंटें हमने
ताकि हमारे बच्चे दूसरों के हाथों न बिकें
अपने बच्चों के लिए हमने बनाये तब
स्कूलों में कमरे और साफ किया स्कूलों को

और मांजा, पुराना कीचड़ भरा शताब्दियों का ज्ञान
ताकि वह बच्चों के लिए सुखद हो।

(1947-53)

19. समाधान

सत्रह जून के विप्लव के बाद
लेखक संघ के मंत्री ने
स्तालिनाली शहर में पर्चे बांटे
कि जनता सरकार का विश्वास खो चुकी है

और तभी दुबारा पा सकती है यदि दोगुनी मेहनत करे
ऐसे मौके पर क्या यह आसान नहीं होगा
सरकार के हित में
कि वह जनता को भंग कर कोई दूसरी चुन ले।

(1953)

20. महान युग खत्म हुआ

मैं खूब जानता था कि शहर बनाये जा रहे हैं
मैं नहीं गया उन्हें देखने
इसका सांख्यिकी वालों से ताल्लुक है मैंने सोचा
न कि इतिहास से
क्या होगा शहरों के बनाने से,
यदि उन्हें बगैर लोगों की बुद्धिमानी के बनाया?

(1953)

21. सच हमें जोड़ता है

दोस्तो मैं चाहता हूं तुम सच को जानो और उसे बोलो!
मैदान छोड़ते थके मांदे सम्राटों की तरह नहीं
कि 'आटा कल पहुंच जायेगा!'
बल्कि लेनिन की तरह
कि कल रात तक सब चौपट्ट हो जायेगा
यदि हम कुछ करें नहीं...
ठीक जैसे कि यह छोटा गीत—
''भाइयो यह किस के बारे में है
मैं तुमसे साफ-साफ कहूंगा
कि जिन मुश्किलात में हम आज फंसे हैं
उनसे बाहर निकलने का कोई रास्ता नहीं है''
दोस्तो इसे दृढ़ता से स्वीकारो
और स्थिति का सामना करो, जब तक कि...।

(1953)

22. लोहा

कल रात स्वप्न में
मैंने एक भयंकर तूफान देखा
एक पाड़ भी उसकी चपेट में आया
सारी सलाखें उखड़ गयीं
जो सख्त लोहे की थीं
लेकिन जो कुछ लकड़ी का था
वह झुका और कायम रहा।

(1953)

23. एक रूसी किताब पढ़ते हुए

वोल्गा को पालतू बनाना
इतना आसान काम नहीं होगा, मैं पढ़ता हूं

यह अपनी बेटियों—ओका, कामा उंशा और यातुल्गा
को मदद के लिए बुला देगी
अपनी पोतियों चुसेवाया और यात्का को भी
वह अपनी सारी ताकत बुला लेगी
सात हजार सहायक नदियों के जल-प्रवाह के साथ
प्रचंड आक्रोश में वह ध्वस्त कर देगी स्तालिनग्राद के बांध को
आविष्कारों के फरिश्ते और ग्रीक आडिसस की
धूर्त चालबाजी की तरह
वह हर छिद्र का इस्तेमाल करेगी
दायें और बायें दोनों बाजुओं को पाटते हुए
और जमीन के नीचे भी सब कुछ रौंदते हुए
लेकिन मैं पढ़ता हूं
कि रूसी लोग जो उसे प्यार करते हैं
उसके गीत गाते हैं
हाल ही में उसे जान सके हैं
और 1958 के आने तक
उसे पालतू बना देंगे
और फिर कैस्पियन मैदानों के काली मिट्टीवाले खेत
और बंजर जो कि उसके सौतेले बच्चे रहे हैं
उन्हें रोटी का इनाम देंगे।

(1953)

24. कला की इष्टदेवियां

फौलादी कवि जब इन्हें पीटता है
देवियां और ऊंचे स्वरों में गाती हैं
सूजी आंखों से
वे उसका आदर करती हैं
पूंछ मटकाती हुई कुतियों की तरह
उनके नितंब फड़कते हैं पीड़ा से
और जांघें वासना से।

(1953)

25. सुख

सुबह खिड़की से बाहर का नजारा
फिर से मिली हुई पुरानी किताब
उल्लसित चेहरे
बर्फ, मौसमों की आवा-जाही
अखबार
कुत्ता
डायलेक्टिक्स
नहाना, तैरना
पुराना संगीत
आरामदेह जूते
जज़्ब करना
नया संगीत
लेखन, बागवानी
मुसाफिरी
गाना
मिलजुल कर रहना।

(1953-56)

26. जनता की रोटी

इंसाफ जनता की रोटी है
वह कभी काफी है, कभी नाकाफी
कभी स्वादिष्ट है तो कभी बेस्वाद
जब रोटी दुर्लभ है तब चारों ओर भूख है
जब बेस्वाद है, तब असंतोष।

खराब इंसाफ को फेंक डालो
बगैर प्यार के जो सेंका गया हो
और बिना ज्ञान के गूंदा गया हो!
भूरा, पपड़ाया, महकहीन इंसाफ
जो देर से मिले, बासी इंसाफ है!

यदि रोटी सुस्वादु और भरपेट है
तो बाकी भोजन के बारे में माफ किया जा सकता है
कोई आदमी एक साथ तमाम चीजें नहीं छक सकता।

इंसाफ की रोटी से पोषित
ऐसा काम हासिल किया जा सकता है
जिससे पर्याप्त मिलता है।

जिस तरह रोटी की जरूरत रोज है
इंसाफ की जरूरत भी रोज है
बल्कि दिन में कई-कई बार भी
उसकी जरूरत है।

सुबह से रात तक, काम पर, मौज लेते हुए
काम, जो कि एक तरह का उल्लास है
दुख के दिन और सुख के दिनों में भी
लोगों को चाहिए
रोज-ब-रोज भरपूर, पौष्टिक, इंसाफ की रोटी।

इंसाफ की रोटी जब इतनी महत्वपूर्ण है
तब दोस्तो कौन उसे पकायेगा?
दूसरी रोटी कौन पकाता है?
दूसरी रोटी की तरह
इंसाफ की रोटी भी
जनता के हाथों ही पकनी चाहिए
भरपेट, पौष्टिक, रोज-ब-रोज।

(1953-56)

27. जो बोलते हो उसे सुनो भी

अध्यापक, अक्सर मत कहो कि तुम सही हो
छात्रों को उसे महसूस कर लेने दो खुद-ब-खुद
सच को थोपो मत :
यह ठीक नहीं है सच के हक में
बोलते हो जो उसे सुनो भी।

(1953-56)

28. और मैं हमेशा सोचता था

और मैं हमेशा सोचता था :
एकदम सीधे-सादे शब्द ही पर्याप्त होने चाहिए
मैं जब कहूं कि चीजों की असलियत क्या है
प्रत्येक का दिल छलनी हो जाना चाहिए
कि धंस जाओगे मिट्टी में एक दिन
यदि खुद नहीं खड़े हुए तुम
सचमुच तुम देखना एक दिन।

(1953-56)

अनुवाद : **मोहन थपलियाल**

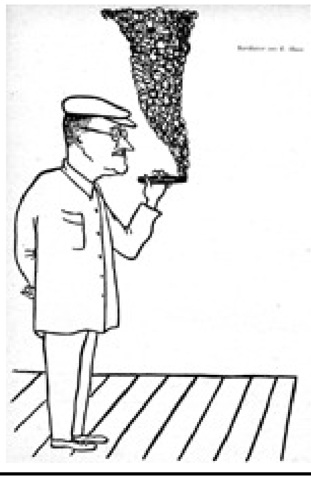

अध्याय तेरह

सार्वजनिक स्वामित्व की समाजवादी प्रणाली समाजवादी उत्पादन सम्बन्धों की बुनियाद होती है

समस्त जनता के स्वामित्व तथा मेहनतकश जनता के सामूहिक स्वामित्व की समाजवादी प्रणाली

सर्वहारा के राजनीतिक सत्ता पर काबिज हो जाने के बाद, पूंजीवाद और अन्य सभी शोषक व्यवस्थाओं के स्रोतों को जड़ से मिटाने तथा एक समाजवादी आर्थिक बुनियाद कायम करने के लिए यह जरूरी है कि उत्पादन के साधनों के निजी स्वामित्व की प्रणाली को कदम-ब-कदम सार्वजनिक स्वामित्व की समाजवादी प्रणाली में रूपान्तरित किया जाए। सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व को सुदृढ़ करने और समाजवाद से पूंजीवाद को परास्त करने की दिशा में यह एक महत्वपूर्ण कदम है।

समस्त जनता के स्वामित्व की समाजवादी प्रणाली सर्वहारा के अधिनायकत्व की आर्थिक बुनियाद है

सर्वहारा वर्ग और मेहनतकश जनता को ही उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण करना चाहिए

पिछले हजारों वर्षों के दौरान मेहनतकश वर्गों के दास स्वामी, सामन्ती भूस्वामी और पूंजीपति द्वारा शोषण-उत्पीड़न का मूल करण यह था कि उत्पादन के साधन मेहनतकश जनसमुदाय के हाथों में नहीं थे। "मनुष्य को किसी भी रूप में दासोचित सेवा के अधीन करने में यह बात निहित है कि अधीन बनाने वाले के हाथों में श्रम के साधन मौजूद हैं जिनके जरिए ही वह वशीभूत व्यक्ति को काम पर लगा सकता है। इसके अतिरिक्त दास प्रथा के मामले में तो आजीविका के साधनों पर भी उसीका अधिकार था जिनके जरिए वह दास को श्रम करने के लिए जीवित रखता था।[1]" मेहनतकश लोगों की पीढ़ी-दर-पीढ़ी ने उत्पादन के साधनों को अपने हाथों में लेने के लिए विभिन्न रूपों में संघर्ष छेड़े, पर ऐतिहासिक कारणों से, ये सभी प्रयास असफल रहे। पूंजीवादी समाज में, पूंजीवादी बड़े पैमाने के उद्योग के तहत विकसित और सशक्त हुआ सर्वहारा वर्ग एक सामाजिक शक्ति के रूप में उभरा। इस वर्ग का उत्पादन के साधनों पर जरा भी नियंत्रण न रहा; अपनी गर्दन पर पड़ी जंजीरों के सिवा मजदूरों के पास और कुछ न था। उत्पादन के साधनों के पूंजीवादी स्वामित्व के निजी चरित्र और उत्पादन के सामाजिक चरित्र के बीच अन्तरविरोध के उत्तरोत्तर तीखा होते जाने के साथ, सर्वहारा वर्ग द्वारा उत्पादन के साधनों को नियंत्रित करने की संभावना विकसित हुई।

लेकिन, शोषक वर्ग कभी स्वेच्छा से शोषण करना छोड़ने को तैयार नहीं होते। उत्पादन के साधनों पर अपने निजी स्वामित्व को बचाने के लिए उन्होंने न केवल राज्य मशीनरी का इस्तेमाल किया बल्कि विचारधारा के क्षेत्र में भी हर तरह की भ्रान्तियां गढ़ीं। उदाहरण के लिए, उन्होंने कहा कि मजदूर की गरीबी के कारण, जनसंख्या में तीव्र वृद्धि, "वितरण के न्यायपूर्ण व तर्कसंगत सिद्धांत" का अभाव आदि-आदि हैं। इन सब प्रयासों का उद्देश्य मेहनतकश जनसमुदाय को छलना और उनकी आंखों में धूल झोंकना था ताकि वे बुर्जुआ निजी स्वामित्व पर हाथ न डालें और उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण छीनकर अपने हाथों में न ले लें। सर्वहारा के क्रान्तिकारी शिक्षकों ने इन भ्रान्तियों की कड़ी भर्त्सना की। उन्होंने बताया कि मेहनतकश जनसमुदाय के शोषण और दास्ता का मूल कारण इस तथ्य में निहित है कि उत्पादन के साधन मेहनतकश जनता के हाथों में नहीं, बल्कि शोषण वर्गों के हाथों में हैं।

1870 के दशक के जर्मन मजदूर आन्दोलन पर फर्डिनेंड लासाल के प्रभाव को प्रतिबिम्बित करते हुए "गोथा कार्यक्रम" का पहला वाक्य कहता है, "श्रम ही समस्त सम्पत्ति और संस्कृति का स्रोत है।" ऊपरी तौर पर, "श्रम" को बहुत ऊंचा स्थान दिया गया था। लेकिन मार्क्स ने तत्काल इस कथन की सैद्धान्तिक गलती को देख लिया। उन्होंने स्पष्ट किया कि श्रम सम्पत्ति और संस्कृति का सृजन केवल उत्पादन के साधनों के साथ मिलकर ही कर सकता है। उत्पादन के साधनों के बिना और उत्पादन के साधनों के स्वामित्व के बिना, श्रम का क्या होगा? मार्क्स ने तीक्ष्ण दृष्टि से इसे स्पष्ट करते हुए बताया, "जिस मनुष्य के पास अपनी श्रमशक्ति के सिवा और कोई संपत्ति नहीं है, उसे समाज व संस्कृति की सभी अवस्थाओं में उन दूसरे मनुष्यों का दास बनना ही होगा, जो श्रम की वस्तुगत के स्वामी बन बैठे हैं। वह केवल उनकी अनुमति से काम कर सकता है, और इसलिए उनकी अनुमति से ही जीवित रह सकता है।[2]" सर्वहारा को पूंजीवाद के तहत निजी स्वामित्व की प्रणाली को हटाकर समाजवाद के तहत सार्वजनिक स्वामित्व की प्रणाली स्थापित करनी होगी, तभी वह अपने को मुक्त कर सकता है। मार्क्सवाद की इस अन्तर्दृष्टि ने उत्पादन के साधनों पर हमेशा के लिए अपना एकाधिकार कायम करने और मेहनतकश जनता को गुलाम बनाये रखकर उसका शोषण करने के शोषण वर्गों के उन्मादग्रस्त पूंजीवाद षड्यंत्र को सैद्धान्तिक और राजनीतिक रूप से ध्वस्त कर दिया है। इसने सर्वहारा के लिए संघर्ष की सही दिशा बताई।

पूंजीवादी समाज का विकास सर्वहारा वर्ग और मेहनतकश जनसमुदाय के लिए उत्पादन के साधनों पर सामूहिक स्वामित्व कायम करना संभव बना देना है। इस संभावना को पूरी तरह यथार्थ में बदलना एक काफी लम्बी ऐतिहासिक प्रक्रिया है। सर्वहारा वर्ग को पहले बुर्जुआ राज्य मशीनरी का ध्वंस कर सर्वहारा अधिनायकत्व कायम करना होगा, तभी वह "गरीबी के कारणों को समान्त करके समृद्धि के बीज बो सकता है" यानी उत्पादन के साधनों के निजी स्वामित्व की प्रणाली को सार्वजनिक स्वामित्व की प्रणाली में रूपान्तरित कर सकता है और उत्पादन के साधनों को अपने हाथों में ले सकता है। यही वह आवश्यक प्रस्थान-बिन्दु है जहां से सभी शोषक व्यवस्थाओं को बुनियादी तौर पर नकार दिया जाएगा और जहां से सर्वहारा वर्ग और मेहनतकश जनसमुदाय आर्थिक रूप से मुक्त होकर प्रशस्त समाजवादी मार्ग पर चतुर्दिक प्रचुरता की ओर बढ़ेंगे। लेकिन यह मार्ग भी संघर्षों से भरा होगा। सर्वहारा सभी वर्गों और वर्ग विभेदों के खात्मे और कम्युनिज्म के उच्च आदर्श को हासिल करने के लिए अनुकूल भौतिक परिस्थितियां केवल तभी निर्मित कर सकता है जब वह समाजवादी अर्थव्यवस्था के भविष्य को मजबूती और दृढ़ता से अपने ही हाथों में रखे। अगर वह राजनीतिक सत्ता

और उत्पादन के साधनों को गंवा देगा, और अगर राज्य मशीनरी और आर्थिक जीवनरेखाओं पर नियंत्रण बुर्जुआ वर्ग तथा पार्टी के भीतर इसके एजेंटों द्वारा हथिया लिया जायेगा, तो समाजवादी अर्थव्यवस्था का पतन शुरू हो जाएगा और सर्वहारा तथा मेहनतकश अवाम फिर से "नंगे-भूखे दास" बना दिये जाएंगे। यह संभावना समाजवाद के पूरे ऐतिहासिक दौर में बनी रहती है।

जब्ती और खरीद लेना समाजवादी राजकीय स्वामित्व की प्रणाली स्थापित करने के तरीके हैं

सौ वर्ष से भी ज्यादा पहले, मार्क्स-एंगेल्स ने बताया था कि राजनीतिक सत्ता पर कब्जा करने के बाद सर्वहारा वर्ग, "अपने राजनीतिक प्रभुत्व का इस्तेमाल, बुर्जुआ वर्ग से सारी पूंजी क्रमशः छीन लेने और उत्पादन के समस्त उपकरणों को राज्य, यानी, शासक वर्ग के रूप में संगठित सर्वहारा के हाथों में केन्द्रित कर देने के लिए करेगा।[3]"

अत्यधिक समाजीकृत उत्पादक शक्तियों को सभी आर्थिक विभागों व उद्यमों को केन्द्रीय रूप से समन्वित करने के लिए वस्तुगत तौर पर एक सामाजिक केन्द्र की आवश्यकता होती है। पूंजीवादी समाज में इस वस्तुगत आवश्यकता का पूरा होना कठिन होता है। समाजवादी समाज में सर्वहारा अधिनायकत्व के तहत समाजवादी राज्य यह सामाजिक केन्द्र होता है। समस्त मेहनतकश जनसमुदाय का प्रतिनिधित्व करने वाले इस राज्य और उत्पादन के साधनों पर समस्त जनता के स्वामित्व की समाजवादी प्रणाली की स्थापना करके ही मेहनतकश जनता समाजवादी आर्थिक जीवन रेखाओं पर अपना नियंत्रण मजबूती से कायम रख सकती है और शोषक पूंजीवादी व्यवस्था को जड़ से मिटाया जा सकता है।

उत्पादन के साधनों के बुर्जुआ स्वामित्व को समस्त जनता के स्वामित्व की समाजवादी प्रणाली में रूपान्तरित करने का काम सर्वहारा आखिर किन तरीकों से कर सकता है? अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन के अनुभव और चीनी अनुभव के अनुसार, सर्वहारा के राजनीतिक सत्ता पर कब्जा कर लेने के बाद, बड़े उद्यमों को तत्काल समाजीकृत कर दिया जाता है, जबकि मध्यम और छोटे उद्यम धीरे-धीरे रूपान्तरित किये जाते हैं।

सामान्य तौर पर, सर्वहारा के राजनीतिक सता पर कब्जा करने के बाद, उसके समक्ष एक ऐसी स्थिति मौजूद होती है जिसमें बड़ी, मध्यम और छोटी पूंजी का सहअस्तित्व रहता है। बड़ी पूंजी सर्वाधिक प्रतिक्रियावादी उत्पादन संबंधों का प्रतिनिधित्व करती है; यह राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की प्राणशक्ति को नियंत्रित करती है और सामाजिक उत्पादक शक्तियों के विकास में गंभीर बाधाएं खड़ी करती है। यह बुर्जुआ प्रतिक्रियावादी शासन का मुख्य अवलम्ब भी होती है। राजनीतिक सत्ता पर काबिज होने के तुरन्त बाद, यदि सर्वहारा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था पर नियंत्रण कायम करने में असफल रहता है और बड़े पूंजीपतियों को उस पर अधिकार करने का मौका दे देता है, तो वह कभी अपनी सत्ता का सुदृढ़ीकरण नहीं कर सकता। पेरिस कम्यून के अनुभवों और इसकी शानदार उपलब्धियों का समाहार करते हुए, लेनिन ने बताया कि इस संघर्ष के परिणाम के लिए घातक सिद्ध होने वाली दो गलतियों में से एक यह थी कि सर्वहारा 'बैंक आफ फ्रांस' जैसे बड़े उद्यमों पर कब्जा करने में असफल रहा, जो राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण स्नायुकेन्द्र था। इसीलिए, समाजवादी राज्य को बड़ी पूंजी को तत्काल जब्त कर लेना चाहिए।

चीन में बड़ी पूंजी नौकरशाह पूंजी के रूप में थी। यह च्याङ काइ-शेक के नेतृत्व वाले नौकरशाह बुर्जुआ वर्ग के स्वामित्व में दलाल व सामन्ती, राजकीय एकाधिकारी पूंजी थी। माओ त्से-तुङ ने इस पूंजी के प्रतिक्रियावादी चरित्र का गहराई से विश्लेषण करते हुए बताया था, "अपने बीस वर्षों के शासन काल में, चारों बड़े घरानों, च्याङ, सूङ, कुङ और चेन ने बेतहाशा दौलत बटोरी है, जिसकी कीमत करीब हजार से दो हजार करोड़ अमेरिकी डालर आंकी गई है। इन्होंने पूरे देश की आर्थिक जीवनरेखाओं पर एकाधिकार जमा रखा है। इस एकाधिकारी पूंजी ने राज्य सत्ता के साथ मिलकर राजकीय एकाधिकारी पूंजीवाद का रूप अख्तियार कर लिया है। विदेशी साम्राज्यवाद, घरेलू भूस्वामी वर्ग और पुराने ढंग के धनी किसानों के साथ नजदीकी तौर पर जुड़ा हुआ यह एकाधिकारी पूंजीवाद, दलाल, सामन्त, राजकीय पूंजीवाद बन गया है।[4]" नौकरशाह पूंजी के प्रतिक्रियावादी चरित्र के मद्देनजर, चीनी पार्टी ने, जनवादी क्रान्ति की प्रक्रिया की शुरुआत में ही यह स्पष्ट नीति निर्धारित की थी कि नौकरशाह पूंजी को जब्त कर लिया जाएगा और, "इसे सर्वहारा के नेतृत्व में गठित लोक गणराज्य को (हस्तांतरित) कर दिया जाएगा।[5]" मुक्तियुद्ध की विजय के बाद नौकरशाह पूंजी की इस जब्ती को कदम-बा-कदम पूरा किया गया। नौकरशाह पूंजी जो, मुक्तिपूर्व चीन के मैन्युफैक्चरिंग व परिवहन उद्योगों की 80 प्रतिशत अचल पूंजी थी, की जब्ती ने चीन की पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के बड़े भाग को समाप्त कर दिया और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की प्राणशक्ति को सर्वहारा राज्यसत्ता के नियंत्रण में ला दिया। इस तरह, समाजवाद का आर्थिक आधार स्थापित हो गया और समाजवादी क्रान्ति के विकास तथा समाजवादी निर्माण के लिए अनुकूल परिस्थितियां निर्मित हुईं।

जब सर्वहारा राजनीतिक सत्ता पर कब्जा कर लेता है, बड़ी पूंजी को जब्त कर लेता है और एक समाजवादी आर्थिक बुनियाद कायम कर लेता है, तब यह संभव हो जाता है कि मध्यम व लघु पूंजी को खरीद लेने की नीति के जरिए उनका क्रमशः समाजवादी रूपान्तरण किया जाए और उत्पादन के साधनों के स्वामित्व की पूंजीवादी प्रणाली को समस्त जनता के स्वामित्व की समाजवादी प्रणाली में रूपान्तरित किया जाए। मध्यम और लघु पूंजी का वर्ग चरित्र भी वही है जो बड़ी पूंजी का है। वे सब मेहनतकश जनता के पूंजीवादी शोषण में संलग्न होती हैं; उनके हित मेहनतकश अवाम के हितों के विरोध में होते हैं और वे समाजवादी क्रान्ति के निशाने पर होती हैं। लेकिन इसके साथ ही, उनके बीच कुछ अन्तर भी होते हैं। समाजवाद के अन्तर्गत मध्यम और लघु पूंजी की पूंजीवाद का विकास करने की तीव्र इच्छा होती है, लेकिन इसके साथ ही, सर्वहारा द्वारा उन्हें कुछ परिस्थितियों में अपनी परिसम्पत्तियों के बदले मुआवजा स्वीकार करने के लिए बाध्य किया जा सकता है। मार्क्सवाद का मानना है कि "कुछ निश्चित परिस्थितियों में मजदूर बुर्जुआ वर्ग को खरीद लेने से कतई इंकार नहीं करेगा।[6]" सर्वहारा के राजनीतिक सत्ता पर काबिज हो जाने और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की प्राणशक्ति पर नियंत्रण स्थापित कर लेने के बाद सर्वहारा के लिए यह लाभप्रद ही होगा, अगर इन पूंजीपतियों को, सर्वहारा द्वारा खरीद लिये जाने तथा अपने पूंजीवादी उद्यमों को समाजवादी उद्यमों में रूपान्तरित करने की नीति स्वीकार करने के लिए बाध्य किया जा सके।

चीन में मध्यम व लघु पूंजी के स्वामी राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग का दोहरा चरित्र था। जनवादी क्रान्ति के दौर में इसका चरित्र क्रान्तिकारी और समझौतापरस्त, दोनों ही रहा। समाजवादी क्रान्ति के दौर में इसे समाजवादी रूपान्तरण को स्वीकार करने के लिए बाध्य किया जा सकता है, लेकिन इसके साथ ही, इसमें पूंजीवाद का विकास करने की एक तीव्र प्रतिक्रियावादी इच्छा भी होती है। इस वर्ग द्वारा संचालित औद्योगिक व वाणिज्यिक उद्यमों ने चीन की राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को फिर से खड़ा करने में दोहरी भूमिका निभाई। उत्पादन बढ़ाने, शहरी व ग्रामीण क्षेत्रों के बीच आर्थिक आदान-प्रदान विस्तारित करने और रोजगार बढ़ाने में तथा इस प्रकार राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था व लोगों की जीवनदशाओं की बेहतरी में योगदान करने में उन्होंने सकारात्मक भूमिका निभाई। लेकिन उन्होंने मजदूरों का शोषण भी किया और मुनाफे के लिए हर तरह की हरकतें कीं, और इस तरह समाजवादी पुनर्निमाण तथा लोगों की जीवनदशाओं में सुधार में एक नकारात्मक भूमिका निभाई। राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग के दोहरे चरित्र और राष्ट्रीय पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की दोहरी भूमिका को देखते हुए चीनी पार्टी ने राष्ट्रीय पूंजीवादी औद्योगिक व वाणिज्यिक उद्यमों को इस्तेमाल करने, सीमित करने और रूपान्तरित करने की नीति निर्धारित की। इसका उद्देश्य था, राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था व लोगों की जीवनदशाओं के लिए लाभदायक उनकी सकारात्मक भूमिका का उपयोग करना, उनके

नकारात्मक पक्षों पर अंकुश लगाना और उन्हें क्रमशः रूपान्तरित करते हुए समाजवादी राजकीय अर्थव्यवस्था का एक अंग बना देना।

चीन में पूंजीवादी औद्योगिक व वाणिज्यिक उद्यमों के समाजवादी रूपान्तरण का काम राजकीय पूंजीवाद के विभिन्न रूपों के जरिए किया गया। यह राजकीय पूंजीवाद "ऐसा पूंजीवाद था जिस पर (सर्वहारा अधिनायकत्व के तहत राज्य द्वारा) अंकुश रखा जा सकता था, ... जिसकी सीमाएं बांधी जा सकती थीं।[7]" मैन्युफैक्चरिंग उद्योग में, आरंभिक राजकीय पूंजीवाद का काम था—प्रसंस्करण, आर्डर देना, एकीकृत सरकारी खरीद तथा अनुबंध के आधार पर विपणन (कांट्रैक्ट मार्केटिंग)*। वाणिज्य के क्षेत्र में राजकीय पूंजीवाद कमीशन के आधार पर खरीदने और वितरित करने के रूप में था। इस रूप में, पूंजीवादी अर्थव्यवस्था को, इसके उत्पादन व संचालन की दिशा तथा शोषण के स्तर, दोनों ही दृष्टियों से, एक हद तक सीमित किया जा सकता था। फिर भी, यह रूप उत्पादन के साधनों पर पूंजीपति के स्वामित्व व नियंत्रण की प्रकृति को नहीं बदल सकता था; न ही यह उत्पादक शक्तियों के विकास को बाधित कर रहे पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्धों के शत्रुतापूर्ण अन्तरविरोध को बुनियादी तौर पर हल कर सकता था। चीन की सामाजिक उत्पादक शक्तियों के विकास के साथ, यह एक वस्तुगत आवश्यकता बन गई कि आरंभिक स्तर के राजकीय पूंजीवाद को उन्नत राजकीय पूंजीवाद में, यानी कि, संयुक्त राजकीय-निजी संचालन में तब्दील किया जाए। संयुक्त राजकीय-निजी उद्यमों में, राज्य नेतृत्व के कामों के लिए कार्यकर्ताओं को भेजता था। वे राजकीय योजनाओं के अनुसार तथा मेहनतकश जनसमुदाय पर भरोसा करते हुए उद्यमों का प्रबंध संभालते थे। व्यवहार में, यह पूंजीपति को उस उद्यम में उत्पादन के साधनों पर से अपना नियत्रंण छोड़ देने के लिए बाध्य कर देता था। पूंजी द्वारा श्रम का शोषण बहुत अधिक सीमित हो जाता था। चीन में, राजकीय पूंजीवाद के इस उन्नत रूप को दो अवस्थाओं में विभाजित किया गया—अलग-अलग उद्यमों में संयुक्त राजकीय-निजी संचालन और फिर पूरे उद्योग में संयुक्त राजकीय-निजी संचालन। अलग-अलग उद्यम में संयुक्त संचालन की अवस्था में पूंजीपति उद्यम की कुल पूंजी में अपने हिस्से के अनुपात में मुनाफे में हिस्सा लेता था। उत्पादन के बढ़ने के साथ-साथ पूंजीपति को मिलने वाला मुनाफा बढ़ता जाता था। यह मजदूरों के उत्साह को पूरी तरह निर्बन्ध कर काम में लगाने तथा वित्तीय संसाधन जुटाने के राज्य के प्रयासों के प्रतिकूल था। जब किसी पूरे उद्योग को संयुक्त राजकीय-निजी संचालन के अधीन कर लिया जाता था, तो पूंजीपति कुछ निश्चित वर्षों तक के लिए निश्चित लाभांश, यानी, निश्चित ब्याज (करीब 5 प्रतिशत वार्षिक) ही पाने का अधिकारी होता था।

इस दर का निर्धारण संयुक्त संचालन के पहले उसकी अचल परिसम्पत्तियों के कुल मूल्य के अनुसार किया जाता था। इस प्रकार, उत्पादन के साधनों पर पूंजीपति का स्वामित्व अधिकार केवल उसके हिस्से के आकार के अनुसार निर्धारित लाभांश के ही रूप में अभिव्यक्त होता था। ऐसे संयुक्त राजकीय-निजी उद्यमों की मूल प्रकृति समाजवादी थी। पूंजीपति को निश्चित ब्याज चुकाये जाने की राज्य द्वारा निर्धारित अवधि के बीत जाने के बाद, राज्य ब्याज चुकाना बंद करने का निर्णय करता था। इस प्रकार राजकीय-निजी उद्यम समस्त जनता के स्वामित्व की पूर्ण समाजवादी प्रणाली के तहत समाजवादी उद्यम बन जाते थे।

सर्वहारा अधिनायकत्व के तहत मध्यम व लघु पूंजी तथा बड़ी पूंजी के रूपान्तरण में अन्तर है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि इसमें वर्ग संघर्ष अनुपस्थित रहता है। वास्तव में सर्वहारा व बुर्जुआ वर्ग के बीच तीखा वर्ग संघर्ष पूंजीवादी उद्योग व वाणिज्य के समाजवादी रूपान्तरण की पूरी प्रक्रिया के दौरान लगातार जारी रहता है। यह संघर्ष प्रतिबंध लगाने और प्रतिबंध तोड़ने, रूपान्तरण और प्रति-रूपान्तरण के बीच संघर्ष के रूप में सामने आया। 1950 के बसन्त में, दामों को स्थिर करने के लिए सट्टाबाजारी गतिविधियों के विरुद्ध संघर्ष छेड़ना जरूरी हो गया था। 1951 में "पांच बुराइयों"—रिश्वतखोरी, कर चोरी, राजकीय सम्पत्ति की चोरी, कामचोरी व घटिया माल लगाने तथा राजकीय आर्थिक गोपनीय जानकारियों की चोरी—के विरुद्ध संघर्ष छेड़ा गया। 1957 मे दक्षिणपंथियों के बदहवास हमलों के विरुद्ध संघर्ष छेड़ा गया। ये सब तीखे वर्ग संघर्ष थे। ये वर्ग संघर्ष दो लाइनों के बीच संघर्ष के रूप में पार्टी में भी प्रतिबिम्बित हुए। ल्यू शाओ-ची जैसे संशोधनवादी बार-बार यह बेहूदा तर्क दोहराते थे कि पूंजीवादी "शोषण के कुछ फायदे हैं" और पूंजीवादी प्रभाव को बनाये रखने के प्रयास में पूंजीवादी उद्योग व वाणिज्य के समाजवादी रूपान्तरण का विरोध करते थे। अध्यक्ष माओ के नेतृत्व वाली पार्टी की केन्द्रीय कमेटी के नेतृत्व में, इन गद्दारों के षड्यंत्र को समय रहते कुचल दिया गया, उनकी संशोधनवादी लाइन की आलोचना की गई और पूंजीवादी उद्योग तथा वाणिज्य के समाजवादी रूपान्तरण में विजय सुनिश्चित हुई। यह दिखाता है कि बुर्जुआ वर्ग के विरुद्ध सर्वहारा वर्ग के तथा संशोधनवादी लाइन के विरुद्ध मार्क्सवादी लाइन के संघर्ष पर दृढ़ रहकर तथा मुट्ठीभर प्रतिक्रियावादी पूंजीपतियों और समाजवादी क्रान्ति का विरोध करने वाले तथा समाजवादी निर्माण के विरुद्ध षड्यंत्र करने वाले पार्टी के भीतर छुपे उनके एजेंटों को करारी मात देकर ही राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग को इसके लिए बाध्य किया जा सकता है कि वह धीरे-धीरे समाजवादी रूपान्तरण को स्वीकार कर ले।

** लघु व मध्यम पूंजीवादी उद्यमों को कच्चा माल मुहैया कराया जाता था और राज्य के लिए माल तैयार करने का ठेका दिया जाता था। इस तरीके से, राज्य उन पर नियंत्रण रखता था।*

समस्त जनता के स्वामित्व की समाजवादी प्रणाली में अत्यंत श्रेष्ठता निहित होती है

पूंजीवादी निजी स्वामित्व को हटाकर समस्त जनता के समाजवादी स्वामित्व की स्थापना उत्पादन संबंधों में एक क्रान्तिकारी छलांग होती है। समस्त जनता के समाजवादी स्वामित्व की प्रणाली सार्वजनिक स्वामित्व की ऐसी प्रणाली होती है जिसमें उत्पादन के साधन और श्रम के उत्पाद, दोनों पर मेहनतकश जनसमुदाय का प्रतिनिधित्व कर रहे सर्वहारा राज्य का स्वामित्व होता है। समाजवादी स्वामित्व की इस प्रणाली का आविर्भाव यह दिखाता है कि मुक्त हुआ मेहनतकश अवाम न केवल समाज का शासक वर्ग बन गया है बल्कि पूंजीपतियों के उजरती गुलामों से समाजवादी उत्पादन के स्वामियों में भी रूपान्तरित हो गया है। चीन में, खदानें, नदियां, समुद्री क्षेत्र, जंगल, जमीन और कानून द्वारा राज्य के अधीन किये गये अन्य प्राकृतिक संसाधन; तथा रेलवे, डाक व संचार सेवाएं, बैंक, राजकीय कारखाने, कृषि फार्म और वाणिज्य—ये सब समस्त जनता के समाजवादी स्वामित्व के दायरे में आता है। समस्त मेहनतकश जनसमुदाय के प्रतिनिधि के तौर पर, राज्य उत्पादन के साधनों का स्वामी है और यह सुनिश्चित करता है कि उनका आवंटन तार्किक ढंग से तथा एकीकृत रूप में हो। इसने एक नई स्थिति का निर्माण किया है, जिसमें हमारे देश के इतिहास में पहली बार, राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था सुव्यवस्थित ढंग से निर्दिष्ट और विकसित हो रही है, और इस तरह सामाजिक उत्पादक शक्तियों के विकास का मार्ग प्रशस्त कर रही है।

समस्त जनता के स्वामित्व की समाजवादी प्रणाली समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व की एक ऐसी प्रणाली है जो उत्पादन की अत्यधिक सामाजिक प्रवृत्ति से मेल खाती है। आधुनिक उद्योग में, विभाग और उद्यम एक-दूसरे से जुड़े हुए और परस्पर निर्भर हैं। वे समग्र सामाजिक उत्पादन के अविकल और आवयविक भाग हैं। समाजवादी स्वामित्व प्रणाली का आविर्भाव आधुनिक उद्योग में अत्यधिक समाजीकृत उत्पादक शक्तियों और पूंजीवादी निजी स्वामित्व के अन्तरविरोध का अपरिहार्य परिणाम है। पूंजीवादी समाज में उत्पादन की सामाजिक प्रकृति और उत्पादन के साधनों के निजी स्वामित्व के बीच का अन्तरविरोध तथा अलग-अलग उद्यमों में उत्पादन की संगठित प्रकृति और पूरे समाज में उत्पादन की अराजकता के बीच का अन्तरविरोध केवल समस्त

जनता के समाजवादी स्वामित्व द्वारा ही हल हो सकता है। केवल इस आधार पर ही उत्पादक शक्तियों तथा उत्पादों की बर्बादी और नाश को, जो पूंजीवादी व्यवस्था की अभिलाक्षणिक विशिष्टता है, और बुर्जुआ वर्ग व इसके राजनीतिक नुमाइंदों द्वारा की जाने वाली संसाधनों की अंधाधुंध फिजूलखर्ची को समाप्त किया जा सकता है, और इस तरह, उत्पादक शक्तियों के और तीव्र विकास को प्रोत्साहित किया जा सकता है। समस्त जनता के स्वामित्व की समाजवादी प्रणाली पर आधारित राजकीय अर्थव्यवस्था राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की प्राणशक्ति को नियंत्रित करती है। राजकीय अर्थव्यस्था में आधुनिक उद्योग और परिवहन शामिल होते हैं। राज्य द्वारा संचालित उद्योग राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न विभागों में तकनीकी सुधार को प्रोत्साहित करने के लिए भारी मात्रा में मशीनें, सामग्री, उपकरण, ईंधन और ऊर्जा उपलब्ध कराते हैं। वे कृषि के यंत्रीकरण को प्रोत्साहन देने के लिए भारी मात्रा में ट्रैक्टर, हार्वेस्टर, परिवहन उपकरण, बिजली, ईंधन, रासायनिक खाद व कीटनाशक मुहैया कराते हैं। वे आर्थिक, सांस्कृतिक व प्रतिरक्षा संबंधी निर्माण के लिए भारी मात्रा में आवश्यक धनराशि भी संचित करते हैं। समाजवादी राजकीय अर्थव्यवस्था समग्र राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में नेतृत्वकारी भूमिका निभाने लगती है। यही वह भौतिक आधार होता है जिस पर खड़ा होकर राज्य समाजवादी क्रान्ति और निर्माण के लक्ष्यों की ओर बढ़ता है। चीन में कृषि, दस्तकारी और पूंजीवादी उद्योग व वाणिज्य के समाजवादी रूपान्तरण का काम राजकीय अर्थव्यवस्था के नेतृत्व और निर्देशन में पूरा किया गया। समाजवादी रूपान्तरण के बुनियादी रूप से पूरा हो जाने के बाद सामूहिक अर्थव्यवस्था का सुदृढ़ीकरण और विकास भी राजकीय अर्थव्यवस्था की नेतृत्वकारी भूमिका से जुड़ा हुआ था। समाजवादी राजकीय अर्थव्यवस्था सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व के सुदृढ़ीकरण के लिए एक मजबूत भौतिक शक्ति है।

कृषि क्षेत्र में समस्त जनता के स्वामित्व की समाजवादी प्रणाली के अधीन आने वाला अर्थव्यवस्था का भाग मुख्यत: राजकीय फार्म होता है। चीन में, राजकीय फार्म सामूहिक अर्थव्यवस्था से भिन्न कुछ भूमिकाएं निभाता है: (1) फार्म द्वारा स्वयं संचित कोष के अतिरिक्त आवश्यकता पड़ने पर कृषि के यंत्रीकरण को तेज करने के लिए सीधे राज्य भी निवेश कर सकता है, जिससे राजकीय फार्म नेतृत्वकारी भूमिका निभा सकते हैं और कृषि क्षेत्र में एक माडल बन सकते हैं। (2) राजकीय फार्म राज्य द्वारा कृषि में सैद्धान्तिक प्रयोग संचालित करने का एक महत्वपूर्ण आधार है। जिन वैज्ञानिक प्रयोगों में अधिक विशेषीकृत शोधकर्मियों, अधिक धन तथा उपयोगी परिणाम प्राप्त करने के लिए अपेक्षाकृत लम्बे समय की आवश्यकता होती है, प्राय: वे देहात में सामूहिक अर्थव्यवस्था द्वारा संचालित नहीं किया जा सकते क्योंकि वहां जनशक्ति, संसाधनों और वित्त की सीमाएं होती हैं। दूसरी ओर, राजकीय फार्म एक एकीकृत योजना के तहत जनशक्ति, भौतिक संसाधनों और धन को विभिन्न सैद्धान्तिक प्रयोग संचालित करने में लगा सकता है और इनसे प्राप्त उपयोगी परिणामों को कृषि कम्यूनों में वितरित कर सकता है। (3) बड़े पैमाने पर अनछुई धरती को कृषि योग्य बनाने, वनों के विकास तथा लकड़ी की कटाई के मामले में राजकीय फार्म सामूहिक अर्थव्यवस्था से आगे रहता है।

समस्त जनता के समाजवादी स्वामित्व की प्रणाली में अत्यंत ऊंचे स्तर का सार्वजनिक स्वामित्व निहित होता है और इसके विकास की दिशा समस्त जनता के कम्युनिस्ट स्वामित्व में रूपान्तरित हो जाने की ओर होती है। समस्त मेहनतकश जनता द्वारा उत्पादन के साधनों के सार्वजनिक स्वामित्व के दृष्टिकोण से स्वामित्व के इस रूप में पहले से ही कम्युनिस्ट तत्व निहित होता है। लेकिन समस्त जनता का समाजवादी स्वामित्व एक ऐसी प्रणाली है जो अभी-अभी पुराने समाज के गर्भ से निकली है और इस पर पुराने समाज के जन्मचिन्ह तथा परम्पराओं के लक्षण होना लाजिमी है। पहले तो, समस्त जनता द्वारा समाजवादी स्वामित्व की प्रणाली स्वामित्व का एक ऐसा रूप है जो वर्गों और वर्ग संघर्ष से नजदीकी से जुड़ा हुआ है। "समस्त जनता का" इस शब्दावली का अर्थ "समस्त मेहनतकश जनता" से है और समाजवादी स्वामित्व की यह प्रणाली केवल सर्वहारा वर्ग और मेहनतकश जनता की सेवा करती है। दूसरे, समस्त जनता के समाजवादी स्वामित्व को समाजवादी राजकीय स्वामित्व का रूप ग्रहण करने की आवश्यकता होती है और समाजवादी राज्य, लेनिन के शब्दों में, एक अर्थ में, "बुर्जुआ वर्ग के बिना बुर्जुआ राज्य" होता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि राज्य को अब भी बुर्जुआ अधिकारों की रक्षा करनी होती है।** तीसरे, समस्त जनता का समाजवादी स्वामित्व माल व्यवस्था, मुद्रा के जरिए विनिमय और काम के अनुसार वितरण के साथ सम्बद्ध है; और माल व्यवस्था में, मुद्रा के जरिए विनिमय की प्रक्रिया में तथा काम के अनुसार वितरण में समान अधिकार, अभी भी बुर्जुआ अधिकार ही हैं। ये परिघटनाएं इस बात को रेखांकित करती हैं कि समस्त जनता के समाजवादी और विकसित होकर समस्त जनता के कम्युनिस्ट स्वामित्व को शुद्धतम प्रणाली के रूप में देखने का कोई आधार नहीं है। जब समस्त जनता का समाजवादी स्वामित्व की प्रणाली का रूप ले लेगा तभी समाज वर्गों के ठप्पे से तथा पूंजीवाद की परम्पराओं और जन्मचिन्हों से मुक्त हो सकेगा।

समस्त जनता के समाजवादी स्वामित्व की प्रणाली स्थापित हो जाने के बाद भी, उसे सुदृढ़ करने और लगातार सुधारते जाने की एक लम्बी प्रक्रिया होती है। समस्त जनता का समाजवादी स्वामित्व आगे बढ़ता है, या पीछे हटता है—यह समाजवाद के दौर में दो वर्गों, दो मार्गों और दो लाइनों के बीच संघर्ष के केन्द्रीय मुद्दों में से एक है।

कृषि के समाजीकरण के बिना समाजवाद का सुदृढ़ीकरण नहीं हो सकता

छोटी किसानी अर्थव्यवस्था का समाजवादी रूपान्तरण करना आवश्यक है

राजनीतिक सत्ता पर कब्जा करने के बाद सर्वहारा को अत्यधिक समाजीकृत पूंजीवादी अर्थव्यस्था का ही सामना नहीं करना पड़ता। उसे व्यक्तिगत श्रमिक के स्वामित्व पर आधारित निजी अर्थव्यवस्था की व्यापक प्रणालियों का भी सामना करना पड़ता है। इसके संघटक कृषि, दस्तकारी उद्योग, परिवहन और वाणिज्य में पाये जाते हैं, लेकिन सर्वाधिक संख्या और विस्तृत क्षेत्र में वे कृषि में मौजूद होते हैं। इस व्यक्तिगत आर्थिक गतिविधि में भाग लेने वाले व्यक्तिगत श्रमिक होते हैं। व्यक्तिगत गृहस्थी, उत्पादन और संचालन की इकाई होती है। हालांकि इन आर्थिक गतिविधियों में संलग्न व्यक्तिगत श्रमिक उत्पादन के कुछ साधनों के मालिक होते हैं, पर उसका परिमाण बहुत कम होता है और उनका भविष्य अनिश्चित रहता है। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था उन्हें किसी भी क्षण दिवालिया बना सकती है। सर्वहारा वर्ग द्वारा बुर्जुआ राज्य को उखाड़ फेंकने और समस्त जनता के समाजवादी स्वामित्व की प्रणाली स्थापित करने के बाद, क्या व्यक्तिगत अर्थव्यवस्था की प्रणालियों को काम करते रहने की इजाजत दी जा सकती है? नहीं। माओ त्से-तुङ ने कहा है, "कृषि के समाजीकरण के बिना पूर्ण, सुदृढ़ समाजवाद का निर्माण संभव नहीं है।[8]" यहां हमें यह विश्लेषण करना है कि समाजवाद की परिस्थितियों में कृषि मे निजी अर्थव्यवस्था की प्रणालियों को कौन सा मार्ग अपनाना चाहिए, क्योंकि कृषि में निजी अर्थव्यवस्था की राह भी, सिद्धांत रूप में वही है जो निजी अर्थव्यवस्था की अन्य प्रणालियों की होती है, जैसे कि व्यक्तिगत दस्तकारी उद्योग की।

** *''सर्वहारा राज्य बुर्जुआ अधिकार को मान्यता देता है, इसे बनाये रखने की अनुमति देता है, इसकी हिफाजत करता है और लोगों को इसका पालन करने के लिए बाध्य करता है। (हालांकि साथ ही, वह इस पर अंकुश भी लगाता है)। इस अर्थ में, सर्वहारा अधिनायकत्व के तहत राज्य बुर्जुआ राज्य द्वारा निभायी जाने वाली भूमिका का निर्वाह करता है।" (पीकिङ रिव्यू, 14 नवम्बर 1975 (46), पृ. 23)*

राजनीतिक सत्ता पर काबिज होने के बाद सर्वहारा द्वारा स्थापित समस्त जनता के समाजवादी स्वामित्व की प्रणाली सर्वहारा अधिनायकत्व के तहत राज्य व्यवस्था की मुख्य आर्थिक बुनियाद होती है। लेकिन व्यक्तिगत श्रम और स्वामित्व पर आधारित छोटी किसानी अर्थव्यवस्था समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व की प्रणाली और सर्वहारा अधिनायकत्व की अधिरचना के साथ टकराती है। ऐसा इसलिए क्योंकि निजी स्वामित्व पर आधारित छोटी किसानी अर्थव्यवस्था पूंजीवाद की उर्वर जमीन होती है। यह निश्चित रूप से, किसानों को, गरीब किसानों और खेतिहर मजदूरों की बहुंसख्या तथा देहात में बुर्जुआ वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाले थोड़े से धनी किसानों के बीच ध्रुवीकृत कर देगी। लेनिन के शब्दों में, "छोटे पैमाने का उत्पादन लगातार प्रतिदिन, प्रतिघंटा, स्वत:स्फूर्त ढंग से, और बड़े पैमाने पर पूंजीवाद को *पैदा करती* है।[9]"

चीन की लोक जनवादी क्रान्ति भूमि व्यवस्था को रूपान्तरित करने, सामन्त वर्ग से जमीन जब्त कर उसे किसानों में वितरित करने और सामन्ती स्वामित्व व्यवस्था को समाप्त करके भारी किसान आबादी को सामन्ती जकड़ से मुक्त करने के रूप में एक महान विजय थी। लेकिन भूमि सुधार के बाद भी यह प्रश्न रहता है कि व्यक्तिगत किसान कौन सी राह पकड़ें? वे पूंजीवादी मार्ग पर चले या समाजवादी मार्ग पर? चीन के भूमि सुधार के कुछ ही वर्षों के भीतर, स्वत:स्फूर्त पूंजीवादी प्रवृत्तियां तेजी से बढ़ने लगीं। नये धनी किसान चारों ओर दिखाई देने लगे और बहुत से खुशहाल मध्यम किसान धनी किसान बन जाने के लिए एड़ी–चोटी एक करने लगे। बहुत से गरीब किसान अपर्याप्त उत्पादन के साधनों के कारण अब भी गरीबी झेल रहे थे। उनमें से बहुत से कर्ज से लदे थे। कुछ को अपनी जमीन बेचनी या रेहन रखनी पड़ी। इन परिस्थितियों के पैदा होने ने इस तथ्य को ही पुष्ट किया कि, यदि भूमि सुधार के बाद, सर्वहारा वर्ग तत्काल ही, व्यापक किसान आबादी को अपने नेतृत्व में समाजवादी मार्ग पर नहीं ले चलता है और समय रहते छोटी किसानी अर्थव्यवस्था का समाजवादी रूपान्तरण नहीं करता है बल्कि उसमें ध्रुवीकरण होने देता है, तो पूंजीवादी राह पर जाने पर आमादा उच्च मध्यवर्गीय किसान मेहनतकश वर्ग के हितों से अधिकाधिक दूर होते जाएंगे। दूसरी ओर वे किसान जो फिर से अपनी जमीन खो बैठे हैं और अब भी गरीबी से घिरे हुए हैं, यह कहेंगे कि सर्वहारा वर्ग ने उन्हें बचाया नहीं और उनकी समस्याओं का हल नहीं किया। इस तरह, भूमि सुधार के आधार पर कायम मजदूर–किसान संश्रय टूटने के कगार पर पहुंच जाएगा। ऐसी स्थिति सर्वहारा के अधिनायकत्व और समाजवादी आर्थिक बुनियाद के सुदृढ़ीकरण के लिए भी खतरा पैदा करेगी।

भूमि सुधार के बाद, निजी स्वामित्व पर आधारित छोटी किसान अर्थव्यवस्था ने कृषि उत्पादन के पुनरुद्धार और इसे बढ़ाने में एक हद तक भूमिका निभाई। लेकिन यह अर्थव्यवस्था तो पिछड़े उत्पादन संबंधों पर आधारित थी। छोटी किसानी में निजी स्वामित्व और बिखरे हुए होने के कारण छोटी किसानी उन्नत तकनीकों और आधुनिक कृषि उपकरणों का इस्तेमाल संभव नहीं था। प्राकृतिक आपदाओं के समक्ष यह असहाय थी और लगातार विस्तारित पुनरुत्पादन जारी रखना इसके लिए असंभव था। इसीलिए छोटी किसानी अर्थव्यवस्था समाजवादी अर्थव्यवस्था की खाद्यान्न, औद्योगिक कच्चे मालों व अतिरिक्त श्रम शक्ति की मांग को पूरा करने में असमर्थ सिद्ध हुई और यह औद्योगिक विकास के लिए बड़ा घरेलू बाजार भी उपलब्ध नहीं करा सकी। इस तरह, छोटी किसानी अर्थव्यवस्था का समाजवादी औद्योगिकीकरण के साथ तीखा विरोध था। इस अन्तरविरोध को हल करने के लिए यह आवश्यक था कि सर्वहारा वर्ग बिखरी हुई और पिछड़ी छोटी किसानी अर्थव्यवस्था को समाजवादी मार्ग पर आगे ले चलने के लिए उपयुक्त कदम उठायें।

छोटी किसानी अर्थव्यवस्था को समाजवादी मार्ग पर कैसे आगे बढ़ाया जा सकता है?

छोटी किसानी अर्थव्यवस्था के समाजवादी रूपान्तरण के लिए जरूरी राह है — संगठित होना

किसान एक श्रमिक है और सर्वहारा वर्ग का मित्र है। किसान के निजी स्वामित्व वाले उत्पादन के साधनों को छीना नहीं जा सकता है। एंगेल्स ने एक जगह चिहिन्त किया है, "राज्य सत्ता पर काबिज हो जाने के बाद जिस तरह हमें बड़े भूस्वामियों की सम्पत्ति जबरन जब्त करनी पड़ती है, वैसा (चाहे बिना मुआवजा दिये या मुआवजा देकर) छोटे किसानों के साथ करने के बारे में हमें सोचना भी नहीं चाहिए। छोटे किसानों के सापेक्ष हमारा कार्यभार, सर्वप्रथम, उनके निजी उद्यम और निजी स्वामित्व को सहकारी उद्यम व स्वामित्व में तब्दील करना होना चाहिए और यह जबरन नहीं, बल्कि उदाहरण के द्वारा तथा इस कार्य के लिए सामाजिक सहायता के प्रस्ताव के जरिए होना चाहिए।[10]" कहने का मतलब, कृषि का सहकारीकरण संगठित होकर ही संभव है। "यह जनता के लिए मुक्ति की एकमात्र राह, गरीबी से समृद्धि की ओर ले जाने वाली एकमात्र राह है...।"[11] चीन में, गरीब और निम्न मध्यवर्गीय किसानों की व्यापक आबादी ने समाजवादी रूपान्तरण के काम में पूरा सहयोग दिया। उनमें समाजवादी मार्ग के लिए अत्यधिक उत्साह था। जबकि भूस्वामियों और धनी किसानों ने इसे असफल करने की जी–तोड़ कोशिशें कीं। इसीलिए, कृषि के सहकारीकरण के प्रश्न पर, शुरू से ही, समाजवादी और पूंजीवादी राह के बीच एक गंभीर संघर्ष मौजूद था। यह संघर्ष दो लाइनों के बीच गंभीर संघर्ष के रूप में पार्टी में भी अभिव्यक्त हुआ।

बुर्जुआ वर्ग और धनी किसानों के हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले ल्यू शाओ–ची और चेन पो–ता गुट ने "यंत्रीकरण पहले, सहकारीकरण बाद में" की संशोधनवादी लाइन प्रस्तावित की। वैयक्तिक अर्थव्यवस्था को पूंजीवाद की शैतानी राह पर ले जाने के असफल प्रयास में, उन्होंने पूरी ताकत से हमला किया। उनका तर्क था कि यंत्रीकरण के पहले सहकारीकण शुरू करना "गलत, खतरनाक और एक भ्रामक खेतिहर समाजवाद" था। ल्यू शाओ–ची और उसकी मंडली द्वारा फैलाई गई भ्रान्तियों का जवाब देते हुए माओ त्से–तुङ ने इंगित किया, "हमारे देश की परिस्थितियों में, कृषि में बड़ी मशीनों के इस्तेमाल के पहले सहकारीकरण होना चाहिए (पूंजीवादी देशों में कृषि पूंजीवादी ढंग से विकसित होती है)।"[12] अध्यक्ष माओ के नेतृत्व में पार्टी की केन्द्रीय कमेटी ने सर्वहारा वर्ग और गरीब तथा निम्न मध्यवर्गीय किसानों के हितों की मजबूती से हिफाजत की। इसने चीन के ग्रामीण क्षेत्र की वास्तविक स्थितियों का विलेषण किया और कृषि के लिए बुनियादी पार्टी लाइन निर्धारित की। पहला कदम था, कृषि का सामूहिकीकरण करना, और दूसरा कदम था, कृषि के सहकारीकरण के आधार पर कृषि का यंत्रीकरण करना। यह एक मार्क्सवादी लाइन थी। माओ की इस क्रान्तिकारी कार्यदिशा को पूरी तरह लागू किया गया। कृषि के सहकारीकरण की प्रक्रिया में पूरी पार्टी ने भूस्वामियों व धनी किसानों के विरुद्ध समझौताहीन संघर्ष चलाने तथा ल्यू शाओ–ची गुट की संशोधनवादी लाइन को खारिज करने के लिए गरीब और निम्न मध्यवर्गीय किसानों पर भरोसा करते हुए अन्य मध्यवर्गीय किसानों के साथ उनकी मजबूत एकता कायम की। परिणामस्वरूप, कृषि में सहकारीकरण शानदार तरीके से, बहुत कम समय में पूरा कर लिया गया।

चीन में कृषि के रूपान्तरण की प्रक्रिया ग्रामीण क्षेत्र में उत्पादन संबंधों और उत्पादक शक्तियों के अन्तरविरोधों की गति को परिलक्षित करती थी। रूपान्तरण की प्रक्रिया एक के बाद एक, कदम–बा–कदम, तीन मंजिलों से होकर गुजरी। प्रारंभ में, कुछ समाजवादी तत्वों को लेकर पारस्परिक सहायता टीमें गठित की गईं ताकि किसानों को सामूहिक श्रम करने के लिए प्रशिक्षित किया जा सके और उनके सामने यह प्रदर्शित किया जा सके कि व्यक्तिगत संचालन के मुकाबले इस तरीके से उनका उत्पादन ज्यादा तेजी से बढ़ेगा। लेकिन पारस्परिक सहायता टीमों में सामूहिक श्रम और बिखरे हुए संचालन के बीच अन्तरविरोध था। इस अन्तरविरोध को हल किये बिना "संगठित

होने" की भरपूर संभावनाओं को और आगे बढ़ा पूरा करना मुश्किल होता। ऐसे समय में, और स्थानीय परिस्थितियों के मद्देनजर, पार्टी ने किसानों की आरंभिक स्तर की कृषि उत्पादन सहकारी समितियां गठित करने में नेतृत्व दिया, जिनकी प्रकृति अर्द्ध-समाजवादी थी। इन प्रारंभिक सहकारियों भूमि पर निजी स्वामित्व होता था, पर उसका संचालन सहकारी संस्था संयुक्त रूप से करती थी। इसी प्रकार निजी स्वामित्व वाले मवेशियों और बड़े कृषि यंत्रों का प्रयोग भी संयुक्त रूप से किया जाता था। इस तरह पारस्परिक-सहायता टीम में मौजूद सामूहिक श्रम और बिखरे हुए संचालन के अन्तरविरोध का हल हो गया। उत्पादन को इससे और प्रोत्साहन मिला। लेकिन प्रारंभिक सहकारी में, अब भी, "भूमि लाभांश" और निजी मवेशियों या कृषि उपकरणों के प्रयोग के लिए एक निश्चित भुगतान दिया जाता था। उत्पादक के साधनों पर निजी स्वामित्व समाप्त नहीं हुआ था। एक ओर संयुक्त संचालन और सामूहिक श्रम के बीच तथा दूसरी ओर, भूमि तथा उत्पादन के अन्य साधनों के बीच अन्तरविरोध अब भी बना हुआ था। यदि इस अन्तरविरोध को हल नहीं किया जाता, तो गरीब व निम्न-मध्यम किसानों की व्यापक आबादी की क्रियाशीलता पूरी तरह निर्बन्ध नहीं हो सकती थी। उस समय, वस्तुगत परिस्थितियों के आधार पर, पार्टी ने पूरी तरह समाजवादी उन्नत कृषि उत्पादन सहकारी संस्थाएं गठित करने में किसानों का नेतृत्व किया। उत्पादन के साधनों पर मेहनतकश जनता के सामूहिक स्वामित्व के आधार पर, उन्नत सहकारी ने "हरेक से उसकी क्षमतानुसार और हरेक को उसके काम के अनुसार" के समाजवादी सिद्धांत को लागू किया। यह पूर्णत: समाजवादी सामूहिक अर्थव्यवस्था थी। वास्तविक परिस्थितियों के अनुसार चरणबद्ध ढंग से बढ़ने की नीति के चलते, किसानों को धीरे-धीरे सामूहिक श्रम और सामूहिक संचालन की आदत हो गई, निजी स्वामित्व की धारणा उन्होंने छोड़ दी और उनमें समाजवादी उत्साह जागृत हुआ जिससे वे स्वेच्छा से सहकारी में शामिल हुए। परिणामस्वरूप, सहकारीकरण की पूरी प्रक्रिया में, न केवल कृषि-उत्पादन घटा नहीं, बल्कि साल-दर-साल यह बढ़ता गया, और इसने माओ त्से-तुङ की क्रान्तिकारी लाइन को पूरी तरह सही सिद्ध कर दिया।

भूमि सुधार पूरा होने के बाद, चीन के विशाल ग्रामीण क्षेत्र में कृषि के समाजवादी रूपान्तरण के काम को, बुनियादी तौर पर, चार साल से भी कम समय में पूरा कर लिया गया। कृषि का सहकारीकरण कर लिया गया और निजी स्वामित्व की विराट प्रणाली को मेहनतकश जनता के सामूहिक स्वामित्व की प्रणाली में तब्दील कर दिया गया। कृषि का सहकारीकरण पूरा हो जाने से उत्पादक शक्तियां और मुक्त हुई, विशाल ग्रामीण क्षेत्र में सर्वहारा वर्ग की पकड़ और मजबूत हुई, मजदूर-किसान संश्रय और अधिक सुदृढ़ हो गया तथा सर्वहारा का अधिनायकत्व और पुख्ता हो गया। इसके नतीजे बहुत गहरे थे।

चीन का ग्रामीण जन कम्यून सामूहिक स्वामित्व प्रणाली में एक महत्वपूर्ण विकास है

मेहनतकश जनता द्वारा समाजवादी सामूहिक स्वामित्व प्रणाली की स्थापना के बाद, क्रमिक विकास और सुधार की प्रक्रिया शुरू हुई। उत्पादक शक्तियों के विकास और मेहनतकश जनसमुदाय की समाजवादी चेतना के उन्नत होने के साथ, छोटे सामूहिक फार्म बड़े सामूहिक फार्मों में विकसित हो गये और कम स्तर के सार्वजनिक स्वामित्व वाले सामूहिक फार्म अधिक उन्नत स्तर के सार्वजनिक स्वामित्व वाले सामूहिक फार्मों में विकसित हो गये। यह एक वस्तुगत नियम हैं। 1958 में समाजवादी निर्माण के लिए पार्टी की आम लाइन के निर्देशन में, 'महान अग्रवर्ती छलांग' से उत्प्रेरण पाकर, और ग्रामीण क्षेत्र में उत्पादक शक्तियों को विकसित करने की आवश्यकता के अनुरूप, चीन का ग्रामीण जन कम्यून पूर्वी एशिया के विस्तृत क्षितिज पर भोर के उगते सूरज की तरह उभरा। गरीब और निम्न-मध्यम किसानों की व्यापक आबादी जन कम्यून को दिलो-जान से चाहती थी। उन्होंने इसके जन्म की खुशी में कई लोक गीतों की रचना कर डाली। उनमें से एक इस तरह है:

> निजी खेती पटरे के पतले पुल की तरह है,
> यह हर कदम पर तीन बार हिलता है;
> पारस्परिक सहायता पत्थर के पुल की तरह है,
> यह आंधी-पानी को ठीक से नहीं झेल पाता है;
> लोहे का पुल बुरा नहीं है
> पर यह भारी यातायात को नहीं संभाल सकता है;
> जन कम्यून तो सोने का पुल है
> जो स्वर्ग की राह पर ले जाता है।

जन कम्यून एक *सियाङ****** की कई उन्नत कृषि उत्पादन सहकारी समितियों को आपस में मिलाकर बनता था और यह प्रति *सियाङ* एक की दर से गठित किया जाता था। कम्यून एक ऐसा संगठन है जो प्रशासन को उत्पादक के साथ जोड़ता है और जिसमें मजदूर, किसान (वानिकी, पशु-पक्षी पालन, सहायक गतिविधियों और मत्स्य पालन में लगे लोगों सहित), व्यापारी, छात्र और सैनिक शामिल होते हैं। यह ग्रामीण क्षेत्र में चीन के समाजवादी समाज की बुनियादी इकाई है। यह ग्रामीण क्षेत्र में चीनी सरकार की भी बुनियादी इकाई है। एक पर्याप्त लम्बे ऐतिहासिक काल के लिए यह पारस्परिक सहायता और लाभ पर आधारित समाजवाद का सामूहिक आर्थिक संगठन बना रहेगा। लेकिन, जब उन्नत कृषि सहकारिता जन कम्यून के रूप में विकसित हुई, उस समय उत्पादन का पैमाना तथा जनता के स्वामित्व वाले उत्पादन के साधनों का हिस्सा, दोनों बढ़ गये। इसकी अभिलाक्षणिक विशेषता ही थी, "बड़ा और सार्वजनिक।" यह चीन में मेहनतकश जनता के समाजवादी सामूहिक स्वामित्व की प्रणाली में हुआ एक महत्वपूर्ण विकास था।

वर्तमान अवस्था में, ग्रामीण जन कम्यूनों में सामूहिक स्वामित्व की आर्थिक प्रणाली आम तौर पर "त्रिस्तरीय स्वामित्व" का रूप लेती है "जिसमें उत्पादन टीम बुनियादी स्तर पर होती है।" स्वामित्व की त्रिस्तरीय प्रणाली में कम्यून और बिग्रेड स्तर पर सामूहिक स्वामित्व आंशिक होता है। उत्पादन टीम ही जन कम्यून में लेखा की बुनियादी इकाई है। यह स्वतंत्र रूप से अपनी लेखा गतिविधियां संचालित करती है और अपने सभी घाटे और मुनाफे के लिए जिम्मेदार होती है। यह सीधे तौर पर उत्पादन को संगठित करती है और आय के वितरण का निर्णय करती है। इसका कारण यह है कि वर्तमान अवस्था में कृषि उत्पादन अब भी मूलत: शारीरिक श्रम और पशुओं के श्रम पर निर्भर करता है। हालांकि जन कम्यून की स्थापना के बाद से कृषि यंत्रीकरण का स्तर उत्तरोत्तर बढ़या गया है, लेकिन समग्रता में, ग्रामीण क्षेत्र में अब भी शारीरिक श्रम ही प्रधान है। वर्तमान अवस्था में आम तौर पर एक उत्पादन टीम में बीस से तीस घर होना ठीक रास्ता है। यह उत्पादन और वितरण को संगठित करने, प्रबंधन को मजबूत करने, कम्यून सदस्यों की समाजवादी क्रियाशीलता को सन्नद्ध करने, उन्हें समूह के प्रति और अधिक सरोकार रखने के लिए जागरूक करने और कार्यकर्ताओं के निरीक्षण को चुस्त-दुरुस्त बनाये रखने की दृष्टि से अनुकूल स्थिति है। उत्पादन टीम के ऊपर बिग्रेड और कम्यून की सामूहिक अर्थव्यवस्थाएं होती हैं। इन दो स्तरों पर समाजीकरण का स्तर अपेक्षाकृत ऊंचा होता है और सामूहिक अर्थव्यवस्था के विकास के साथ, वित्तीय रूप से यह संभव हो जाता है कि बड़े और मध्यम आकार के कृषि उपकरण खरीदे जाएं, जल संरक्षण जैसे काम हाथ से लिये जाए, छोटे कारखानों और खदानों का संचालन किया जाएं और खास-खास जगहों पर कमजोर उत्पादन टीमों की मदद की जाएं जिससे सामूहिक अर्थव्यवस्था का विकास तेज हो सके। उत्पादन टीम के लिए इन गतिविधियों को चलाना कठिन है। जन कम्यून तीन स्तरों पर सामूहिक स्वामित्व और आर्थिक लेखा की प्रणाली पर आधारित एक सम्पूर्ण और

**** सियाङ टाउनशिप के स्तर पर एक प्रशासनिक इकाई थी, जिसमें एक या कई गांव होते थे।*

अविभाज्य इकाई है। त्रिस्तरीय सामूहिक स्वामित्व की प्रणाली में ग्रामीण क्षेत्र में विद्यमान विभिन्न परिस्थितियों से निपटने तथा विकसित होती ग्रामीण उत्पादक शक्तियों द्वारा उपस्थित भिन्न-भिन्न आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अत्यधिक लचीलापन है। इसीलिए यह सामाजिक उत्पादकता के तीव्र विकास के लिए अनुकूल है।

यदि जन कम्यून की सामूहिक अर्थव्यवस्था का विकास और प्रधानता सुनिश्चित रहे, और इसका पूरा ध्यान रखा जाए, तो कम्यून के सदस्यों को खाली समय तथा छुट्टियों में छोटे-छोटे जमीन के टुकड़ों पर अपनी निजी जरूरत की चीजें उगाने तथा सीमित पैमाने पर घरेलू उत्पादन करने की अनुमति और प्रोत्साहन दिया जाता है। निजी जमीन के टुकड़े रखना और उस पर खेती करना तथा छोटे-मोटे पारिवारिक व्यवसाय चलाना छोटे पैमाने की निजी अर्थव्यवस्था के ही अवशेष हैं। लेकिन समाजवाद के तहत, ये गतिविधियां सामूहिक स्वामित्व पर आधारित समाजवादी अर्थव्यवस्था से जुड़ी हुई और उसके अधीन होती हैं। समाजवादी संक्रमण के दौरान कुछ समय तक, खेती और घरेलू व्यवसाय ग्रामीण क्षेत्र में श्रमशक्ति को और ज्यादा उपयोग में लाये जाने, सामाजिक उत्पाद को बढ़ाने, कम्यून सदस्यों का जीवनस्तर सुधारने तथा ग्रामीण व्यापारिक मेलों में उपलब्ध वस्तुओं की विविधता व मात्रा को बढ़ाने में एक भूमिका अदा करते हैं। लेकिन, साथ ही, छोटे पैमाने के निजी स्वामित्व की प्रणाली के ऐसे अवशेष उस मिट्टी का काम करते हैं जिसमें पूंजीवाद पनपता है, और इसीलिए उनकी नकारात्मक भूमिका पर अंकुश रखने के लिए नेतृत्व को मजबूत बनाया जाना चाहिए।

चीन के ग्रामीण जन कम्यून में सामूहिक स्वामित्व की प्रणाली, जो आम तौर पर "बुनियादी स्तर पर उत्पादन टीम वाली त्रिस्तरीय प्रणाली" का रूप लेती है, कई वर्षों तक चलेगी। लेकिन विभिन्न स्थितियों में क्रमिक सुधार (जैसे, कृषि यंत्रीकरण के स्तरोन्नयन, उत्पादन टीमों के बीच आय का अन्तर कम होने और कम्यून सदस्यों की समाजवादी चेतना का स्तर बढ़ने) के साथ, ग्रामीण जन कम्यून क्रमशः विकसित होते हुए उत्पादन टीम पर आधारित स्वामित्व प्रणाली को अपनाएगा, और फिर कदम-बा-कदम बढ़ते हुए समस्त जनता के समाजवादी स्वामित्व की प्रणाली तक पहुंचेगा। यह क्रमिक विकास की एक लम्बी प्रक्रिया होगी।

कृषि में सामूहिक स्वामित्व की प्रणाली की ही तरह, दस्तकारी उद्योग में भी सामूहिक स्वामित्व की प्रणाली छोटे सामूहिक उद्योग से बड़े सामूहिक उद्योग तक और फिर, बड़े सामूहिक उद्योग से समस्त जनता के समाजवादी स्वामित्व की प्रणाली तक विकास की एक लम्बी प्रक्रिया द्वारा स्थापित होती है।

सामूहिक स्वामित्व की प्रणाली का छोटे से बड़े, निम्न से उच्च स्तर और समाजवादी सामूहिक स्वामित्व से समस्त जनता के समाजवादी स्वामित्व तक का विकास उत्पादक शक्तियों के कदम-बा-कदम विकसित होने और जनता में समाजवादी चेतना के क्रमशः उन्नत होने पर टिका हुआ होता है। आवश्यक परिस्थितियों के मौजूद हुए बिना, स्थिति को समय से पहले ही बदल देने की कोशिश करना गलत होगा। पर यह भी गलत होगा कि जब आवश्यक परिस्थितियां मौजूद हों, उस वक्त भी यथास्थिति से संतुष्ट रहा जाए। ये दोनों प्रवृत्तियां उत्पादक शक्तियों के विकास के लिए प्रतिकूल हैं। ये प्रवृत्तियां उत्पादक शक्तियों के विकास में बाधक भी बन सकती हैं। चीन में उन्नत कृषि उत्पादन कोआपरेटिवों को ग्रामीण जन कम्यून में रूपान्तरित करने की प्रक्रिया में ये दोनों प्रवृत्तियां मौजूद थीं। जन कम्यून का उद्भव चीन में आर्थिक व राजनीतिक विकास का एक स्वाभाविक परिणाम है और वस्तुगत नियमों से पूरी तहर मेल खाता है। लेकिन ल्यू शाओ-ची जैसे संशोधनवादियों ने दुर्भावनाग्रस्त होकर इसे "समय से पहले उठाया कदम और पूरी तरह समस्याग्रस्त" बताते हुए इस पर हमला किया। जब जन कम्यून के शक्तिशाली ज्वार ने उनके द्वारा बहाई गई उल्टी धारा को पलट दिया, तो वे "कम्युनिज्म की ओर छलांग" लगाने का हो-हल्ला करते हुए जन कम्यून को नुकसान पहुंचाने के लिए "कम्यूनीकरण" की आंधी उभाड़ने का असफल प्रयास करने लगे। अब से, मेहनतकश जनता के समाजवादी सामूहिक स्वामित्व पर आधारित ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास की प्रक्रिया में दो वर्गों, दो राहों, और दो लाइनों के बीच संघर्ष होना ही था। यह अवश्यम्भावी है और कतई आश्चर्यजनक नहीं है।

हालांकि मेहनतकश जनता का समाजवादी सामूहिक स्वामित्व और समस्त जनता का समाजवादी स्वामित्व समाजवादी सार्वजनिक सवामित्व के ही दो प्रकार हैं, पर उनके बीच कई महत्वपूर्ण अन्तर हैं। सामूहिक अर्थव्यवस्था में उत्पादन के साधन पूरे देश के सभी मेहनतकशों की सार्वजनिक सम्पत्ति नहीं होते, बल्कि सामूहिक अर्थव्यवस्था की एक-एक इकाई में काम करने वाले मेहनतकशों की साझा सम्पत्ति होते हैं। अतः जनशक्ति, सामग्री और वित्तीय संसाधनों को बिना मुआवजे के राजकीय, तथा सामूहिक क्षेत्रों के बीच स्थानान्तरित नहीं किया जा सकता, न ही सामूहिक अर्थव्यवस्था की विभिन्न इकाइयों के बीच संसाधनों का स्थानान्तरण मुआवजे के बगैर संभव हो सकता है।

मेहनतकश जनता का समाजवादी सामूहिक स्वामित्व समाजवादी स्वामित्व का एक ऐसा रूप है जिसमें सार्वजनिक स्वामित्व का स्तर नीचा है और पुराने समाज के काफी जन्मचिन्ह मौजूद हैं। सामूहिक अर्थव्यवस्था की किसी एक इकाई में तो उत्पादन के साधनों पर लोगों का स्वामित्व समान है (भूमि, उपकरण आदि पर उस इकाई के लोगों का सामूहिक स्वामित्व होता है)। लेकिन सामूहिक अर्थव्यवस्था की विभिन्न इकाइयों के बीच उत्पादन के साधनों के स्वामित्व में असमानता होती है। ग्रामीण क्षेत्र में जन कम्यूनों की विभिन्न उत्पादन ब्रिगेडों के बीच न केवल भूमि के परिमाण में अन्तर है, बल्कि मिट्टी की उत्पादकता और भौगोलिक स्थिति में अन्तर के कारण, बराबर परिमाण में श्रम लगाने के बावजूद उनकी आय में भी अन्तर रहेगा। इस तरह, अलग-अलग कम्यूनों में, एक ही कम्यून की अलग-अलग उत्पादन ब्रिगेडों में और एक ही ब्रिगेड की अलग-अलग उत्पादन टीमों में 'वर्क प्वाइंट्स' का मूल्य अलग-अलग होगा।**** यह परिघटना दिखाती है कि सामूहिक स्वामित्व के दायरे में, बुर्जुआ अधिकार अब भी पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ है और समाजवादी सामूहिक स्वामित्व का सुदृढ़ीकरण तथा इसे दोषमुक्त बनाना अभी एक अत्यंत कठिन और बड़ा कार्यभार बना हुआ है।

समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व की प्रणाली संघर्ष के जरिए सुदृढ़ और विकसित की जाती है

सोवियत संघ में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना के गंभीर सबक

ख्रुश्चेव-ब्रेझनेव गद्दार गुट द्वारा बुर्जुआ तानाशाही की पुनर्स्थापना के बाद से सर्वहारा अधिनायकत्व के तहत स्थापित समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व की प्रणाली को नौकरशाह एकाधिकारी पूंजीवाद के स्वामित्व की एक नयी प्रणाली में पूरी तरह बदला जा चुका है। यह एक गंभीर सबक हैं।

मार्क्सवाद बताता है कि उत्पादन के साधनों के स्वामित्व की प्रणाली की प्रकृति अन्ततः इस बात से निर्धारित होती है कि उन पर किस सामाजिक समूह का स्वामित्व है और वे किस सामाजिक समूह की सेवा करते हैं। इसे कैसे समझा जाए? *पूंजी* में, मार्क्स ने अरस्तू के इस कथन को उद्धृत किया है कि "स्वामी होने का प्रमाण दासों को प्राप्त कर लेना नहीं बल्कि दासों को उत्पादन में लगाना है।" मार्क्स ने आगे कहा, "पूंजीपति पूंजी, जो उसे श्रमशक्ति खरीदने की ताकत देती है, का स्वामी बनकर अपने को सिद्ध नहीं करता। बल्कि वह मजदूरों को, आजकल उजरती मजदूरों को, उत्पादन प्रक्रिया में लगाकर ऐसा करता है।"[13]

***** वर्क प्वाइंट वह मानक था जिसके द्वारा सामूहिक फार्मों या उद्योगों के सदस्यों को उनके श्रम का मूल्य दिया जाता था। इसे अध्याय 21 में विस्तार से समझाया गया है।*

आज जिस प्रकार सोवियत सर्वहारा और मेहनतकशों को "उत्पादन प्रक्रिया में लगाया" जा रहा है, इसकी एक झलक ही सोवियत संशोधनवाद के सारतत्व को उजागर करने के लिए काफी है। ब्रेझनेव और उसके सहयोगियों ने समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व के आवरण में सोवियत जनता के उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण को खुद हथिया लिया है और ये उत्पादन के साधन नौकरशाह- एकाधिकारी बुर्जुआ वर्ग के हितों की सेवा करते हैं। वास्तव में, सोवियत जनता को उत्पादन प्रक्रिया में उजरती मजदूरों की तरह लगाये जाने के लिए बाध्य कर सोवियत संशोधनवादियों ने अपने नौकरशाह को एकाधिकारी बुर्जुआ सिद्ध कर दिया है।

'समाजवादी राज्य-संचालित सार्वजनिक उद्यमों हेतु नियम विधान' में सोवियत संशोधनवादियों ने निर्दिष्ट किया है: "उत्पादन व प्रबंधन पर अधिकार प्रबंधक (प्रशासक या निदेशक) द्वारा लागू किया जाएगा। ऐसा वह कर्तव्य-विभाजन के अनुसार निर्धारित अन्य जिम्मेदार कर्मियों के साथ तालमेल करके करेगा।" उद्यम के प्रबंधक को उद्यम के ढांचे व कर्मियों का निर्धारण करने, कर्मचारियों को भर्ती करने या निकालने, पुरस्कार अथवा दंड देने, मजदूरी की दरें व बोनस तय करने तथा उद्यम के उत्पादन के साधनों को बेचने, किराये पर उठाने या लीज पर देने का अधिकार होता है। उसे विभिन्न "आर्थिक प्रोत्साहन फंडों" को विनियोजित करने का भी अधिकार होता है, जिन्हें सोवियत संशोधनवादी नेतृत्व के नियम-विधान के अनुसार उद्यम द्वारा आवंटित करने के लिए सुरक्षित रखा जाता है।

सोवियत संशोधनवादियों के "मॉडल सामूहिक फार्मों हेतु नियमविधान" के अनुसार सामूहिक फार्म के अध्यक्ष को राज्य के स्वामित्व वाली भूमि को किराये पर या लीज पर देने या हस्तांतरित करने, फार्म की आय को विनियोजित करने या उत्पादन के साधनों, जैसे कृषि मशीनों, को खरीदने या बेचने, और फार्म के सदस्यों के श्रम के भुगतान, बोनस आदि तय करने, बाहरी लोगों को फार्म पर काम करने के लिए भाड़े पर लेने जैसे अधिकार प्राप्त होते हैं। इन "प्रबंधकों" या "फार्म के अध्यक्षों" को हर तरह के अधिकार प्राप्त होते हैं। पर मेहनतकश जनता को क्या अधिकार हासिल हैं? कुछ नहीं। उत्पादन के साधनों पर उनके स्वामित्व के अधिकार को नौकरशाह-एकाधिकारी बुर्जुआ वर्ग ने हड़प लिया है, जिसने सोवियत संघ की मेहनतकश जनता को "उत्पादन प्रक्रिया" में उजरती मजदूर बना दिया है। सोवियत संशोधनवादियों की पत्रिकाओं के अनुसार, सोवियत संघ में राजकीय उद्यमों में खराद मशीन पर काम करने वाले की मासिक "पीसवर्क" मजदूरी मात्र 50 से 60 रूबल होती है। बीच के स्तरों पर मजदूरी 70 से 80 रूबल है। लेकिन प्रबंधक, कारखाना निदेशक और अन्य बुर्जुआ तत्वों को वेतन, बोनस, सब्सिडी और अन्य "कानूनी" तरीकों से होनी वाली आमदनी मजदूर की आमदनी से दस गुना से लेकर सैकड़ों गुना ज्यादा तक होती है। एक साधारण फार्मर की कुल मासिक आय 60 रूबल से कम है। लेकिन फार्म अध्यक्ष की कुल मासिक आय आमतौर पर 300 रूबल है। कुछ जगह वेतन 1000 रूबल से भी ज्यादा है। तीस वर्ष से भी ज्यादा का अनुभव रखने वाले एक बूढ़े सोवियत मजदूर ने कहा, "हमारे यहां बहुत से लखपति हैं। उनका जीवनस्तर ही हमसे अलग नहीं है, बल्कि उनकी भाषा भी अलग है।" सोवियत संशोधनवादी कृषि मंत्रालय के भवन निर्माण ट्रस्ट के एक प्रबंधक ने उन्मत्त होकर दावा किया "ट्रस्ट ही मेरा घर है। मैं यहां मालिक हूं। मैं जो चाहता हूं वहीं करता हूं।" जैसा पेड़ वैसा फल, और जैसा वर्ग वैसी बातें। नौकरशाह-एकाधिकारी बुर्जुआ उत्पादन के मालिक बन गये हैं; पूजीपतियों की तरह वे "जो चाहते हैं, वही करते हैं।" दूसरी ओर, व्यापक मेहनतकश आबादी उत्पादन में उजरती मजदूर बना दी गई है। वह गुलाम बना दी गई है, शोषित है और बुरी तरह कष्ट झेल रही है।

वास्तव में, यह एक स्तब्धकारी तथ्य है कि सोवियत संघ में समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व की प्रणाली का पूरी तरह पतन हो चुका है। यह प्रमाणित करता है कि समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व की प्रणाली स्थापित हो जाने के बाद भी स्वामित्व का प्रश्न पूरी तरह हल नहीं होता है। इतना ही नहीं, स्वामित्व की प्रणाली अपने आप सुदृढ़ और पूर्ण नहीं होती; इसके लिए संघर्ष की एक दीर्घकालिक प्रक्रिया होती है।

स्वामित्व की प्रणाली सिर्फ चीजों का मामला नहीं है, यह एक सामाजिक सम्बन्ध है जो चीजों से बंधा होता है। एक ओर, समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व की प्रणाली स्थापित होने का मतलब है कि मेहनतकश जनसमुदाय ने निजी स्वामित्व की जंजीर तोड़ दी है और वह समाज के उत्पादन के साधनों का स्वामी बनना शुरू कर चुका है। सर्वहारा व मेहनतकश जनता तथा सभी शोषक वर्गों के बीच का संबंध अब उलटा जा चुका है; यह एक ऐसा सम्बन्ध बन चुका है जिसमें पहले के शोषित लोग शोषक वर्गों के सदस्यों पर शासन कर रहे हैं और उन्हें नये सांचे में ढाल रहे हैं। दूसरी ओर, इसे भी स्वीकार किया जाना चाहिए कि स्वामित्व की प्रणाली में बुर्जुआ अधिकार का पूरी तरह उन्मूलन नहीं हुआ है। इतना ही नहीं, हमें यह भी देखना चाहिए कि समस्त जनता का स्वामित्व और सामूहिक स्वामित्व, दोनों में ही नेतृत्व का प्रश्न शामिल है, यह प्रश्न कि स्वामित्व सिर्फ नाम के लिए नहीं, वास्तव में किस वर्ग के हाथ में है। इस तरह के सामाजिक सम्बन्धों में, सर्वहारा वर्ग और मेहनतकश जनता विनियोजन के फलों को सुदृढ़ करना चाहते हैं। शोषक वर्गों के सदस्यों पर अपने शासन को मजबूत करना और उन्हें नये सांचे में ढालना चाहते हैं और समाजवादी स्वामित्व प्रणाली में अब भी बचे रह गये बुर्जुआ अधिकारों को सीमित करने तथा पुराने समाज की परम्पराओं व जन चिन्हों को क्रमशः समाप्त करने की प्रक्रिया के द्वारा समाजवादी स्वामित्व प्रणाली को लगातार सुदृढ़ और पूर्ण बनाते जाना चाहते हैं। जहां तक सामाजिक सम्बन्ध की बात है, बुर्जुआ तथा सभी शोषक वर्ग उन पर शासन किये जाने तथा उन्हें नये सांचे में ढालने के प्रयासों का प्रतिरोध करते हैं। वे समाजवादी स्वामित्व प्रणाली में बची रही पुराने समाज की परम्पराओं व जन चिन्हों का इस्तेमाल करने तथा उन्हें विस्तारित करने की कोशिश करते हैं और वे अब तक पूरी तरह समाप्त नहीं हुए, बुर्जुआ अधिकारों को बढ़ाने तथा पहले ही समाप्त किये जा चुके बुर्जुआ अधिकारों को पुनर्स्थापित करने का प्रयास करेंगे। इस तरह से, वे समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व की प्रणाली का लगातार क्षरण करने और तोड़फोड़ के प्रयास में लगे रहेंगे जिससे अन्ततः यह पूंजीवादी निजी स्वामित्व की प्रणाली में रूपान्तरित हो जाए।

स्वामित्व के प्रश्न के इर्द-गिर्द सर्वहारा और बुर्जुआ वर्ग के बीच अन्तरविरोध एवं संघर्ष बहुमुखी होते हैं। लेकिन मुख्यतः वे सार्वजनिक स्वामित्व पर आधारित अर्थव्यवस्था के ऊपर नेतृत्व के लिए संघर्ष में अभिव्यक्त होते हैं। जो भी नेतृत्व हथिया लेता है, वह स्वामित्व संबंधों का वस्तुतः स्वामी बन जाता है। एक बार यदि नेतृत्व बुर्जुआ वर्ग या इसके एजेंटों के हाथों में चला गया तो न केवल समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व प्रणाली का सुदृढ़ीकरण व सुधार नहीं हो सकेगा, बल्कि निश्चित रूप से इसका पतन हो जाएगा। सोवियत संघ में पूंजीवादी राह अपना लेने वाले मुट्ठी भर लोगों ने समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व प्रणाली पर आधारित अर्थव्यवस्था का नेतृत्व हथिया लिया है, यही वह वजह है जिसके चलते यह प्रणाली नौकरशाह-एकाधिकारी पूंजीवाद के स्वामित्व की प्रणाली में रूपान्तरित हो गई है। परिणामस्वरूप, सोवियत संघ में सर्वहारा वर्ग और मेहनतकश जनसमुदाय समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व की प्रणाली के स्वामियों से नौकरशाह-एकाधिकारी बुर्जुआ वर्ग की स्वामित्व प्रणाली के गुलामों में तब्दील कर दिये गये हैं। ख्रुश्चेव-ब्रेझनेव गद्दार गुट द्वारा सोवियत संघ की पार्टी और राज्य की सर्वोच्च शक्ति हथिया लेने के बाद से वहां पूरी तरह पूंजीवाद की पुनर्स्थापना हो गई है।

समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व के सुदृढ़ीकरण और विकास के लिए संघर्ष करो

समाजवादी सार्वजनिक स्वमित्व की स्थापना के बाद भी स्वामित्व का सवाल पूरी तरह हल नहीं होता। अब भी दो संभावनाएं मौजूद होती हैं:

कम्युनिज्म की ओर बढ़ाव या वापस पूंजीवाद की ओर लौट जाना। सर्वहारा वर्ग और व्यापक मेहनतकश आबादी के सामने समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व की प्रणाली के सुदृढ़ीकरण व विकास के लिए निरन्तर संघर्ष करते रहने का ऐतिहासिक कार्यभार उपस्थित होता है।

समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व की प्रणाली के सुदृढ़ीकरण व विकास के लिए सबसे पहले यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि समाजवादी अर्थव्यवस्था का नेतृत्व सच्चे मार्क्सवादियों के हाथों में और व्यापक मेहनतकश जनता के हाथों में रहे। दूसरे प्रश्नों की तरह ही, स्वामित्व के प्रश्न का विश्लेषण करते समय भी सिर्फ इसके रूप का नहीं बल्कि अन्तर्वस्तु का भी परीक्षण करना आवश्यक है। यह देखना जरूरी है कि: किसी उद्यम के उत्पादन के साधन वास्तव में किसके हैं? उन्हें वास्तव में कौन नियंत्रित करता है? उत्पादन के ये साधन वास्तव में किसके हितों की सेवा करते हैं? यह इस प्रश्न में संकेन्द्रित रूप में अभिव्यक्त होता है कि उद्यम में किस वर्ग के हाथों में नेतृत्व (की शक्ति) है।

समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व की प्रणाली यह प्रदर्शित करती है कि सर्वहारा वर्ग और मेहनतकश जनता उत्पादन के साधनों के स्वामी है। लेकिन यह कैसे तय किया जाए कि सर्वहारा वर्ग और मेहनतकश जनता वास्तव में उत्पादन के साधनों के स्वामी हैं? यह उत्पादन प्रक्रिया में उनकी भूमिका पर निर्भर करता है। समाजवादी समाज में मेहनतकश लोग उत्पादन प्रक्रिया में इसके स्वामी के रूप में शामिल होते हैं। वे सचेत श्रम के द्वारा समाज के लिए सम्पदा पैदा करते हैं। फिर इस उत्पादन प्रक्रिया को संगठित कौन करता है? अन्ततः यह तो खुद मेहनतकशों को ही करना चाहिए। जाहिरा तौर पर, इसका यह मतलब नहीं होता कि सभी मेहनतकश सीधे उत्पादन को संगठित और प्रबंधित करते हैं। व्यापक मेहनतकश आबादी राज्य और सामूहिकों के जरिए अपने प्रतिनिधि नियुक्त करती है, या उत्पादन को संगठित करने के लिए अपने प्रतिनिधि चुनती है। पर यहां एक समस्या उठ खड़ी होती है: यदि मेहनतकशों की व्यापक आबादी अपने प्रतिनिधियों को उत्पादन संगठित करने की शक्ति सौंपती है, तो क्या ये प्रतिनिधि उत्पादन संगठित करने में सर्वहारा वर्ग और मेहनतकश जनता के हितों का प्रतिनिधित्व कर सकेंगे? मेहनतकश द्वारा उत्पादन संगठित करने की अपनी शक्ति किसी प्रतिनिधि को सौंप देने के बाद क्या खुद व्यक्तिगत मेहनतकश के पास कोई शक्ति बची रह जाती है? यह प्रश्न भी, इस वृहत्तर प्रश्न से जुड़ा हुआ है कि कौन सा वर्ग वास्तव में उत्पादन के साधनों को नियंत्रित करता है, इस प्रश्न से जुड़ा हुआ है कि उत्पादन के साधनों के सार्वजनिक स्वामित्व की प्रणाली आगे बढ़ रही है या पीछे हट रही है। आज के सोवियत संघ में उत्पादन का नेतृत्व और संगठन करने वाले लोग सर्वहारा वर्ग और मेहनतकश जनता के हितों का प्रतिनिधित्व नहीं करते। बल्कि वे नौकरशाह–एकाधिकारी बुर्जुआ वर्ग के हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं। राजकीय एकाधिकारी पूंजीवाद सोवियत समाज का आर्थिक आधार बन गया है। यह एक बड़ा ऐतिहासिक पश्चगमन है।

चीन में भी सर्वहारा अधिनायकत्व के तहत, समाजवादी उद्यम के नेतृत्व के लिए दो वर्गों के बीच संघर्ष बहुत तीखा है। अध्यक्ष माओ ने पार्टी की नवीं केन्द्रीय कमेटी के प्रथम प्लेनरी अधिवेशन में कहा था, "यह स्पष्ट है कि, महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के बगैर हम चल नहीं सकते थे, क्योंकि हमारा आधार सुदृढ़ नहीं था। मेरी जानकारी के मुताबिक, कारखानों की अच्छी-खासी बहुसंख्या में—मैं यह नहीं कहता कि सभी में या भारी बहुसंख्या में—नेतृत्व सच्चे मार्क्सवादियों और आम मजदूरों के हाथों में नहीं था। ऐसा नहीं है कि कारखानों के नेतृत्व में अच्छे लोग नहीं थे, जरूर थे। सचिवों, शाखा उपसचिवों और पार्टी सदस्यों के बीच तथा पार्टी के शाखा सचिवों के बीच अच्छे लोग मौजूद थे। लेकिन वे ल्यू शाओ-ची की लाइन का अनुसरण करते हुए सिर्फ भौतिक प्रोत्साहन देने, मुनाफे को कमान में रखने, सर्वहारा राजनीति को आगे बढ़ाने के बजाय बोनस थमाने जैसे कामों में लगे हुए थे।" "लेकिन कारखानों में निश्चित रूप से बुरे लोग भी हैं।" "यह बताता है कि क्रान्ति अभी अधूरी है।[14]" जब समाजवादी अर्थव्यवस्था का नेतृत्व सच्चे मार्क्सवादियों के हाथों में होता है तो वे उत्पादन के साधनों के स्वामित्व और नियंत्रण में, और स्वामित्व के दायरे में अब तक बच रहे बुर्जुआ अधिकारों को प्रतिबंधित करने में मजदूरों, गरीब एवं निम्न मध्यवर्गीय किसानों और समस्त मेहनतकश जनसमुदाय के हितों का प्रतिनिधित्व कर सकते हैं। अगर सत्ता में बैठे पूंजीवादी राह अपनाने वाले लोग समाजवादी अर्थव्यवस्था का नेतृत्व हथिया लेते हैं तो पार्टी व राज्य द्वारा उन्हें सौंपी गई जनता की सेवा करने की जिम्मेदारी को वे अपने निजी हितों व लाभ को पूरा करने वाले विशेषाधिकारों में बदल देते हैं। वे स्वामित्व की प्रणाली में से खत्म किये जा चुके बुर्जुआ अधिकारों को पुनर्स्थापित करने और समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व प्रणाली को क्षरित करने के लिए समाजवादी अर्थव्यवस्था में अब भी मौजूद पुराने समाज की परम्पराओं व जन्मचिन्हों का इस्तेमाल करेंगे। "इतिहास के सबकों पर ध्यान देना जरूरी है।" दसवीं पार्टी कांग्रेस ने समृद्ध अनुभव और सबकों का समाहार करते हुए स्पष्टतः कहा था, "हमें प्राथमिक संगठनों में नेतृत्व को मजबूत बनाकर यह सुनिश्चित करना होगा कि वहां पर नेतृत्व वास्तव में मार्क्सवादियों और मजदूरों, गरीब एवं निम्नमध्यवर्गीय किसानों एवं अन्य मेहनतकश लोगों के हाथों में रहे, तथा सर्वहारा अधिनायकत्व को सुदृढ़ बनाने का कार्यभार हरेक प्राथमिक संगठन में पूरा हो।"[15] समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व की प्रणाली के सुदृढ़ीकरण व विकास में यह निर्णायक महत्व की बात है।

राजकीय अर्थव्यवस्था और सामूहिक अर्थव्यवस्था में उद्यम का नेतृत्व सच्चे मार्क्सवादियों के हाथों में रहे, यह सुनिश्चित करने के लिए सर्वहारा वर्ग और मेहनतकश जनसमुदाय को नेतृत्व हथिया लेने वाले गद्दारों, खुफिया एजेंटों और पूंजीवादी राहियों के विरुद्ध दृढ़तापूर्वक संघर्ष छेड़ना चाहिए और नेतृत्व वापस अपने हाथों में छीन लेना चाहिए। इस तरह के संघर्ष का समाधान एक ही महान सांस्कृतिक क्रान्ति द्वारा नहीं हो सकता। पुनर्स्थापना के अपने प्रयासों में बुर्जुआ वर्ग राजकीय और सामूहिक अर्थव्यवस्था का नेतृत्व हथिया लेने के लिए कोई कसर नहीं छोड़ेगा। इसी के साथ राजकीय और सामूहिक अर्थव्यवस्था के नेतृत्व को नियंत्रित करने वाले सर्वहारा वर्ग और मेहनतकश जनसमुदाय के प्रतिनिधियों (विभिन्न स्तरों पर कार्यकर्ताओं) को अपने विश्व दृष्टिकोण में बदलाव लाना होगा और मार्क्सवादी बनने के लिए कड़ा प्रयास करना होगा, ताकि वे सर्वहारा वर्ग और मेहनतकश जनसमुदाय के हितों का सच्चे अर्थों में प्रतिनिधत्व कर सकें। यदि वे इस दिशा में कड़ी मेहनत नहीं करेंगे तो यह संभव है कि उत्पादन को संगठित करने की प्रक्रिया में, बुर्जुआ विश्व दृष्टिकोण के प्रभाव में, वे सर्वहारा वर्ग और मेहनतकश जनता के हितों के विपरीत चले जाएं। कुछ लोग समाजवादी अर्थव्यवस्था के संचालन और प्रबंधन में भौतिक प्रोत्साहनों, मुनाफे और प्रतिबंधात्मक उपायों पर जोर देते हैं। दूसरे शब्दों में, वे मेहनतकश जनसमुदाय को समाजवादी उद्यम के स्वामी के रूप में नहीं देखते। यह अपरिहार्यतः समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व की प्रणाली को बाधित और कमजोर करेगा। यदि यह प्रवृत्ति बेरोकटोक जारी रही तो समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व की प्रणाली का पतन हो जाएगा। महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति में व्यापक जनसमुदाय और कार्यकर्ताओं ने इस प्रवृत्ति की भर्त्सना और खंडन किया। लेकिन किन्हीं परिस्थितियों में वे चीजें फिर सिर उठा सकती हैं जिनकी एक बार भर्त्सना और खंडन किया जा चुका हो। 1974 की शुरुआत में, शंघाई बंदरगाह के नं. 5 लोडिंग एंड अनलोडिंग डिस्ट्रिक्ट के कुछ मजदूरों ने एक बड़े चित्राक्षरों वाला (बिग कैरेक्टर) पोस्टर लगाया जिसका शीर्षक था: "गोदी के मालिक बनो, 'टनेज' (उत्पादकता) के गुलाम नहीं।" इसमें बताया गया था, "नेतृत्व मजदूरों को गोदी के मालिक के रूप में नहीं देखता। इसके विपरीत उनसे 'टनेज' के गुलामों की तरह बर्ताव किया जाता है। यह किसी

उद्यम के संचालन की संशोधनवादी लाइन को परिलक्षित करता है।" ये शब्द समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व को सुदृढ़ और विकसित करने के पूरे अर्थगाम्भीर्य को सटीक रूप में इंगित करते हैं। और इनका सार्वभौमिक व्यावहारिक महत्व हैं।

राजकीय अर्थव्यवस्था और सामूहिक अर्थव्यवस्था का नेतृत्व वास्तविक अर्थों में सच्चे मार्क्सवादियों के हाथों में रहे, इसके लिए जरूरी है कि वह वास्तविक अर्थों में मजदूरों, गरीब व निम्नमध्यम किसानों तथा अन्य मेहनतकश लोगों के हाथों में हो। ये दोनों पहलू अविभाज्य हैं। मेहनतकश जनसमुदाय के समाजवादी अर्थव्यवस्था का स्वामी होने का यह अर्थ नहीं है कि नेतृत्व कुछ प्रतिनिधियों को सौंपे जाने के बाद उन्हें हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं रह गया है। सोवियत संशोधनवादियों द्वारा चलाई गई "एक व्यक्ति द्वारा प्रबंधन" की प्रणाली इसी दृष्टिकोण का संस्थाबद्ध रूप है। तथ्य बताते हैं कि यह बुर्जुआ वर्ग और एजेंटों द्वारा नेतृत्व हथियाने के लिए फैलाई गई क्लोरोफार्म के सिवा कुछ भी नहीं है। एंगेल्स ने एक जगह कहा है, "व्यक्तियों द्वारा उद्योगों का संचालन अपरिहार्यत: निजी स्वामित्व की ओर ले जाता है।"[16] यदि समाजवादी स्वामित्व के तहत उद्यम का नेतृत्व मजदूरों, गरीब एवं निम्न मध्यम किसानों तथा अन्य मेहनतकशों के हाथों में नहीं होगा, तो "एक व्यक्ति द्वारा प्रबंधन" की संशोधन प्रणाली जड़ जमा लेगी। इस प्रणाली के तहत मेहनतकश जनसमुदाय प्रभावी तौर पर उत्पादन के साधनों से पृथक हो जाते हैं। वे बस उद्यम के "प्रमुख" से आदेश ग्रहण करते हैं। उद्यम पर नेतृत्व के अभाव में अब वे उद्यम के स्वामी नहीं रह जाते। यदि यह चीज और आगे बढ़े, तो वे उद्यम के "प्रमुख" द्वारा उत्पादन प्रक्रिया में महज श्रमशक्ति के रूप में देखे जाएंगे। मेहनतकश जनसमुदाय को अब यह प्रश्न करने का अधिकार नहीं रहेगा कि कोई उत्पादन प्रक्रिया सर्वहारा वर्ग और मेहनतकश जनसमुदाय के हितों की पूर्ति करती है या नहीं। इस तरह से, समाजवादी उद्यम धीरे-धीरे पूंजीवाद के कीचड़कुंड में सरक जाएगा। लेकिन उद्यम का नेतृत्व वास्तविक अर्थ में सच्चे मार्क्सवादियों और मजदूरों, गरीब एवं निम्नमध्यम किसानों तथा अन्य मेहनतकशों के हाथों में होगा तो उद्यम के स्वामी के रूप में मेहनतकश जनसमुदाय की स्थिति की पक्की गारंटी रहेगी। स्वामियों के रूप में, वे सामाजिक सक्रियता को निर्बन्ध करेंगे। यदि कुछ बुरे लोगों ने उद्यम का नेतृत्व हथिया लिया है, तो पार्टी के नेतृत्व में मेहनतकश जनसमुदाय उसे वापस ले लेंगे। चीन की समाजवादी क्रान्ति के व्यवहार ने इसे एकाधिक बार साबित किया है, खासकर महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के बाद से। यह फिर साबित होगा।

समाजवादी अर्थव्यवस्था के नेतृत्व को कौन नियंत्रित करता है, इसे जांचने का सार इस बात में निहित है कि उत्पादन संचालन या आर्थिक प्रबंधन में लगे उद्यम के विभाग कौन सी लाइन लागू कर रहे हैं। संशोधनवादी लाइन हमेशा ही सर्वहारा वर्ग और मेहनतकश जनसमुदाय के हितों के विपरीत जाती है। यह भौतिक प्रोत्साहनों, मुनाफे और प्रतिबंधात्मक उपायों को बढ़ावा देती है। दूसरी ओर, समाजवादी सिद्धांतों का अनुसरण करते हुए, मार्क्सवादी लाइन हमेशा इस बात पर जोर देती है कि उत्पादन की कमान क्रान्ति के हाथों में हो और संचालन के प्रबंधन को जनसमुदाय पर भरोसा करके मजबूत किया जाए। इसलिए, मार्क्सवादी लाइन पर दृढ़ता से जमे रहना और संशोधनवादी लाइन की भर्त्सना और खंडन करना ही समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व की प्रणाली को सुदृढ़ और विकसित करने की अंतिम गारंटी है। समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व की प्रणाली को सुदृढ़ और विकसित करने के लिए यह आवश्यक है कि सर्वहारा अधिनायकत्व के तहत बुर्जुआ अधिकार को प्रतिबंधित किया जाए। समाजवादी समाज में, स्वामित्व के दायरे में बुर्जुआ अधिकार का पूरी तरह खात्मा नहीं होता। समाजवादी समाज में इन बुर्जुआ अधिकारों के मामले में एक को दो में बांटना आवश्यक है। एक ओर समाज के रूपान्तरण में उनकी ऐतिहासिक भूमिका को स्वीकारते हुए उन्हें बने रहने देना आवश्यक होता है, वहीं दूसरी ओर, उन्हें प्रतिबंधित करने और उनके विकास या विस्तार को रोकने की भी आवश्यकता होती है। यदि सर्वहारा अधिनायकत्व के तहत इन बुर्जुआ अधिकारों को प्रतिबंधित नहीं किया गया, उल्टे उनका विस्तार होता है, तो अन्तत: वे उद्यम के स्वामित्व की प्रणाली की प्रकृति के बदल जाने के हालात पैदा कर देंगे और समाजवादी उद्यम पतित होकर पूंजीवादी उद्यम में बदल जाएगा।

समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व को सुदृढ़ और विकसित करने के लिए पार्टी की विभिन्न नीतियों को लागू करना भी जरूरी है। उदाहरण के लिए, यह जरूरी है कि केन्द्र और स्थानीय क्षेत्र के सम्बन्धों को सही ढंग से चलाया जाए ताकि समस्त जनता के समाजवादी स्वामित्व की प्रणाली के तहत अर्थव्यवस्था में दो तरह की पहलकदमी बनी रहे। यह जरूरी है कि राज्य और उद्यम के संबंधों को सही ढंग से चलाया जाए ताकि राज्य के एकीकृत नेतृत्व में संचालन और प्रबंधन में उद्यम पूरी पहलकदमी ले सकें। साथ ही, ग्रामीण जन कम्यून की सामूहिक अर्थव्यवस्था में, स्वामित्व की बुनियादी प्रणाली (वर्तमान में प्राथमिक स्तर पर उत्पादन टीम वाले त्रिस्तरीय स्वामित्व) को सही ढंग से लागू करना आवश्यक है ताकि कम्यून, बिग्रेड और उत्पादन टीम की त्रिस्तरीय अर्थव्यवस्था की सामाजिक सक्रियता को गतिशील किया जा सकें। टीमों के बीच, बिग्रेडों के बीच और कम्यूनों के बीच अन्तर की मौजूदगी को स्वीकारने के साथ ही, हमें अनुकूल परिस्थितियां निर्मित करने की कोशिश करनी चाहिए, यानी ऐसे अन्तरों को कम किया जाना चाहिए ताकि सबके लिए समृद्धि के समाजवादी मार्ग पर आगे बढ़ा जा सके।

समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व की प्रणाली को सुदृढ़ और विकसित करने के लिए समाजवादी शिक्षा को मजबूत किया जाना जरूरी है। समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व निजी स्वामित्व के खात्मे की बुनियाद पर निर्मित होता है। लेकिन "पुरानी व्यवस्था को प्रतिबिम्बित करने वाले पुराने विचारों के अवशेष लम्बे समय तक लोगों के दिमागों में बने रहते हैं, और वे आसानी से पीछा नहीं छोड़ते।"[17] निजी स्वामित्व की पुरानी प्रणाली पर आधारित पुरानी विचारधारा के ये अवशेष, जिसमें बुर्जुआ अfekकार की विचारधारा भी शामिल है, कई क्षेत्रों में प्रकट होते हैं और समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व की प्रणाली से टकराते रहते हैं। विचारधारात्मक और राजनीतिक लाइन की शिक्षा को मजबूत बनाकर, कार्यकर्ताओं और व्यापक जनता की राजनीतिक चेतना को लगातार उन्नत करके तथा सर्वहारा विश्व दृष्टिकोण को दृढ़तापूर्वक स्थापित करके ही समाजवादी स्वामित्व की प्रणाली के सुदृढ़ीकरण एवं विकास को प्रभावी तौर पर आगे बढ़ाया जा सकता है।

समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व की प्रणाली को सुदृढ़ एवं विकसित करने के लिए सामाजिक उत्पादक शक्तियों को ओजस्वी ढंग से विकसित करना आवश्यक है। समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व की प्रणाली सामाजिक उत्पादक शक्तियों के विकास के लिए अनुकूल स्थितियां निर्मित करती है, जबकि सामाजिक उत्पादक शक्तियों का और विकास समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व की प्रणाली के और सुदृढ़ीकरण एवं विकास के लिए आधार मुहैया करता है। समाजवादी औद्योगीकरण को तेज करना समाजवादी राजकीय अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाएगा। कृषि का यंत्रीकरण और कृषि में उत्पादक शक्तियों का निरन्तर विकास सामूहिक अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाएगा और इस तरह सामूहिक स्वामित्व के और अधिक सुदृढ़ीकरण एवं विकास को प्रोत्साहित करेगा। इसलिए, "क्रान्ति पर पकड़ रखो, उत्पादन को बढ़ाओ" की नीति को लागू करके और समाजवादी अर्थव्यवस्था को विकसित करते हुए ज्यादा बड़े, ज्यादा तेज, ज्यादा बेहतर, और ज्यादा किफायती नतीजे हासिल करना समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व की प्रणाली के सुदृढ़ीकरण और विकास के लिए महत्वपूर्ण शर्तें हैं।

समाजवादी सार्वजनिक प्रणाली को सुदृढ़ और विकसित करने की प्रक्रिया दो वर्गों, दो राहों, और दो लाइनों के बीच संघर्ष की दीर्घकालिक

(शेष पृष्ठ 72 पर)

टिप्पणियां

पिछले वर्ष जब संयुक्त मोर्चा सरकार के वित्तमंत्री पी. चिदम्बरम ने अपना तथाकथित ''ड्रीम बजट'' पेश किया था तो पूरा पूंजीवादी जगत खुशी से किलकारी भरने लगा था। अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्वबैंक जैसी साम्राज्यवादी लूट-एजेंसियों से लेकर सी.आई.आई., फिक्की और एसोचैम जैसी देशी पूंजीपतियों की संस्थाओं ने तारीफों के पुल बांध दिये थे। पूंजीवादी मीडिया भारतीय अर्थव्यवस्था के ''सुनहरे'' भविष्य के सपने परोसने में लग गया था। लेकिन चन्द ही महीनों में इस गुब्बारे की हवा निकल चुकी है और बुरी तरह संकटग्रस्त भारतीय अर्थव्यवस्था की असलियत छुपाये नहीं छुप रही है।

कुछ ही महीनों में कोई नई सरकार नये-नये दावों और शोर-शराबे के साथ नया बजट पेश करेगी। पर यह निश्चित है कि इस नये बजट की दिशा और बजट के परिणामों की दशा भी वही होगी जो पिछले ''ड्रीम बजट'' की रही, क्योंकि बुनियादी आर्थिक नीतियों के सवाल पर सारी पार्टियां एक हैं।

इस दृष्टि से भारतीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न पहलुओं की जांच-पड़ताल करती तथा समग्रता में पूंजीवादी व्यवस्था के सांघातिक संकट की बखिया उधेड़ती ये टिप्पणियां पाठकों के लिए उपयोगी और विचारोत्तेजक सिद्ध होंगी, ऐसी हमें आशा है। — *सम्पादक*

भारतीय अर्थव्यवस्था : चिदम्बरी बजट की पोल खोलती, ढलान पर फिसलती हुई

पिछली मार्च में जब **वित्तमंत्री पी. चिदम्बरम्** ने 1997-98 वर्ष के लिए अपना तथाकथित "लोक-निर्दिष्ट" और "अर्थव्यवस्था के संरचनात्मक पिछड़ेपन को दूर करने वाला" बजट पेश किया और अर्थव्यवस्था एवं औद्योगिक उत्पादन में क्रमश: 7 प्रतिशत और 10 प्रतिशत वृद्धि-दर का लक्ष्य पा लेने का दावा किया था, तो **कोष-बैंक** के अधिकारियों ने उन्हें खूब शाबाशी दी, तथा भारतीय पूंजीपतियों के संगठन सी.आई.आई., एस्सोचैम और फिक्की ने भी उनकी खूब तारीफ की।

परन्तु, तब से पांच महीने भी नहीं गुजरे कि 'शाबाशी' और 'तारीफ' *'ओह-ओह'* और *'हाय-हाय'* में तब्दील हो गए। जैसा कि नीचे सारणी से स्पष्ट है, अर्थव्यवस्था के अधिकांश संकेतकों की सुइयां पूर्वानुमान के प्रतिकूल ही फिसलने लगीं, और क्रेता-विक्रेता, बैंकर और बाजार में मध्यस्थों की भूमिका अदा करने वाले आर्थिक एजेंट मांग की घनीभूत होती जा रही मंदी से बिलबिलाने लगे। आज भी स्थिति यही है कि कीमतें तो गिर रही हैं, फिर भी माल गोदामों में जाम पड़े हुए हैं; सूद-दरें गिर चुकी हैं, फिर भी क्रेडिट की गति बहुत सुस्त है।

इन आर्थिक प्रवृत्ति को देखते हुए दिल्ली स्थित *'थिंक-टैंक'*, **नेशनल काउंसिल ऑफ अप्लाइड इकनॉमिक रिसर्च** *(एन सी ए ई आर)* ने बजट 1997-98 में पूर्वानुमानित 7 प्रतिशत *जी डी पी* वृद्धि दर को घटाकर 6.5 प्रतिशत कर दिया है—यानी विकास की संभावनाओं में 15.3 प्रतिशत की गिरावट! ऐसा करने का प्रमुख कारण निजी निवेश-दर की कछुआ-चाल ही है, जो पिछली मई में जहां 33 प्रतिशत थी, अब घटकर मात्र 18 प्रतिशत रह गयी है, और इससे भी नीचे चली जाने की रुझान दर्शा रही है। इसीलिए *एन सी ए ई आर* के प्रमुख अर्थशास्त्री **शशांक भिडे** को कहना पड़ा कि "निजी निवेश पिछले वर्ष से अधिक रफ्तार नहीं पकड़ सकता, अत: इस बात की संभावना नहीं है कि *जी डी पी* में पूर्वानुमानित 7.5 प्रतिशत की वृद्धि-दर हासिल हो सके।"

जी डी पी में 7.5 प्रतिशत की पूर्वानुमानित दर हासिल करने के लिए वित्तमंत्री ने बजट में एकमात्र जो उपाय किया था, वह था टैक्सों में कुल 3,000 करोड़ रु. की रियायत। वित्तमंत्री की यह समझ थी कि टैक्सों में रियायतें मिलने से करदाता अपनी बचतों को खूब खर्च करेंगे, जिससे मांग बढ़ेगी और इस प्रकार, उत्पादन को प्रोत्साहन मिलेगा। परन्तु ऐसा कुछ नहीं हुआ और अर्थव्यवस्था में मांग और उत्पादन को कोई *किक* नहीं लग सका। आखिर ऐसा क्यों नहीं हो सका?

इसकी जड़ें फिर उन्हीं "आर्थिक सुधार" की नीतियों में तलाशी जा सकती हैं। इन्हीं के चलते खाद्यान्न-उत्पादन पर से जोर हटने लगा था, जिसकी परिणति खाद्यान्न-उत्पादन में गिरावट के रूप में परिलक्षित होने लगी थी। 1995-96 के वर्ष में तो स्थिति ऋणात्मक तक हो गयी, जैसा कि उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है। नतीजतन, ग्रामीण परिवार, जो कुल खाद्यान्न-उत्पादन के करीब आधे के उपभोक्ता हैं, गिरती माली हालत के चलते, खाद्यान्न के अलावा अन्य खरीदारियों से विरत ही होते गये, कारण कि यह तो सर्वविदित बात हैं कि घर-खर्च में खाद्यान्न-उपभोग का स्थान प्रथम है, और जब खाद्यान्न की उपज घटने के कारण उनकी कीमतें बढ़ती हैं, तो बाकी उपभोग-सामग्रियों की खरीदारियां कमतर होती जाती हैं। शहरी परिवारों में भी यही बात हुई। खाद्यान्न की बढ़ती कीमतों ने उनकी जेबों को कुतर डाला, और फलत:, वे भी दूसरी खरीदारियां कर पाने में कमजोर पड़ते गए। इन सबका असर यह हुआ कि तमाम जिन्सों की मांगों में मंदी का आलम छा गया।

परन्तु चिदम्बरम ने इस मंदी को *ऊँट के मुंह में जीरा* डालकर, महज टैक्स-रियायतों से, तोड़ना चाहा। नतीजा लगभग शून्य ही रहा। उधर, मुद्रास्फीति को काबू में बनाये रखने के अति उत्साह में मुद्रा-वृद्धि की 22 प्रतिशत दर को घटाकर 13 प्रतिशत पर ला दिया गया। फलत: सूद की दरें शून्य से आसमान पर चली गयी। ब्लू चिप कंपनियों तक को भी 23 प्रतिशत या उससे अधिक, या यहां तक कि 30 प्रतिशत तक की सूद-दरों पर ऋण लेने को मजबूर होना पड़ा। मतलब, ऋण की मांग में भी मंदी आ गयी।

मांग की मंदी और ऊंची सूद-दरों के चलते ऋण की मांग में आयी गिरावट के फलस्वरूप तैयार माल गोदामों में जाम होने लगे, असेम्बली लाइनें ठप्प पड़ने लगीं, और रोजगारों एवं मजदूरियों में कटौती की नौबत आ गयी। इन सबका नतीजा यह हुआ कि औद्योगिक विकास-दर, जो 1994-95 में 11.8 प्रतिशत थी, घटकर 1995-96 में मात्र 6.7 प्रतिशत रह गयी, और **सेंटर फॉर मॉनिटरिंग द इण्डियल इकॉनमी** *(सी एम आई ई)* के अनुसार 1997-98 के पहले पांच महीनों में तो यह दर घटते-घटते महज 4.5 प्रतिशत ही रह गयी। एक साल के भीतर ही उपभोक्ता मालों की वृद्धि-दर 8.9 प्रतिशत से घटकर मात्र 0.1 प्रतिशत रह गई है। चमड़ा-उत्पादों, पेट्रोलियम-उत्पादों, कोयला और

सारणी: भारतीय अर्थव्यवस्था के प्रमुख संकेतकों की रुझान (प्रतिशत में)

संकेतक	1995-1996	1996-97	बजट अनुमान	संशोधित बजट-अनुमान
जी.डी.पी.	7.10	6.35	7.5	6.50
कृषि	-0.10	4.08	3.41	3.41
उद्योग	11.80	9.29	9.65	8.00
सेवाएं	8.85	7.00	8.78	8.00
निजी निवेश	28.30	18.38	33.22	18.00
निर्यात	28.80	13.58	20.50	12.00
आयात	35.20	13.65	28.43	18.00

स्रोत: एन. सी. ए. ई. आर., दिल्ली

रसायनों में गिरावट की यह प्रवृत्ति अभी भी जारी है। सिर्फ कुछ बुनियादी और पूंजीगत मालों में ही थोड़ी-बहुत *रिकवरी* नजर आ रही है और वह भी तमाम प्रकार से सरकारी रियायतों और सहूलियतों की *कोरामिन* पाकर ही।

संक्षेपत: यही नजारा है वर्तमान में भारतीय अर्थव्यवस्था का, जो कभी *मनमोहनी* बजटों की घुट्टी पीती थी, अब दो वित्तीय वर्षों से *चिदम्बरी* बजटों की घुट्टी पी रही है—लेकिन इसकी सेहत दिन-ब-दिन खराब ही होती जा रही है। फिर भी, सरकार "उदारीकरण" और "संरचनात्मक समायोजन" की नीतियों को उनकी "तार्किक परिणति" तक ले जाने के लिए "कटिबद्ध" है—जैसा कि इन्दर कुमार गुजराल ने, प्रधानमंत्री पद की शपथ लेने के बाद, *सी आई आई* के वार्षिक सम्मेलन में अपना पहला औपचारिक भाषण देते हुए कहा था।

इस "कटिबद्धता" के चलते सरकार अब एक ही काम करने वाली है—और दरहकीकत करने वाली है: अर्थव्यवस्था को *'शॉक थिरेपी'* देना। इसी के अन्तरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त एक्सपर्ट, और **कोष-बैंक** के *'थिंक टैंक , हार्वर्ड अन्तरराष्ट्रीय विकास संस्थान,* के निदेशक, **प्रो. जेफ्री साक्स**, भारत सरकार के एक गुप्त समझौते के तहत करोड़ों डॉलर "परामर्श शुल्क" लेने की शर्त पर , भारत सरकार के नये आर्थिक सलाहकार बनकर आ गए हैं। स्मरण रहे कि यह वही **साक्स** हैं जो सन् '70 के दशक में लातिन अमेरिकी देशों की अर्थव्यवस्थाओं तथा सन् '80 के दशक के अन्त में रूस की अर्थव्यवस्था में 'शॉक थिरेपी' देकर उनका बेड़ा गर्क कर चुके हैं। भारत में भी वह यही करेंगे। अभी हाल ही में दिल्ली में आयोजित एक सेमिनार में बोलते हुए उन्होंने अपना एक सूत्र-वाक्य कहा है: "गरीब से शुरुआत करना अच्छी खबर है।" आखिर क्यों नहीं, गरीब का भट्ठा बैठा देंगे तब भी कोई बुरी खबर नहीं बनेगी, क्योंकि उन्हें तो करार खत्म होते ही अपना करोड़ों डॉलर का "परामर्श शुल्क" लेकर अमेरिका लौट ही जाना है।

● अरुण किशोर नवल

सब्सिडी पर "श्वेतपत्र" मिथक और यथार्थ

केन्द्रीय वित्तमंत्री पी. चिदम्बरम् ने संयुक्त मोर्चा सरकार का पहला बजट पेश करते हुए ही यह वायदा किया था कि वह आने वाले दिनों में संसद में सब्सिडी पर व्यापक बहस के लिए एक "श्वेतपत्र" प्रस्तुत करेंगे। और, अपने उसी वादे को पूरा करते हुए, उन्होंने विगत मई के पहले सप्ताह में "भारत में सरकारी सब्सिडियां" नाम से एक "श्वेतपत्र" प्रस्तुत भी कर दिया, जिसमें सब्सिडियों—खासतौर से "नॉन-मेरिट गुड्स"—पर अब तक दी जाती रही सब्सिडियों में चरणबद्ध ढंग से भारी कटौती करते हुए, अन्तत: उन्हें समाप्त कर डालने का प्रावधान है। बहरहाल, इस पर तनिक विस्तार से चर्चा हम बाद में करेंगे। पहले आइए, देखें कि सब्सिडी क्या है और क्यों दी जाती है, तथा यह भी कि आज जिस सब्सिडी को "फेज आउट" कर डालने की बात की जा रही है उसकी असलियत क्या है।

सब्सिडी अपने व्यापकतम अर्थों में एक ऐसी "सहायता" है जो मालों या सेवाओं पर उत्पादन-लागत से कम कीमत पर यहां तक कि "मुफ्त" में भी मुहैया की जाती है। मानव-सभ्यता के अब तक के समूचे इतिहास में सारी की सारी शोषणकारी व्यवस्थाएं किसी न किसी रूप में ऐसा करती आयी हैं। जैसे दास-प्रथा और सामन्तवाद की व्यवस्थाओं में "प्रजापालन" के नाम पर, तो पूंजीवादी व्यवस्था में "लोक कल्याण" के नाम पर। परन्तु इसका निहितार्थ न तो कभी प्रजापालन रहा है, और न ही लोक कल्याण, बल्कि इसे तो वे अपने शोषणकारी तंत्र को चलाते रहने, आम जन के बीच उसकी सहयता बनाये रखने, तथा उसके विरुद्ध जन-असंतोष और जन विद्रोह न फूटने देने के लिए एक सुरक्षा कवच के रूप में ही इस्तेमाल किया है। बेशक, शोषणकारी व्यवस्था के संकटों और तज्जनित जरूरतों के तहत सब्सिडियों के रूप और क्षेत्र बदलते रहे हैं, पर तथ्य यही है कि सब्सिडियों की मौजूदगी हमेशा ही शोषणकारी व्यवस्थाओं की अनिवार्य नियति रही है, और आज भी है। वर्तमान में ही देखें कि "भूमंडलीकरण" की साम्राज्यवादी शक्तियों के दबाव और निर्देशन में जहां विकसित, विकासशील और पिछड़े—सभी देशों की पूंजीवादी व्यवस्थाओं ने जहां, एक तरफ, 1929-30 की विश्व पूंजीवादी आर्थिक महामंदी से उबरने और उसकी पुनरावृत्ति रोकने के लिए "लोक कल्याणकारी" राज्य का मुखौटा लगा रखा था, अब उन्होंने ही उसे अपने संकटों और तज्जनित जरूरतों के कारण उसे उतार फेंका है, तथा भारत समेत दुनिया के सभी देशों की सरकारें "लोक कल्याण" के नाम पर अब तक दी जाती रही सब्सिडियों को चरणबद्ध ढंग से "फेज आउट" करते हुए अन्तत: उन्हें खत्म कर डालने की राह पर चल पड़ी हैं। परन्तु जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, यह महज सब्सिडियों के रूप और क्षेत्र में परिवर्तन भर है। अब सारी दुनिया के पैमाने पर पूंजीवाद जिन अनवरत, अन्तहीन, ढांचागत संकटों से ग्रस्त है, और बढ़ती तीव्रता के साथ ग्रस्त होता जा रहा है, उससे उबरने के तथाकथित उपक्रम के तौर पर उसे मात्र यही सूझ रहा है कि "लोक कल्याण" के नाम पर अब तक दी जाती रही सभी "गैर-मुनाफादायी" सब्सिडियों को चरणबद्ध ढंग से "फेज आउट" करते हुए, अन्तत: उन्हें खत्म कर दिया जाये। परन्तु, दूसरी तरफ, दूरदर्शन, इण्टरनेट आदि इलेक्ट्रानिक माध्यमों से मुनाफादायी मालों और सेवाओं के बाजार-विस्तार हेतु किये जा रहे धुआंधार विज्ञापनों के साथ फिल्मों आदि तथाकथित मनोरंजक सामग्रियों के रूप में, तथा बाजार से खरीदे जाने वाले तमाम मालों और सेवाओं की कीमतों में "छूट" या उनके साथ दिए जाने वाले "मुफ्त" उपहारों के रूप में जो भारी सब्सिडियां दी जा रही हैं, वे पूंजीवादी बाजार व्यवस्था के अब तक के इतिहास में अभूतपूर्व हैं। यानी वर्तमान दौर में सब्सिडियों के रूप और क्षेत्र बदल रहे हैं, न कि सब्सिडियों का अस्तित्व समाप्त हो रहा है। बाजार-अर्थव्यवस्था के इस सर्वग्रासी दौर में जो बाजार और उसकी चालक शक्तियों के काम का नहीं, उसे जिन्दा रहने का कोई हक नहीं, उसे पूंजीवादी सब्सिडी पाने का का भी कोई हक नहीं। आज के पूंजीवाद का यही तर्क है। इसी तर्क को साम्राज्यवाद **विश्व बैंक**, **अन्तरराष्ट्रीय मुद्राकोष**, और **विश्व व्यापार संगठन जैसी** अपनी संस्थाओं के जरिये सारी दुनिया के पैमाने पर लाद रहा है, और उसकी कनिष्ठ साझीदार बन चुकी तीसरी दुनिया की सभी देशों की पूंजीवादी व्यवस्थाएं इसी तर्क को ढो रही हैं। वित्त मंत्री के "श्वेत पत्र" की यही असलियत है।

अब आइए, हम इस "श्वेत पत्र" का औचित्य प्रतिपादन करने वाली सरकारी दलीलों पर चर्चा करें। इस "श्वेत पत्र" को संसद के पटल पर प्रस्तुत करते हुए वित्तमंत्री ने राजकोषीय घाटा (जो 1996-97 के वित्तीय वर्ष में **सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.)** का 6.5 प्रतिशत था।) का प्रधान कारण "नॉन-मेरिट गुड्स" पर दी जाने वाली सब्सिडियों को माना है, जिनकी कुल दर (केन्द्र और राज्यों द्वारा दी जाने वाली सब्सिडियों को मिलाकर) 90 प्रतिशत है। वित्त मंत्री का कहना है कि यदि इन्हें कम करके 50 प्रतिशत पर ला दिया जाये तो "नॉन-मेरिट गुड्स" पर दी वाली सब्सिडियां—जो कुल **जी.डी.पी.** का 10.7 प्रतिशत हैं—घटकर 6 प्रतिशत के आस-पास आ जायेंगी और तब राजकोषीय घाटा भी घटकर 2 प्रतिशत से कम ही रह जायेगा। अत: "श्वेत पत्र" में "नॉन मेरिट गुड्स" पर से सब्सिडियों की दर को तीन वर्षों में 90 प्रतिशत से घटाकर 50 प्रतिशत पर, तथा फिर अगले दो वर्षों में 25 प्रतिशत और कम कर देने का प्रावधान किया गया है। निश्चय ही इससे, यदि अन्य बातें यथावत रही तो, राजकोषीय घाटा तो पूरा किया जा सकेगा, परन्तु इसका सर्वाधिक दुष्परिणाम किन-किन रूपों में और समाज के किन-किन तबकों को झेलना पड़ेगा—यह गंभीर रूप से विचारणीय है। इसके लिए, प्रसंगवश, जरूरी है कि इस बात का खुलासा कर लिया जाए कि सरकार ने जिन चीजों को "नॉन-मेरिट गुड्स" के अन्तर्गत वर्गीकृत किया है, उनकी प्रकृति और इस वर्गीकरण का तार्किक आधार क्या है।

इस "श्वेतपत्र" में सब्सिडी से सम्बन्धित चीजों और सेवाओं को तीन कोटियों में वर्गीकृत किया गया है—'पब्लिक गुड्स', 'मेरिट गुड्स' और 'नॉन-मेरिट गुड्स'। 'पब्लिक गुड्स' के अन्तर्गत कानून-व्यवस्था, नागरिक प्रशासन एवं प्रतिरक्षा आदि उन सेवाओं को रखा जाता है जो सभी नागरिकों को इस प्रकार सुलभ होती हैं कि यदि कोई एक व्यक्ति इनका उपभोग करता है, तो इसी कारण दूसरे व्यक्ति इनके उपभोग से वंचित नहीं हो जाते। इनके बेचे जाने या लागत-वसूली का सवाल नहीं होता। अत: इनकी शत प्रतिशत वित्त आपूर्ति टैक्सों द्वारा की जाती है। 'मेरिट गुड्स' के अन्तर्गत वे चीजें या सेवाएं रखी जाती हैं जिनका सामाजिक लाभ इनके व्यक्तिगत उपभोक्ताओं से कहीं अधिक हैं, जैसे टीकाकरण, सार्वजनिक स्वास्थ्य, प्राथमिक शिक्षा, सड़क और पुल, बाढ़ नियंत्रण तथा कृषि, अन्तरिक्ष, परमाणु ऊर्जा आदि। और 'नॉन-मेरिट गुड्स' के अन्तर्गत उन चीजों और सेवाओं को रखा जाता है जो नितान्त व्यक्तिगत लाभ के लिए उपभोग की जाती है। अत: वित्तमंत्री के अनुसार, इन पर सब्सिडी दिये जाने का कोई औचित्य नहीं है, और इनकी पूरी कीमत इनसे लाभ उठाने वालों से वसूल की ही जानी चाहिए।

प्रकटत: 'नॉन-मेरिट गुड्स' पर से सब्सिडियां खत्म किए जाने का वित्तमंत्री का तर्क उचित ही लगता है। परन्तु जब हम इनके अन्तर्गत कोटिबद्ध चीजों और सेवाओं पर नजर डालते और उन्हें समाज या समाज के व्यापक समुदायों के संदर्भ में रखकर सोचते हैं, तो यह तर्क एकदम मनमाना और हास्यास्पद सिद्ध होने लगता है। उदाहरण के लिए, प्राथमिक शिक्षा को उसके सामाजिक लाभ की दृष्टि से 'मेरिट गुड्स' के अन्तर्गत रखा गया है, पर उच्च शिक्षा को 'नॉन-मेरिट गुड्स' की कोटि में डाल दिया गया है। क्या उच्च शिक्षा का कोई सामाजिक लाभ नहीं है? इसी तरह, सड़क और पुल को तो उनके सामाजिक लाभ की दृष्टि से 'मेरिट गुड्स' के अन्तर्गत रखा गया है, परन्तु क्या यह अंधदृष्टि या कि मनमानापना नहीं है कि रेलवे को 'नॉन-मेरिट गुड्स' के हवाले कर दिया गया है? और भी देखें : अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़ी जातियों का कल्याण 'मेरिट गुड्स' में, पर स्वास्थ्य और परिवार कल्याण 'नॉन-मेरिट गुड्स' में, बाढ़ नियंत्रण और जलनिकास 'मेरिट गुड्स' में, लेकिन सिंचाई और बाढ़ नियंत्रण 'नॉन-मेरिट गुड्स' में, सीवरेज और सफाई 'मेरिट गुड्स' में तबकि जलापूर्ति और सफाई एवं आवास 'नॉन-मेरिट गुड्स' में रखे गये हैं। ऐसे ही अन्य मनमाने वर्गीकरण किये गए हैं।

कहने की आवश्यकता नहीं कि "श्वेत पत्र" में मालों एवं सेवाओं के वर्गीकरण में हास्यास्पद सीमा तक मनमानापन और मनोगतवाद अपनाया गया है। और इसी मनमानेपन और मनोगतवाद के आधार पर वर्तमान संयुक्त मोर्चा सरकार 'नॉन मेरिट गुड्स' पर से सब्सिडियां खत्म करने का "सामाजिक न्याय" करने जा रही है। वैसे तो यह सही ही है, और जैसाकि वित्तमंत्री ने स्वीकार भी किया है, कि अब तक सब्सिडियों के नाम पर दी जाती रही रियायतों का अधिकतम लाभ समृद्ध तबकों को ही मिलता रहा है। परन्तु यह भी तो है कि खाद्य-सुरक्षा, सफाई, शिक्षा आदि के नाम पर आम जनता को, आनुषंगिक तौर पर भी, जो मामूली सुविधाएं हासिल हो जाती रही हैं, अब वे भी वित्तमंत्री की आंखों में बुरी तरह से चुभने लगी हैं, जो कुल मिलाकर तकरीबन 17,000 करोड़ रुपए के बराबर हैं। इसी से सरकार अपना राजकोषीय घाटा पूरा करने का दम भर रही है। सरकार का रोना यह है कि उसके पास इन सब्सिडियों पर खर्च करने के लिए धन नहीं है। परन्तु वह यह क्यों नहीं बताती कि मौजूदा बजट में समृद्ध तबकों को जो रियायतें दी गयी हैं वे 17,000 करोड़ रुपए से कहीं अधिक ही हैं। यह भी गौरतलब है कि ये रियायतें 40,000 करोड़ रुपए से ऊपर की उस राशि के अतिरिक्त हैं जिसे ये ही समृद्ध तबके राष्ट्रीयकृत बैंकों से उधार लेकर डकार गए हैं। इसमें इतना और जोड़ लेना जरूरी है कि बेईमान व्यापारी हर वर्ष करों की चोरी और आयात-निर्यात में हेराफेरी करके अनुमानत: 4 से 11 अरब डॉलर की पूंजी चोरी-छुपे विदेशों में पहुंचा रहे हैं। इन सबके अतिरिक्त यह भी गौरतलब है कि ग्रामीण क्षेत्रों के धनी से धनी तबकों को भी एक पाई भी कर के रूप में नहीं देना पड़ रहा है। लेकिन सरकार इसकी बाबत कुछ नहीं कहती। और कहे भी क्यों? ऐसे ही तबकों की सुख-समृद्धि के लिए तो उदारीकरण से पूर्व "साधनों से अधिक खर्च" किया जा रहा था, और अब भी इन्हीं तबकों की सुख-समृद्धि के लिए तो कोष-बैंक आदि अन्य साम्राज्यवादी वित्तीय संस्थाओं से भारी कर्ज लिया जा रहा है, जिसके सालाना सूद के मद में जो भुगतान किया जा रहा है वही पूरे राजकोषीय घाटे से कहीं ज्यादा है। लेकिन सरकार तो "विकास" के नाम पर यह सब ऐसे ही समृद्ध एवं विशिष्ट वर्गीय (इलीट) तबकों के लिए कर रही है—उन्हीं का प्रतिनिधित्व करने वाली जो ठहरी। यहां, प्रसंगवश, फिर याद कर लें कि पूरा का पूरा मामला बस रियायतों एवं सुविधाओं के रूप में सब्सिडियों के रूप और क्षेत्र बदलने का ही है। यह "उदारीकरण" और "संरचनात्मक समायोजन" के नाम पर मेहनतकश जनता के विरुद्ध निरन्तर बढ़ती आक्रामकता के साथ, अधिकाधिक उजागर होते जा रहे वर्तमान व्यवस्था के चरित्र के अनुरूप ही है। और इसे इसकी "तार्किक परिणति" तक पहुंचा देने का वादा तो स्वयं प्रधानमंत्री गुजराल पदभार ग्रहण करने के ठीक बाद ही पूंजीपतियों की संस्था सी. आई.आई. के वार्षिक सम्मेलन में कर भी चुके हैं। बेशक भारी मेहनतकश गरीब आबादी को वित्तमंत्री चिदम्बरम यह ठंडी लोरी सुनाकर सुला देने की असफल कोशिश भी कर रहे हैं कि 'सब्सिडियों से गरीबों को नहीं, केवल समृद्ध तबकों को ही लाभ मिलता रहा है।' फिर भी जनता के आक्रोश का लावा तो फूटना ही है।

लेकिन असली सवाल सब्सिडियों की कटौती का विरोध करने का नहीं, बल्कि इस घोर जनविरोधी पूंजीवादी निजाम को ही पलटने का है, जो *गाय मारकर जूता दान* की तर्ज पर मेहनतकश आबादी के श्रम को लूट-लूटकर उसे कंगाल और बदहाल करता रहता है, तथा कभी "लोक कल्याण" का मुखौटा लगाकर उसे सब्सिडियों की आनुषंगिक भीख देता है, तो कभी "विकास" के नाम उसे भी छीनता और अन्यसंक्रमित करता रहता है। मेहनतकश जनता को व्यवस्था के इस दुश्चक्र से भली-भांति वाकिफ करना तथा एक ऐसी व्यवस्था कायम करने की दिशा में एक लम्बे संघर्ष की तैयारी के लिए गोलबंद करना जरूरी है, जिसमें सारी सत्ता मेहनतकशों के हाथ में हो, जिससे कि उनको भोजन, वस्त्र, आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि के लिए किसी सब्सिडी की भीख का मोहताज होने के बजाय, इनका सुनिश्चित हक और गारंटी हासिल हो।

● आलोक रंजन

भारतीय अर्थव्यवस्था भुगतान सन्तुलन के संकट की दिशा में ही अग्रसर

भारतीय पूंजीवादी अर्थव्यवस्था अपनी ऐतिहासिक नियति के अनुरूप बार-बार भुगतान सन्तुलन के संकटों में फंसती रही है। पिछली बार यह संकट 1991-92 में आया, और इससे निजात पाने के उपाय के तौर पर भारतीय शासक वर्ग ने साम्राज्यवादी वित्तीय संस्थाओं—**अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष** और **विश्व बैंक** के आगे घुटने टेककर इस देश की अर्थव्यवस्था को आर्थिक नव-औपनिवेशिक लूट का चरागाह ही बना डाला। कहने के लिए तो यह कहा गया कि 1991-92 में अपनाया गया "संरचनात्मक समायोजन" अर्थव्यवस्था में स्थिरीकरण यानी व्यापक स्तर पर सन्तुलन कायम करने और निर्यात को प्रोत्साहन देने के लिए था, परन्तु तब से लगभग 6 वर्ष पूरे होने को आ रहे हैं, जबकि न तो अर्थव्यवस्था में स्थिरता आयी है, न भुगतान सन्तुलन का खतरा टला है, और न ही निर्यात में कोई उल्लेखनीय प्रगति हुई है। अलबत्ता यह जरूर हुआ है कि भारी मेहनतकश आबादी बढ़ती तबाही की दिशा में और तेजी से धकेल दी गयी हैं।

सारणी: व्यापार घाटा और आयात-निर्यात में परिवर्तन			
वर्ष	व्यापार सन्तुलन (करोड़ डॉलर)	निर्यात	आयात
		बढ़ोत्तरी (+) या कमी (-)	
1991-92	-280.0	-1.15	-24.55
1992-93	-437.0	+3.45	+10.32
1993-94	-293.0	+3.3	+7.88
1994-95	-498.0	+20.20	+27.01
1995-96	-894.0	+18.40	+30.06
अप्रैल-अग. 1996	-179.0	+10.61	+5.28

स्रोत: *आर्थिक सर्वे 1996-97, पृ. 85, 92, 94*

1991-92 में भुगतान सन्तुलन के संकट से तात्कालिक तौर पर उबरने के लिए सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनियों के शेयरों की बिक्री की गयी, पर यह प्रक्रिया न सिर्फ अभी भी जारी है बल्कि उसे अब एक स्थायी नीतिगत जामा पहना दिया गया है। यह कदम भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए न सिर्फ घातक है, बल्कि भावी भुगतान सन्तुलन के संकट से उबरने में भी कोई मदद नहीं करने वाला है।

निर्यात पर जोर देने की जगह अर्थव्यवस्था को विदेशी निर्यात के लिए यह कहकर पूरी तरह खोल दिया गया कि घरेलू बाजार में विदेशी उत्पादों के साथ प्रतियोगिता करके घरेलू उत्पादन अपने आप ही निर्यात लायक हो जायेंगे। यह भारतीय पूंजीवाद की ऐतिहासिक पैदाइश और विकास यात्रा पर पर्दा डालने का ही काम किया गया। वैसे तो अब 'एशियाई शेर' कहे जाने वाले पूर्वी एशियाई देश भी अपनी अर्थव्यवस्था के संकट में बुरी तरह फंस गये हैं, पर भारत ने तो उनकी वह नीति भी नहीं अख्तियार की जिसके तहत उन्होंने अपने निर्यातों को प्राथमिकता दी तथा आयातों पर कड़ाई की।

नीचे की सारणी में 1990-91 से लेकर 1995-96 तक यानी पिछले पांच वर्षों के निर्यात-आयात के आंकड़े दिये गये हैं। स्पष्ट है कि 1991-92 में की गयी आयात-कटौती तथा 1996-97 के पहले छमाही को छोड़कर, आयात की वृद्धि-दर निर्यात की वृद्धि-दर से हमेशा ही अधिक रही है। बेशक 1994-95 और 1995-96 में निर्यात में कुछ तेजी दिखायी दी, लेकिन तब भी इन दो वर्षों के दौरान आयात की दर तेजी से बढ़ती ही रही। आज एक बार फिर वही स्थिति दिखायी दे रही है जो 1996-97 के पहले 6 महीनों में पैदा हुई थी: निर्यात धीमा पड़ रहा है जबकि आयात गुब्बारे की तरह फूलता जा रहा है। अब व्यापार-घाटा 500 करोड़ डॉलर से भी अधिक हो जाने की आशंका है। अभी मात्र प्राकृतिक तेल के आयात पर ही वर्तमान वित्तीय वर्ष में अतिरिक्त 100 करोड़ डॉलर आयात-खर्च बढ़ जाने का अनुमान है। इस तरह बढ़ता हुआ व्यापार घाटा निश्चय ही अपनाये गये "संरचनात्मक समायोजन" की ही विफलता का सबूत है।

दरअसल भारत सरकार की पूरी व्यापार नीति ही असंगत है। हमारे यहां अभी भी निर्यात कच्चे मालों का ही ज्यादा होता है, जिनसे कोई खास मूल्य नहीं जुड़ पाता। इसके अतिरिक्त, इनके व्यापार की शर्तें भी अन्तरराष्ट्रीय बाजारों में ज्यादा से ज्यादा कड़ी और प्रतिकूल होती जा रही है। दूसरी तरफ, आयात की स्थिति यह है कि देश के भीतर उत्पादन में आयातित लागत ज्यादा से ज्यादा होती जा रही है। यदि सारा का सारा उत्पादन निर्यात के लिए ही होता तो इससे कोई खास फर्क नहीं पड़ता, पर चूंकि उत्पादन घरेलू खपत के लिए हो रहा है, इसलिए आयात के बढ़ते जाने का मतलब है व्यापार सन्तुलन पर बुरा और प्रतिकूल प्रभाव। फिर भी ताज्जुब की बात तो यह है कि सरकारी तंत्र और मीडिया इसे उत्पादन में तेजी का शुभ संकेत मान रहे हैं।

अब यदि हमारे यहां से विदेशों को होने वाले निर्यात मालों पर गौर करें तो, जैसा कि नीचे की सारणी से स्पष्ट है, ज्यादा से ज्यादा निर्यात प्राथमिक मालों का ही होता है, जिनकी अन्तरराष्ट्रीय बाजारों में मांग एक निश्चित सीमा से आगे नहीं बढ़ सकती। यही कारण है कि 1994-95 के दौरान निर्यात में वृद्धि कुल निर्यात का 19.8%, 1995-96 में अप्रैल से सितम्बर तक 24.3% तथा 1996 में अप्रैल से सितम्बर तक पुन: 20.1% ही रही।

आयात-निर्यात के असन्तुलन के चलते 1995-96 में चालू व्यापार खाते का घाटा बढ़कर 890 करोड़ डॉलर हो गया। और जहां निर्यात में वृद्धि भी हुई है, तो आयात में और भी वृद्धि हो गयी है। 1997-98 के बजट में तो आयात को और भी खुली छुट दे दी गई है-तमाम प्रतिबंधों को हटाकर और आयात शुल्क में भारी कटौती करके। बेशक यह दलील दी जा सकती है—और सरकारी तंत्र द्वारा भी जा रही है—कि आयातित माल अपेक्षाकृत सस्ते पड़ने पर औद्योगिक उत्पादन लागत भी तदनुरूप ही सस्ती पड़ेगी। परन्तु इसका फायदा तो महज मुट्ठीभर सम्पन्न लोगों को ही मिल सकता है, कारण कि जो आयात किया जा रहा है वह मुख्य तौर पर सम्पन्न वर्गों के ही हितों को ध्यान में रखकर किया जा रहा है, जैसा कि नीचे की सारणी से स्पष्ट है। भारी आबादी तो अपनी आय का भारी हिस्सा खाद्य-सामग्री आदि पर ही खर्च करती है, परन्तु इनका अनुपात अन्य आयातित वस्तुओं की तुलना में सबसे कम ही है, जैसा कि सारणी से स्पष्ट है।

भारत सरकार **अन्तरराष्ट्रीय मुद्राकोष, विश्व बैंक** और **विश्व व्यापार संगठन** की साम्राज्यवादी तान पर थिरकती हुई यह झूठा राग अलाप रही है कि "भुगतान सन्तुलन भारत के मामले में अब ऐसा कोई कारण नहीं पैदा करता कि आयात की मात्रा पर प्रतिबंध लगाना तर्कसंगत माना जाय।" और इसी तर्ज पर भारत सरकार यह दावा कर रही है कि देश में अब भुगतान सन्तुलन की कोई समस्या नहीं है। परन्तु यह सरासर झूठ है। इसे आगे स्पष्ट किया जा रहा है।

यह तथ्य है कि "आर्थिक सुधार काल" के अब तक के 6 वर्षों में आयात की वृद्धि-दर निर्यात की वृद्धि-दर से हमेशा ही अधिक रही है। अगर स्थिति को कुछ संभाला है तो उन भारतीय मजदूरों ने ही संभाला है जो खाड़ी व अन्य देशों में कमाई करके यहां पैसा भेज रहे हैं। इसे ही भारत सरकार "शुद्ध आवक" कह रही है जो 1992-93 में 280 करोड़ डॉलर से बढ़कर 1994-95 में 620 करोड़ डॉलर तथा 1995-96 में 750 करोड़ डॉलर हो गया। फिर भी इससे तेजी से फूलते व्यापार घाटे को नहीं पाटा जा सकता। अब जहां तक अनिवासी भारतीयों के भारत में डिपॉजिट तथा विदेशी निवेश की बात है, तो ये दोनों ही अत्यन्त उड़नशील हैं। वैसे भारत सरकार को तो "अनिवासी भारतीयों के डिपॉजिटों में एक प्रकार की स्थिरता" ही दिखायी दे रही है, पर इस कटु सच्चाई को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता कि ज्यादातर अनिवासी भारतीयों के डिपॉजिट और विदेशी निवेश अल्पावधिक ही है, जिनका अन्तत: भुगतान डॉलर में ही किया जाना है। दूसरे, विदेशी निवेश का आलम यह है कि ज्यादातर विदेशी निवेश उत्पादन में कम, शेयरों में ही अधिक है। उदाहरण के तौर पर, अप्रैल 1991 से लेकर दिसम्बर 1996 तक प्रत्यक्ष विदेशी निवेश

सारणी: भारतीय निर्यात का संघटन (प्रतिशत अनुपात में)				
निर्यातित वस्तुएं	1994-95	1995-96	1995 (अप्रै-सित.)	1996 (अप्रै-सि.)
1. कृषि उत्पाद	16.0	19.2	16.1	20.6
2. कच्ची धातुएं और खनिज	3.8	3.7	4.0	3.7
योग	19.8	22.9	20.1	24.3
3. औद्योगिक उत्पाद	78.1	75.4	77.8	73.5
4. अन्य (पेट्रोल उत्पाद समेत)	2.2	1.8	2.1	2.2
कुल योग	100.00	100.00	100.00	100.00

स्रोत: *आर्थिक सर्वे 1996-97, पृ. 93*

सारणी: भारतीय आयात की श्रेणियां और अनुपात (अप्रैल-सितम्बर 1996)				
आयात श्रेणी	'94-95	'95-'96	'95	'96
1.खाद्य और समवर्गीय उत्पाद	5.8	3.8	3.8	3.6
2. ईंधन	23.2	23.0	21.5	28.0
3. पूंजीगत माल और पार्ट-पुर्जे	28.5	27.8	27.7	25.0
4. दूसरे औद्योगिक उत्पाद या पार्ट-पुर्जे और कच्चे माल	28.6	29.4	30.1	28.4
5. गैर-वर्गीकृत उत्पाद	16.1	16.1	16.6	15.1
कुल योग	100.00	100.00	100.00	100.00

स्रोत: *आर्थिक सर्वे 1996-97, पृ. 96*

मात्र 630 करोड़ डॉलर तक ही रहा, जबकि शेयरों में 1190 करोड़ डॉलर का निवेश हुआ।

स्थिति की नजाकत यह है कि जहां पिछले पांच वर्षों में विदेशी मुद्रा भंडार महज 1520 करोड़ डॉलर बढ़ा, वहीं शुद्ध अल्पावधिक देनदारियां करीब 2590 करोड़ डॉलर बढ़ी। यदि इसके बाद के आंकड़ों पर नजर डालें तो स्थिति और भी नाजुक दिखायी पड़ती है। फरवरी 1997 के मध्य में विदेशी मुद्रा का कुल भंडार 2070 करोड़ डॉलर था, जबकि उससे पहले नवम्बर 1996 में ही अनिवासी भारतीयों का डिपॉजिट 2000 करोड़ डॉलर था। शेयरों में विदेशी निवेश—जो अत्यंत उड़नशील है—दिसम्बर 1996 में 1300 करोड़ डॉलर था, तथा शुद्ध वाणिज्यिक ऋण और लघु अवधि के लिए बाहर से आयी पूंजी 660 करोड़ डॉलर थी। अब यदि इन सभी देनदारियों को जोड़ दिया जाय तो यह रकम 3960 करोड़ डॉलर बनती है जो विदेशी मुद्रा भंडार (2070 करोड़ डॉलर) के दोगुने से कुछ ही कम हैं।

स्पष्ट है कि भुगतान सन्तुलन की स्थिति बहुत ही नाजुक है, जो बढ़ते चालू व्यापार घाटे के साथ और भी तेजी से नाजुक होती जाने वाली है। अर्थात् भुगतान सन्तुलन का संकट कभी भी उत्पन्न हो सकता है।

● **विश्वमित्र**

आर्थिक विकास के नाम पर आंकड़ों की बाजीगरी

भारत सरकार द्वारा समय-समय पर प्रकाशित किए जाते रहे अर्थव्यवस्था संबंधी सांख्यिकीय आंकड़े अपनी विश्वसनीयता के लिहाज से सारी दुनिया में अव्वल तो कभी भी नहीं समझे जाते रहे, फिर भी एक विकासशील देश की दृष्टि से तीसरी दुनिया में उनकी कुछ न कुछ साख अवश्य थी। परन्तु जब से इस देश में "उदारीकरण" की नीतियां लागू होनी शुरू हुई, तब से सरकार ने आंकड़ों के नाम पर मानो **गोयबेल्सी** झूठ का एक अंबार ही खड़ा करना शुरू कर दिया है। अभी हाल ही में, जो कि काफी विलम्ब से, भारत सरकार के **वित्त मंत्रालय** के **आर्थिक विभाग** ने जो *आर्थिक सर्वेक्षण 1996-97, (इकनॉमिक सर्वे 1996-97)* प्रकाशित किया है, वह इसी झूठ का ज्वलंत प्रमाण है। आगे कुछ एक उदाहरणों से ही बात स्पष्ट हो जायेगी।

उद्योग

पहले औद्योगिक उत्पादन के आंकड़ों को लें। *आर्थिक सर्वेक्षण 1996-97* में 1996-97 वित्तीय वर्ष के लिए औद्योगिक विकास की अनुमानित दर 8.7% बतायी गयी है, जो देखने में खुशनुमा लगते हुए भी सच्चाई से कोसों दूर है। उल्लेखनीय है कि खनिज उत्पादन में अनुमानित वृद्धि-दर मात्र 1.7% है, बिजली, गैस और जल उत्पाद में 4.2% तथा निर्माण में 4.6% है। अब बचता है, विनिर्माण (मैन्यूफैक्चरिंग) का क्षेत्र, जिसमें यदि विकास दर 10% से भी अधिक हो, तभी 8.7% की औसत अनुमानित वृद्धि-दर हासिल हो सकती है। परन्तु ऐसा होना कतई नामुमकिन है। क्योंकि भले ही मशीनों व बिजली के सामानों के विनिर्माण में थोड़ी तेजी आयी है, फिर भी ज्यादातर मैन्यूफैक्चरिंग औद्योगिक इकाइयों में मंदी का आलम छाया हुआ है। सिर्फ मशीनों और बिजली के सामानों के विनिर्माण में दिखायी दे रही थोड़ी सी तेजी पूरे विनिर्माण या औद्योगिक क्षेत्र की विकास-दर का निर्धारक नहीं बन सकती, क्योंकि यह क्षेत्र पूरे औद्योगिक क्षेत्र के मुकाबले काफी छोटा है। और पूरे औद्योगिक क्षेत्र में तो मंदी छायी हुई है, जो चालू वित्तीय वर्ष में ऋण की मांग में आयी गिरावट से भी स्पष्ट है।

कृषि

अब कृषि-उत्पादन को लें। 1995 में मानसून सामान्य रहने के बावजूद खाद्यान्न का 1995-96 में कुल उत्पादन 18.5 करोड़ टन रहा जो 1994-95 के उत्पादन के मुकाबले 60 लाख टन से भी ज्यादा कम रहा। इसी तरह गेहूँ का उत्पादन भी मात्र 6.26 करोड़ टन रहा, जो पिछले साल के उत्पादन से 30 लाख टन कम था। परन्तु इस तथ्य को साल भर से अधिक समय तक छिपाये रखा गया और *आर्थिक सर्वेक्षण 1996-97* में इसे यह कहकर स्वीकार किया गया है कि *"...सबसे अप्रत्याशित बात थी कि 1996 में... बहुत विलम्ब से यह समझ में आया... इसका असर बुरा रहा व इसके चलते गेहूँ की उपलब्धता में कई विकृतियां पैदा हुईं।"* परन्तु इस "पाप स्वीकरण" पर कितना विश्वास किया जा सकता है जबकि तथ्य यह भी है कि 1995-96 वर्ष खत्म होने के काफी अर्से बाद सरकार ने 30 लाख टन गेहूं निर्यात करने की मंजूरी भी दे दी। इस तरह पूरे एक साल बाद आंकड़ों में किए गए संशोधन भी फिर कोई नयी बाजीगरी के नमूने नहीं है—कौन कह सकता है?

सकल घरेलू उत्पाद, बचत और निवेश

अब सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी), बचत और निवेश पर आयें। *आर्थिक सर्वेक्षण 1996-97* में **सकल घरेलू उत्पाद** *(जीडीपी)*, **बचत** और **निवेश** के आंकड़े अर्थशास्त्रीय पद्धति को ताक पर रखकर यानी तैयार मालों और सेवाओं की बाजार कीमतों के आधार पर न तैयार करके उपादान लागत *(फैक्टर कॉस्ट)* के आधार पर तैयार किये गये हैं जो पूरी तरह से बेमतलब है। यही कारण है कि इस *आर्थिक सर्वेक्षण 1996-97* में उपादान लागत *(फैक्टर कॉस्ट)* पर आधारित आंकड़ों तथा 1996 के **केन्द्रीय सांख्यिकी संस्थान** द्वारा 1980-81 की कीमतों पर आधारित **राष्ट्रीय लेखा आंकड़ों** के बीच भारी अन्तर है। जो सारणी-1 से स्पष्ट है।

बेशक **सकल घरेलू उत्पाद** में कुछ न कुछ वृद्धि तो अवश्य हुई है। फिर भी उपर्युक्त दो प्रणालियों से की गयी गणनाओं में जो अन्तर दिखायी देता है उससे किसी शक की गुंजाइश नहीं रह जाती कि **राष्ट्रीय लेखा प्रणाली** के आंकड़े काफी छल-नियोजित और तोड़-मरोड़ कर पेश किये गये हैं।

सारणी-1: विभिन्न प्रणालियों से आंके गये सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि में अन्तर

वर्ष	उपादान लागत से गणना की गयी सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर	बाजार कीमतों से गणना की गयी सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि दर
1990-91	लागू नहीं	9.2%
1991-92	लागू नहीं	(-)2.8%
1992-93	6.3%	5.3%
1993-94	6.0%	3.9%
1994-95	7.2%	6.3%

स्रोत: *वैकल्पिक आर्थिक सर्वे 1996-97, पृ. 3*

सारणी- 2: सकल घरेलू उत्पाद के अनुपात में बचत और निवेश (प्रतिशत में)						
वर्ष	'90-91	'91-92	'92-93	'93-94	'94-95	'95-96
1. सकल घरेलू बचत:	24.3	22.8	22.1	23.1	24.9	25.8
(अ) सार्वजनिक क्षेत्र	1.0	1.9	1.5	0.6	1.8	1.9
(ब) निजी क्षेत्र	23.3	20.9	2.5	22.5	23.1	23.7
2. सकल घरेलू निवेश:	27.7	23.4	24.0	23.6	26.0	27.4
(अ) अचल पूंजी	23.2	22.1	22.5	21.8	22.4	24.6
(ब) भंडारण में बदलाव	2.1	0.8	1.5	0.1	1.6	1.6
3. विदेश से प्राप्त बचत	3.4	0.6	1.9	0.5	1.1	1.6

स्रोत: *आर्थिक सर्वेक्षण 1996-97* नोट: तीसरी श्रेणी के आंकड़े उपर्युक्त दो श्रेणियों से गणित

सारणी-3: संस्थावार घरेलू बचत (वर्तमान कीमतों पर, करोड़ रुपए में)				
	1993-94		1994-95	
	मूल्य	प्रतिशत	मूल्य	प्रतिशत
1. पारिवारिक बचत:	1,39,146	(81.3)	1,78,696	(77.5)
(अ) वित्तीय	86,13	(50.3)	1,05,302	(45.7)
(ब) भौतिक परिसम्पत्ति	53,015	(31.0)	73,394	(31.8)
2. निजी कंपनी क्षेत्र	27,666	(16.2)	35,966	(15.6)
3. सार्वजनिक क्षेत्र:	4,372	(2.6)	15,986	(6.9)
(अ) प्रशासन	(-)27,188	(-15.9)	(-)26,887	(-11.7)
(ब) विभागीय उद्योग	7,404	(4.3)	8,919	(3.9)
(स) सार्वजनिक उद्यम	24,156	(14.1)	33,874	(14.7)
4. सकल घरेलू बचत	1,71,184	(100.00)	2,30,648	(100.00)

स्रोत: *केन्द्रीय सांख्यिकी संस्थान, राष्ट्रीय लेखा आंकड़े 1996*

अब जहां तक **सकल घरेलू उत्पाद** के अनुपात में बचत और निवेश की बात है, तो इनमें भी वही बाज़ीगरी दिखायी गयी है। जैसा कि सारणी-2 से स्पष्ट है, 1994-95 और 1995-96 में घरेलू बचत के आंकड़े वृद्धि की बहुत खुशनुमा तस्वीर पेश करते हैं।

परन्तु इन आंकड़ों का कच्चा-चिट्ठा तब पूरी तरह खुल जाता है जब हम संस्थावार घरेलू आंकड़ों पर नजर डालते हैं, जो सारणी-3 में दिये गये हैं।

कहने की आवश्यकता नहीं कि उपर्युक्त दोनों सारणियों में प्रस्तुत सकल घरेलू बचत और निवेश के आंकड़े एक दूसरे के ठीक विपरीत तस्वीर पेश करते हैं। फिर भी कुल मिलाकर ऐसा लगता है कि भारतीय अर्थव्यवस्था 1991-92 में उत्पादन में आये ठहराव से अब उबर चुकी है, परन्तु आंकड़ों में की गयी बाजीगरी को देखते हुए कैसे कहा जा सकता है कि यह सच ही है। यह एक प्रमुख सन्देह है जो कतई निराधार नहीं है, क्योंकि आंकड़ों की हेराफेरी और तोड़-मरोड़ ही इसके प्रत्यक्ष गवाह है। हेरा-फेरी करके, तोड़-मरोड़ कर और बढ़ा-चढ़ाकर आंकड़े पेश करने से अर्थव्यवस्था की तस्वीर सुनहरी नहीं होती, न ही कोई बेहतर भविष्य सुनिश्चित किया जा सकता है। लेकिन लगता है "सामाजिक न्याय के साथ विकास" का दम भरने वाली केन्द्रीय साझा सरकार का शायद यही असली चरित्र है जो पिछली सरकारों से भी कहीं अधिक कपटपूर्ण है।

● आदेश सिंह

विदेशी प्रत्यक्ष निवेशों की असलियत

सन 1991 से लेकर अब तक देश में "उदारीकरण" के चलते जो विदेशी पूंजी निवेश हुआ है और हो रहा है उसमें भारी हिस्सा *पोर्टफोलियो निवेश* के रूप में है, जबकि बहुत कम हिस्सा ही *प्रत्यक्ष विदेशी निवेश* का है।

वस्तुतः यह विश्व-पूंजीवादी तंत्र का अपना आंतरिक संकट हैं जिसकी असमाध्येता के चलते सारी दुनिया के पैमाने पर उत्पादन के क्षेत्रों में **प्रत्यक्ष** पूंजीनिवेश घट रहा है, और उसकी कई गुनी रफ्तार से गैर-उत्पादक वित्तीय कार्यवाहियों में *पोर्टफोलियो* निवेश सुरसा के मुंह की तरह फैलता जा रहा है। आज स्थिति यह है कि सारी दुनिया के पैमाने पर *पोर्टफोलियो* निवेश एक *दरिया* बन चुका है, जबकि *प्रत्यक्ष* पूंजीनिवेश मात्र उसका एक *बुलबुला*।

फिर भी, "उदारीकरण" के वर्तमान दौर में जो प्रत्यक्ष पूंजी निवेश हो रहा है उसके पीछे विदेशी निवेशकों की असली मंशा क्या हैं? यही इस टिप्पणी का मुख्य विषय है। क्या इससे भारत सरीखे देश की बुनियादी समस्याओं, जैसे गरीबी, बेरोजगारी और अशिक्षा का समाधान संभव है? पहली बात तो यह ध्यान में रखनी चाहिए कि किसी भी पूंजीवादी निवेश का केन्द्रीय लक्ष्य मुनाफाखोरी है, गरीबी, बेरोजगारी और अशिक्षा दूर करना नहीं। इन बुनियादी समस्याओं को किसी हद तक दूर करने की पूंजीवादी दिलचस्पी सिर्फ प्रासंगिक होती है—और वह भी वहीं तक, जहां तक कि इससे उसकी मुनाफाखोरी बढ़ने में मदद मिले। आज की विश्व-पूंजीवादी परिस्थिति यह है कि चाहे साम्राज्यवाद हो, या किसी एक देश का पूंजीवाद, उसके लिए अब इन बुनियादी समस्याओं में दिलचस्पी लेना प्रासंगिक बात भी नहीं रह गयी है। "रोजगार विहीन विकास" और "मुद्रास्फीति को रोकने के लिए बेरोजगारी की एक "प्राकृतिक दर" बनाये रखने की साम्राज्यवादी अर्थशास्त्रीय दलीलें तो आ ही चुकी हैं, अब कुछ साम्राज्यवादी शिक्षा-शास्त्री यह भी कहने लगे हैं कि समाज की *"अति स्कूलिंग"* हो चुकी है, लिहाजा अब "डि-स्कूलिंग" जरूरी है। खासतौर से, उच्च शिक्षा के क्षेत्र में विकासशील देशों को **विश्व बैंक** के तत्वावधान में, 1986 में हुए **बैंकाक कान्फ्रेंस** में साम्राज्यवादियों द्वारा यही नसीहत दी जा चुकी है, जिस पर अमल करते हुए, भारत सरकार के निर्देशन में **रस्तोगी कमेटी** ने हाल में जो रिपोर्ट पेश की है, उसका अन्तर्निहित आर्थिक तर्क ऐसा है जो न अनुसंधान को सिर्फ हतोत्साहित करने वाला है, बल्कि 'डॉक्टरेट' कर उच्च शिक्षा में नियुक्ति पाने वाले तथा सेवाकाल के दौरान डाक्टरेट करने वाले शिक्षकों को पूरे सेवाकाल के दौरान, भारी आर्थिक घाटा ही देने वाला है। अभी सरकार ने सब्सिडी पर जो *विमर्श-पत्र* **(डिस्कशन पेपर)** जारी किया है, उसमें उच्च शिक्षा पर दिए जाने वाले अनुदान को चरणबद्ध ढंग से पांच वर्षों के भीतर लगभग पूरी तरह खत्म कर देने का प्रावधान है।

फिर भी धड़ल्ले से जब विदेशी कम्पनियां भारत में प्रत्यक्ष पूंजी निवेश करती हैं तो यही सब्जबाग दिखाया जाता है कि इससे गरीबी दूर होगी, रोजगार बढ़ेगा और अशिक्षा दूर होगी। इनके समर्थन में विश्व बैंक लगातार अपना शब्दजाल फैलाता रहता है।

औद्योगिक क्षेत्र में 90 प्रतिशत से अधिक प्रत्यक्ष जर्मन पूंजी निवेश हुआ है। परन्तु क्या इससे बेरोजगारी बढ़ी है। आंकड़े तो नकारात्मक जवाब ही देते हैं। एक दूसरा उदाहरण **पेप्सी** का लें। भारत में **'पेप्सी फूड लिमिटेड'** के नाम से इसको

सितम्बर 1988 में भारत सरकार द्वारा, **पंजाब एग्रो इण्डस्ट्रियल कारपोरेशन**, और **वोल्टास इण्डिया लिमिटेड** के एक संयुक्त उद्यम के रूप में चालू किया गया। इसके तहत यह प्रचारित किया गया कि इसके जरिये देश में कुल 75,000 लोगों को रोजगार मिलेगा, जिसमें 25,000 रोजगार पंजाब में दिया जाना था। परन्तु हुआ क्या? **पेप्सी** ने 1992 में दावा किया कि उसने 909 लोगों को प्रत्यक्ष रोजगार प्रदान कर दिया था। 1996 में फिर दावा किया कि 2400 लोगों को रोजगार दे दिया गया—गो कि यह आंकड़ा भी 75,000 रोजगार दिए जाने के वायदे का मात्र 3.2 प्रतिशत ही था। अब दावा यह है कि अब तक 26,000 से अधिक लोगों को "अप्रत्यक्ष रोजगार" दिया जा चुका है।

अब आइए जरा इस "अप्रत्यक्ष रोजगार" की असलियत देखें। पेप्सी ने "अप्रत्यक्ष रोजगार" की जो परिभाषा गढ़ी है उसके अनुसार, वे सभी *चाय वाले, पान वाले, जूस वाले* और *ढाबे वाले* पेप्सी द्वारा पैदा किए गए "अप्रत्यक्ष रोजगार" के "कर्मचारी" हैं जो अपनी दूकानों पर उसके उत्पाद बेचते हैं। इस परिभाषा के अनुसार, आप चाहें तो, उन दूकानदारों को भी पेप्सी के "अप्रत्यक्ष रोजगार प्राप्त कर्मचारी" कह सकते हैं जिनकी दूकानों के सामने पेप्सी के बड़े-बड़े साइनबोर्ड लगे हुए हैं।

अब पेप्सी के फरेब का दूसरा पहलू भी देखें। तमिलनाडु में एक कंपनी है **फ्युचुरा पॉलीमर्स लिमिटेड,** जिसका अधिकांश स्वामित्व पेप्सी का ही है। इस कम्पनी का जोर अब इस पर लगा हुआ है कि कैसे रोजगार पैदा करने के बजाय, श्रम-शक्ति को घटाया जाए। इस कम्पनी के वरिष्ठ प्रबंधक, डा. आई.आर. सुब्बारमन का कहना है कि ज्यादा से ज्यादा कर्मचारियों की छंटनी कर उनकी जगह मशीनें लगाना जरूरी है। *मल्टीनेशनल मॉनीटर*, सितम्बर 1994 के अनुसार वह कह चुके हैं कि "हम तो हमेशा से ही अधिक से अधिक मशीनें लगाने के पक्षधर रहे हैं।"

बहरहाल, ये तो कतिपय उदाहरण हैं, विदेशी प्रत्यक्ष निवेश करने वाली कम्पनियों के जाल-फरेब भरे झूठे वायदों के। सारे के सारे विदेशी प्रत्यक्ष निवेशक इसी जालसाजी में लगे हुए हैं और अपनी मुनाफाखोरी का उल्लू सीधा कर रहे हैं। और इन्हीं के घुटनाटेकू छुटभैया साझीदार बन चुके भारतीय शासक वर्ग भी यही कर रहे हैं।

● ओमप्रकाश सिन्हा

टैक्स नीति का जुआ क्या गुल खिलायेगा भारतीय अर्थव्यवस्था में?

जब से सारी दुनिया में "भूमण्डलीकरण" की आंधी चलनी शुरू हुई, तभी से सारी दुनिया वित्त पूंजी के जुआघर में तब्दील होने लगी, और तदनुरूप भारतीय अर्थव्यवस्था भी एक वैसा ही जुआघर बन चुकी है। अभी पिछले दिनों भारत सरकार ने 1997-98 का जो बजट पेश किया, वह इस सच्चाई का और भी स्पष्ट प्रमाण हैं।

भारत सरकार ने इस बजट के तहत राजस्व वसूली के लिए जो टैक्स-नीतियां अख्तियार की है वे पूरी तरह इसी जुएं के खेल पर आधारित है। इसमें पहली बात तो यह की गयी है—यानी यह मान कर चला गया है कि टैक्स की दर घटा देने से टैक्सों के जरिये ज्यादा से ज्यादा राजस्व बटोरा जा सकता है। कहावत हैं: *आजमाये को आजमाना मूर्खता* है। अब तक सारी दुनिया में कहीं भी ऐसा नहीं हो पाया है, जिन देशों ने इसे आजमाया, उन्हें असफलता ही हाथ लगी। फिर भी हमारी सरकार जब इसे आजमाने पर आमादा है तो इसे एक गैर जिम्मेदाराना जुएबाजी की लत के अलावे और क्या कहा जा सकता है?

दूसरा जुआ सरकार ने यह खेला है कि ऋण माफी, काले धन को सफेद करने की तमाम योजनाएं लागू की हैं। भारत सरकार पहले भी कुछ इसी तरह का कर चुकी है, पर अनुभव गवाह है कि टैक्स की चोरी करने वालों ने कभी इनका कोई लाभ नहीं उठाया। और अब भी ऐसा नहीं लगता कि वे इनका कोई लाभ उठायेंगे। फिर भी सरकार उम्मीद लगाये बैठी है।

अब यदि यह मान लिया जाय कि चोरी से देश से बाहर गयी पूंजी—जो **अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष** के अनुमान के मुताबिक तकरीबन दस अरब अमेरिकी डॉलर के बराबर या उससे भी ज्यादा है—भारत लौट ही आती है तब भी यह भयानक रूप से मंहगाई बढ़ायेगी, और रुपये के विनिमय मूल्य में उछाल पैदा करेगी जिसका नतीजा यह होगा कि निर्यात मंहगे और कठिन होते जायेंगे, आयात सस्ता होने लगेगा जो निश्चित तौर पर घरेलू उत्पादन पर विपरीत असर डालेगा।

राजस्व की तुलना में ऋण अदायगी (करोड़ रु. में)

	'96-97 बजट	'96-97 (संशोधित अनुमान)	'97-98 बजट
1. ऋण की वापसी	68558	66545	74632
2. ब्याज की अदायगी	60000	58500	68000
3. ऋण संबंधी कुल अदायगी	128558	125045	142632
4. राजस्व रसीद	130345	130783	153143
5. ब्याज व राजस्व का अनुपात	46.0	44.7	44.4
6. ऋण संबंधी कुल अदायगी और राजस्व का अनुपात	98.6	95.6	93.1

स्रोत: *बजट की एक झलक 1997-98, पृष्ठ 7*

अब अगर यह दूसरी नीति सफल नहीं होती तो राजस्व वसूली का स्तर तो बढ़ने से रहा, पर सरकारी खर्च तो बढ़ेगा ही, जिसका नतीजा फिर मंहगाई का बढ़ना ही होगा।

इस प्रकार, सरकार का एक तरफ जुआ खेलने की तर्ज पर टैक्स-नीतियां लागू कर रही है, और दूसरी तरफ अपने खर्च के लिए भी ऋण लेती जा रही है। कुल ऋण की अदायगी और कुल राजस्व वसूली का अनुपात, जैसा कि नीचे की सारणी से स्पष्ट है, भयानक रूप से विस्मयकारी है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि 1997-98 का बजट और उसकी टैक्स नीतियां कुल मिलाकर सरकार की गैर जिम्मेदाराना राजकोषीय नीति के ही सूचक हैं, जो अर्थव्यवस्था को अब इस कगार पर पहुंचा चुकी है कि सरकार उसे नियंत्रित कर पाने में समर्थ नहीं सिद्ध हो सकती—खासतौर से इसलिए कि अब वह अपनी अर्थव्यवस्था की बागडोर अपने साम्राज्यवादी आकाओं के हाथों में सौंप चुकी है।

● ललित

अन्धकार को रौंद-कुचलकर
नया सवेरा लाना है।
जागो बहनो! उठो साथियो!!
नया समाज बनाना है!!
नारी सभा की ओर से जारी
आकर्षक कविता पोस्टर
और छह स्टिकर्स का सेट
पोस्टर : 5 रु., स्टिकर्स : 2 व 3 रु.

संपर्क करें : 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ-226006

"भूमण्डलीकरण" की असलियत: बढ़ती आर्थिक विषमताओं का भूमण्डलीकरण

एक बार अंग्रेज कवि रुडयार्ड किपलिंग ने कहा था: '*पूरब पूरब में है और पच्छिम पच्छिम में, और दोनों कभी नहीं मिल सकते।*' किपलिंग की यह हेकड़ी एकदम सही थी। भला जिस पच्छिमी साम्राज्यवाद की दैत्य-काया पूरब के उपनिवेशों और गुलाम देशों का मांस-मज्जा-रक्त और हाड़-चाम निचोड़-निचोड़ कर पुष्ट होती थी, उसके साथ पूरब का मिलन-अभिसार हो भी कैसे सकता था?

वैसे वह दौर प्रत्यक्ष हेकड़ीबाज साम्राज्यवाद का दौर था भी। अब वह दौर नहीं रहा। यहां तक कि परोक्ष या नव-उपनिवेशवाद का भी जमाना गुजर चुका है। अब तो प्रत्यक्ष आर्थिक नवउपनिवेशवाद या, संक्षेप में, बाजार-उपनिवेश का दौर है—खुले बाजार में बाघ और बकरी का एक घाट पर मिलन यानी "मुक्त प्रतियोगिता" का दौर है। बताने की जरूरत नहीं इसमें कौन किसको खा रहा है। परन्तु अब किपलिंग की तरह प्रत्यक्ष भोंड़ी हेकड़ी जताने की साम्राज्यवाद को जरूरत नहीं। अब तो उसके ऐसे-ऐसे नव-उदारवादी आर्थिक प्रवक्ता हो चुके हैं जो यह कह रहे हैं कि "भूमण्डलीकरण" के इस (साम्राज्यवादी) दौर में विकासशील देशों की गरीब अर्थव्यवस्थाएं विकसित देशों की धनी अर्थव्यवस्थाओं के करीब आ रही हैं। वैसे इस नव-उदारवादी अर्थशास्त्रीय दलील के विरोध में आजकल अर्थशास्त्रीय जगत में काफी कुछ कहा जा रहा है, परन्तु ये सारी की सारी बहसें वास्तविकता से कोसों दूर, महज बांझ अकादमिक बहसें बनकर रह गयी हैं, और ले-देकर यही हो रहा है कि ये कुल मिलाकर नव-उदारवादी प्रवक्ताओं को ही खुराक दे रही हैं, जो तथाकथित विरोधी 'नव-विकास सिद्धांत' के प्रवक्ताओं की नुक्ताचीनियों को अपने नव-उदारवादी आर्थिक सिद्धान्त में नग की तरह जड़ते हुए कभी यह कहते हैं कि धनी और गरीब देशों के बीच "सशर्त निकटता" बढ़ रही है, तो कभी यह कि गरीब देशों की ऊपरी आय वाली 2% आबादी धनी देशों की आय के समकक्ष आ रही है। इस बहस में यह बात सिरे से ही गुम हो जा रही है कि क्या समचुच गरीब देश "भूमण्डलीकरण" की मार्फत धनी देशों के करीब आ रहे हैं? और क्या आय के वितरण की असमानताएं कम हो रही हैं?

यदि कुछ प्रमुख आंकड़ों से बात करें तो तस्वीर एक भयानक उलट सच्चाई प्रकट करती है। **यू.एन.डी.पी.** की **मानव विकास रिपोर्ट 97** के अनुसार, दुनिया के सबसे गरीब 20% देशों का भूमण्डलीकरण आय में हिस्सा मात्र 1.1% है जो 1960 में 2.3% के आधे से भी कम रह गया है, जबकि दुनिया के 20% सबसे धनी देशों की कमाई दुनिया के सबसे गरीब 20% देशों की कमाई से 78 गुने से भी अधिक हो चुकी है, जो सन् 60' में महज 30 गुनी ही थी। वस्तुत: यह आकलन भी यू.एन.डी.पी. के "मानव विकास सूचकांक" तैयार करने की उस पद्धति पर आधारित है जिसमें निर्धारक कारकों के तौर पर केवल संभावित आयु, साक्षरता और औसत आयु को ही किया जाता है, और भारी मेहनतकश आबादी के "हाशियाकरण" और "क्षमता के दरिद्रीकरण" पर गौर ही नहीं किया जाता।

यू.एन.डी.पी. की पिछले वर्ष जारी ऐसी ही रिपोर्ट में कहा जा चुका है कि पिछले वर्ष तक दुनिया के महज 358 अमीर व्यक्तियों की परिसम्पत्तियां दुनिया की 45 प्रतिशत आबादी की कुल परिसम्पत्तियों से भी अधिक हो चुकी थीं। इस साल की स्थिति यह है कि दुनिया की चोटी की छ: फर्मों की कुल बिक्री 716 अरब डॉलर के बराबर है, जो दक्षिण एशिया, और उप-सहारा अफ्रीका के सकल घरेलू उत्पादों (जी.डी.पी.) के कुल योग से कहीं अधिक है। **मेरिल लिंच** ने अनुमान लगाया है कि दुनिया के लगभग 50 लाख धनी व्यक्तियों के पास (जो निश्चय ही धनी देशों के मूल निवासी हैं जिनमें कतिपय आप्रवासी भी शामिल हैं) प्रति व्यक्ति 50 लाख डॉलर से अधिक ही वित्तीय परिसम्पत्ति है, और ये 16,700 अरब डॉलर का नियंत्रण करते हैं (*देखें, टाइम्स ऑफ इण्डिया,* 21 अगस्त, 1997)।

तीसरी दुनिया के विकासशील देशों की अर्थव्यवस्थाओं को लूटने के लिए भारी पैमाने पर साम्राज्यवादी वित्त पूंजी का बहिर्प्रवाह हो रहा है। यू.एन.डी.पी. की ही रिपोर्ट के अनुसार, पिछले वर्ष विकसित देशों से विकासशील देशों की ओर विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (एफ.डी.आई.) के रूप में 315 अरब डॉलर की वित्त पूंजी प्रवाहित हुई, जो विश्व-व्यापार के कुल परिमाण से कहीं ज्यादा ही थी। उल्लेखनीय है कि यह भारी प्रवाह बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा किया जा रहा है, जो भारी मुनाफे और अतिमुनाफे कमा रहे हैं, और उसी अनुपात में, विकासशील देशों की अर्थव्यवस्थाएं खोखली हो रही हैं।

अब भूमण्डलीय आय-वितरण पर एक नजर डाल लें। "भूमण्डलीकरण" के चलते न सिर्फ विकसित और विकासशील देशों के बीच आय-वितरण की असमानताएं बढ़ी हैं, बल्कि देश के भीतर भी आय-वितरण की असमानताएं बढ़ी है। उल्लेखनीय है कि दुनिया की कुल आबादी का लगभग 80 प्रतिशत हिस्सा विकासशील देशों में रहता है, जबकि 1993 के आंकड़ों के अनुसार, विश्व के 23 खरब डॉलर के सकल घरेलू उत्पाद में उनका कुल हिस्सा मात्र 5 खरब डॉलर था, और शेष 18 खरब डॉलर विकसित देशों के कब्जे में था। इसका नतीजा आज यह है कि 70 विकासशील देशों की प्रति व्यक्ति आय 1980 के स्तर से कम, तथा 43 देशों की आय तो 1970 के स्तर से भी कम हो गयी है। 1990-93 के दौरान पूर्व समाजवादी देशों की आय में भी 20 प्रतिशत की गिरावट हुई, और यह प्रवृत्ति आज भी जारी है।

"भूमण्डलीकरण" के चलते एक देश के भीतर भी आय-वितरण की असमानताएं बढ़ी हैं। नोबेल पुरस्कार विजेता अर्थशास्त्री राबर्ट एम. सोलोव ने उत्तरी अमेरिका और यूरोप के देशों में प्रति व्यक्ति आय के वितरण की असमानताओं का जो ब्यौरा दिया है, उससे पता चलता है कि अमेरिका में सबसे गरीब तबके की प्रति व्यक्ति आय अमेरिका के प्रति व्यक्ति औसत राष्ट्रीय आय के एक चौथाई से भी कम है। अमेरिकी जनगणना ब्यूरो के अनुसार, वहां सबसे धनी 20 प्रतिशत परिवारों की आय सबसे गरीब 20 प्रतिशत परिवारों की आय से 14.7 गुनी है। इन्हीं सब बातों को मद्देनजर रखते हुए यू.एन.डी.पी. की मानव विकास रिपोर्ट 1996 को भी यह कहना पड़ा है कि मौजूदा भूमण्डलीय आर्थिक विकास की प्रक्रिया "निर्मम" है जो आगे चलकर एक ऐसी दुनिया को जन्म देने वाली है जो अत्यंत विसंगतिपूर्ण, अमानवीय और आर्थिक असमानताओं से भरी होगी।

परन्तु पूंजीवाद इसके अलावा और कर ही क्या सकता है। हम लेनिन को याद करें, तो, यह कहना एकदम सही और पहले से भी कहीं अधिक प्रासंगिक है कि यदि पूंजीवाद ऐसा न करे, तो वह पूंजीवाद रह ही नहीं जायेगा। इस मामले में किपलिंग धूर्त नहीं था, परन्तु आज के तथाकथित नव-उदारवादी अर्थशास्त्री निहायत धूर्त हैं जो आंकड़ों की बाजीगरी करके सच्चाई की एक भ्रामक तस्वीर पेश करने की कसरत करते रहते हैं।

● योगेश पन्त

क्रान्तिकारी मजदूरों, कम्युनिस्ट कार्यकर्ताओं, जन संगठनकर्ताओं के लिए एक बेहद जरूरी, विचारोत्तेजक व मार्गदर्शक पुस्तिका

कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढांचा

• लेनिन

बिगुल पुस्तिका-एक मूल्य - 5 रुपये

प्रतियों के लिए लिखें :

राहुल फाउण्डेशन
3/274, विश्वास खण्ड, गोमतीनगर, लखनऊ-226 010

भारत में गरीबी दूर करने के लिए विश्वबैंक की "सीख"

विश्व बैंक की यह आजमायी हुई नीति है कि जब उसकी 'नीतियों' पर चलते हुए किसी देश की माली हालत और खराब होने लगती है, तो वह और जोर-शोर से फिर उन्हीं 'नीतियों' की वकालत करने लगता है। पिछले छः वर्षों से उसकी सुझायी "नीतियों" पर चलते हुए भारत अपनी अर्थव्यवस्था का जो "संरचनात्मक समायोजन" कर रहा है, उसके फलस्वरूप देश में गरीबी दूर होने के बजाय और बढ़ती ही जा रही है। फिर भी विश्व बैंक का यही कहना है कि ये "नीतियां" भारत के "30 करोड़ गरीबों के जीवन-स्तर में सुधार के लिए वचनबद्ध हैं।"

यह बात विश्व बैंक ने अपनी हाल में प्रकाशित एक रिपोर्ट में कही है, जिसका शीर्षक है: **"*इण्डिया, अचीवमेण्ट्स एण्ड चैलेंजेज़ इन रिड्यूसिंग पावर्टी*"।** इस रिपोर्ट में भारत की गरीबी दूर करने की वही चिरपरिचित "सीख" दी गयी है, जो वह अभी तक देता आया है, मसलन,

- आर्थिक 'विकास' गरीबी दूर करने की कुंजी है।
- यह आर्थिक विकास सबसे अच्छे ढंग से उसी प्रकार की आर्थिक नीतियों द्वारा किया जा सकता है जो 1991 से लागू हैं, जिनका जोर राजकीय हस्तक्षेप के बजाय, भीतरी और बाहरी बाजारों के उदारीकरण और निजी पूंजी को प्रोत्साहन देने पर है।
- जहां सब्सिडियां और सरकारी सहायता गरीबी को दूर नहीं करतीं, वहीं अवरचना (इनफ्रास्ट्रक्चर) और मानव-संसाधनों में निवेश गरीबी दूर करने में प्रभावी सिद्ध होता है।
- गरीबी दूर करने की योजनाएं खर्च के अनुरूप फलदायी नहीं होती, इसलिए उन्हें अधिकाधिक तौर पर बहुत गरीब तबकों पर ही केन्द्रित रखना चाहिए।

अब चूंकि विश्व बैंक लगातार इन्हीं जुमलेबाजियों को फेंटता रहता है, इसलिए इन पर तनिक विचार कर लेना जरूरी है। पहली "सीख" जो विश्व बैंक देता है, वह यह है कि गरीबी दूर करने की कुंजी आर्थिक विकास ही है। लेकिन वह यह क्यों नहीं बताता कि किस तरह का आर्थिक विकास? किसको केन्द्र में रखकर किया जाने वाला विकास? यदि मात्र आर्थिक विकास से ही गरीबी दूर हो जाती तो आज भी अमेरिका में 25 प्रतिशत आबादी गरीबी-रेखा से नीचे क्यों है? इस तथाकथित आर्थिक विकास में मेहनतकश आबादी की जगह कहां होनी चाहिए और कहां है – इसकी चर्चा **विश्व बैंक** क्यों नहीं करता?

दूसरी "सीख" तो एक गोयबेल्सी झूठ के अलावा और कुछ नहीं है। सन् 1991-92 से चल रहे "आर्थिक सुधारों" की बदौलत देश में अब तक अर्थव्यवस्था के विकास की जो औसत दर है वह "सुधारों" के लागू होने से दस वर्ष पहले की आर्थिक-विकास दर से भी कम है। बेशक 1993 से आर्थिक विकास-दर कुछ बढ़ी है, परन्तु इसका कारण "नयी आर्थिक नीतियां" नहीं, बल्कि वह पुनर्नवीनीकृत राजकोषीय बढ़त रही है, जिसका गैर-टिकाऊपन 1980 के दशक में ही साबित हो चुका है। और जहां तक भीतरी और बाहरी बाजारों पर एवं निजी पूंजी पर "उदारीकरण" के जोर दिए जाने की बात है, तो इसमें पहली बात तो यह है कि भारतीय नियति की प्रवृत्ति घटने की ही है, और जो चीजें आयात हो रही हैं वे ज्यादातर मुट्ठीभर विशिष्टवर्गीय और मध्यमवर्गीय आबादी के लिए ही हैं। आज पूरे भारतीय औद्योगिक जगत में मंदी और गिरावट का आलम छाया हुआ है। क्यों? नीतियां तो वे ही लागू हैं जिनकी जुगाली विश्व-बैंक कर रहा है? और जहां तक गरीबी दूर होने की बात है, तो यह तो स्वयं विश्व बैंक भी स्वीकार करता हैं कि दक्षिण के मात्र चार राज्यों को छोड़कर सर्वत्र ग्रामीण गरीबी बढ़ी ही है। लेकिन *नेशनल सैम्पल सर्वे* की इस रिपोर्ट को विश्व बैंक "विरल नमूना" कहकर लीपापोती करने की कोशिश करता है।

अब सब्सिडी और सरकारी सहायता की बात पर आयें। विश्व बैंक अमेरिका और यूरोपीय संघ को सब्सिडी और सरकारी सहायता में कटौती करने की सलाह क्यों नहीं देता, जो अपने कृषि उत्पादनों को भारी सब्सिडियां देते हैं, और विकासशील देशों से किये जाने वाले कृषि-आयातों को हतोत्साहित करने के लिए तरह-तरह के गैर-टेरिफ अवरोध खड़े करते रहते हैं? वैसे सब्सिडियों का मामला कोई ऐसा है भी नहीं जिसे वास्तव में आर्थिक सहायता कहा जा सके। इसकी असलियत तो यह है कि सरकारें किसी भी चीज पर जो तथाकथित सब्सिडी देती है, वह उस लूट का एक मामूली हिस्सा भर ही है जिसे वह तरह-तरह के टैक्सों के जरिये पहले ही वसूल कर चुकी होती है। लेकिन विश्व बैंक को यही सब्सिडी अखरती है–और वह भी सिर्फ विकासशील देशों के संदर्भ में, विकसित साम्राज्यवादी देशों के संदर्भ में नहीं! आखिर क्यों नहीं, वह उन्हीं की चाकर संस्था जो है, और कहावत है कि *मुर्दार हंसुआ भी अपनी ही ओर खींचता है।* रही बात अवरचना (इन्फ्रास्ट्रक्चर) और मानव संसाधनों में निवेश करने की, तो यह पूंजीवादी-साम्राज्यवादी शोषण की नव-उदारवादी अर्थशास्त्रीय हिकमत के अलावा और कुछ नहीं हैं—अवरचना में निवेश पूंजीवादी उत्पादन और वितरण को सुविधा प्रदान करने के लिए, तथा मानव-संसाधनों में निवेश मानव को मुनाफा कमाने का माल बना देने के लिए।

बेशक गरीबी दूर करने की योजनाओं को ज्यादा से ज्यादा गरीब तबकों पर ही केंद्रित रखने की बात ऊपरी तौर पर ठीक लग सकती है, परन्तु इसकी असलियत यह है कि इसी बहाने गरीब तबकों को मुहैया की जाने वाली तथाकथित योजनाओं और उन पर होने वाले व्यय में भारी कटौती कर दी जाये और चूंकि ज्यादातर गरीब तबकों की सौदेबाजी की क्षमता बहुत कम होती है, और जिस चक्रव्यूह जैसी प्रणाली द्वारा ये योजनाएं संचालित की जाती हैं। उसमें गरीब तबकों की पहुंच ही नहीं बन पाती, लिहाजा इसका व्यावहारिक मतलब यही होगा—जो अभी भी हो रहा है—कि वे इनसे वास्वत में वंचित ही कर दिए जाएं।

बहरहाल, विश्व-पूंजीवाद के लेफ्टिनेंट का काम कर रहे विश्व बैंक से इससे इतर और आशा ही क्या की जा सकती है?

● मीनाक्षी

जुल्म के खिलाफ सिर्फ गुस्सा या सिर्फ बगावत ही काफी नहीं है। क्रान्ति एक सुनियोजित क्रिया है जिसमें सुसंगठित रूप से लाखों-करोड़ों लोग हिस्सा लेते हैं। क्रान्ति में भाग लेने के लिए क्रान्ति के विज्ञान से परिचित होना जरूरी है।

यह पुस्तिका अवश्य पढ़ें...

क्रान्ति का विज्ञान

○ लेनी वुल्फ

मूल्य : 10 रुपये

परिकल्पना

परिकल्पना से शीघ्र प्रकाशित होने वाली कुछ महत्वपूर्ण पुस्तकें

○ विचारों की सान पर...
(शहीदे आजम भगतसिंह के चुने हुए लेख व वक्तव्य)

○ पाश की चुनी हुई कविताएं

○ उर्दू की प्रतिनिधि प्रगतिशील कहानियां
संपादन व अनुवाद : शकील सिद्दीकी

○ समर तो शेष है...
(इप्टा के दौर से लेकर अब तक के चुनिन्दा क्रान्तिकारी गीतों का अनन्य संकलन)

3/274, विश्वास खण्ड, गोमतीनगर, लखनऊ-226 010

शिक्षा

"सबको प्राथमिक शिक्षा" और "बाल कल्याण योजनाएं": जनता को गुमराह करने के मुखौटे

हमारे देश में "सबको प्राथमिक शिक्षा" देने का अभियान सन्' 80 के दशक के उत्तरार्द्ध से ही चलाया जा रहा है, जिसका उद्देश्य है कि स्कूल जाने की उम्र के सभी बच्चे प्राथमिक स्तर तक साक्षरता और अंक-गणना की जानकारी अवश्य पूरी कर लें।

तब से करीब एक दशक पूरा होने को आ रहा है, लेकिन अभी भी दर्जा एक में स्कूल जाना शुरू करने वाले बच्चों में 40 प्रतिशत ऐसे हैं जो प्राथमिक शिक्षा पूरी करने से पहले ही पढ़ाई छोड़ देते हैं। सरकारी स्रोतों के आधार पर, 1994 में ही *मानव विकास रिपोर्ट* में यह बताया जा चुका है कि दर्जा एक में पढ़ाई शुरू करने वाले दस बच्चों में से चार से अधिक ऐसे बच्चे निकलते ही हैं जो दर्जा पांच पूरा करने से पहले ही पढ़ाई छोड़कर रोजी-रोटी के जुगाड़ में लग जाते हैं।

सवाल उठता है कि ऐसा क्यों है कि जिन बच्चों को स्कूल में होना चाहिए वे अपनी कच्ची उम्र में ही रोजी-रोटी के जुगाड़ में लग जाते हैं।

अब यह तो माना नहीं जा सकता कि मनबहकी के कारण वे ऐसा करते हैं, क्योंकि यदि यही मान लिया जाये कि प्राथमिक शिक्षा पूरी करने से पहले ही पढ़ाई छोड़ देने वाले बच्चे मनबहक होते हैं या उनका पढ़ाई में मन नहीं लगता, तो वे जिन कामों में लगते हैं—मसलन चायखानों, ढाबों आदि में प्लेटें धोने, बर्तन मांजने आदि के काम—वे कोई ऐसे मनोरंजक काम तो नहीं कि उनकी ओर वे बरबस खिंच जाते हैं। यदि अपवादस्वरूप कुछ ऐसे मामलों को छोड़ भी दें जो "बिगड़ैल बच्चों" के मामले कहे जाते हैं, हालांकि यह सवाल भी महत्वपूर्ण तो है ही कि बच्चे "बिगड़ैल" क्यों हो जाते हैं, तो भी अधिकतर पढ़ाई छोड़कर रोजी-रोटी के धन्धे में लग जाने वाले कमसिन उम्र के बच्चों की अपनी पारिवारिक आर्थिक मजबूरियां तो हैं ही जो इस बुनियादी सच्चाई को प्रकट करती हैं कि *'पेट की खुराक दिमाग की खुराक से कहीं पहले और ज्यादा जरूरी है'*।

बेशक, आज बाल-श्रम रोकने के लिए सारी दुनिया में गर्मागर्म चर्चाएं हो रही हैं, और भारत सरकार भी देश में बाल-श्रम रोकने के लिए पूरी तरह "कटिबद्ध" है। लेकिन बाल-श्रम करने की मजबूरी झेलने वाले बच्चों के लिए सरकार के पास क्या विकल्प हैं? कहने के लिए तो सरकार तरह-तरह की बाल-पोषाहार योजनाएं चला रही हैं, लेकिन उनकी भी हकीकत क्या हैं? अव्वल तो इन योजनाओं के तहत दिये जाने वाले बाल-पोषाहार निहायत नाकाफी हैं, और इतने घटिया किस्म के हैं कि उन्हें बाल-पोषाहार की जगह "बाल-कुपोषाहार" कहना ही ज्यादा उचित होगा; और उसमें भी योजनाओं को क्रियान्वित करने में लगे अफसरों से लेकर अन्य कर्मचारियों तक इतना भ्रष्टाचार व्याप्त हैं कि उनका काफी कुछ हिस्सा जरूरतमंद बच्चों तक पहुंचने से पहले ही इन भ्रष्टाचारियों के पेट में चला जाता है। **यूनिसेफ, केअर, ऑक्सफैम** और तमाम जर्मन और अमेरिकन संस्थाएं भी ऐसी योजनाएं "इम्पावरमेण्ट ऑफ पुअर चिल्ड्रेन", "पुअर चिल्ड्रेन लिटरेसी एण्ड न्यूमरेसी प्रोग्राम" आदि जैसे नामों से खासतौर से पिछड़े और आदिवासी अंचलों में चला रही हैं। परन्तु ये सभी की सभी संस्थाएं पूंजीवादी-साम्राज्यवादी लुटेरों की ही चाकर संस्थाएं हैं जो पूंजीवादी-साम्राज्यवादी लूट पर "परोपकार" और "दानशीलता" का पर्दा डालकर गरीब आबादी को गुमराह करने का काम करती हैं।

और सबसे बड़ी बात तो यह है कि ये तथाकथित "कल्याणकारी" और "परोपकारी" योजनाएं गरीब बच्चों की गरीबी को मानो "प्राकृतिक" या "सहज" मानती हैं, और गरीब बच्चों को खैरात खाने का मोहताज बनाती हैं। वस्तुत: यह तो व्यवस्था की ही जिम्मेदारी बनती है कि हर बच्चे को शिक्षा और हर नागरिक को रोजी-रोटी की गारण्टी दे। परन्तु यह काम लूट और शोषण पर "लोक कल्याण" का मुखौटा लगाने वाली पूंजीवादी व्यवस्था हर्गिज नहीं कर सकती। इसे तो एक सही मायने में क्रान्तिकारी लोकशाही ही कर सकती है, और वह तभी स्थापित हो सकती है जब सही मायने में सारी सत्ता मेहनतकशों की हो। यद्यपि इस तरह का कोई असरदार अखिल भारतीय या यहां तक कि व्यापक क्षेत्रीय संगठन भी अभी वजूद में नहीं आ सका है, जो इस दिशा में संघर्ष करने के लिए मेहनतकश जनता को संगठित करे, पर इसके स्वर तो यत्र-तत्र सुनायी ही देने लगे हैं। समाज की परिवर्तनकामी ताकतों, क्रान्तिकारी बुद्धिजीवियों एवं सभी सचेत नागरिकों को इस पर अवश्य गंभीरता से सोचना चाहिए और तदनुरूप अपने कार्यभार तय करने चाहिए।

● **मुकुल**

युगद्रष्टा क्रान्तिकारी भगतसिंह की शहादत की 67वीं वर्षगांठ (23 मार्च) के अवसर पर

परिकल्पना की ओर से विशेष भेंट

शहीदे आज़म की जेल नोटबुक

इतिहास की एक दुर्लभ धरोहर!

हिन्दी में पहली बार

एक शोधपरक परिचयात्मक भूमिका के साथ

मूल्य : 100 रु. (पेपरबैक)

225 रु. (सजिल्द)

इस पते पर लिखें और धनादेश या ड्राफ्ट भेजें :

परिकल्पना

3/274, विश्वास खण्ड, गोमतीनगर,

लखनऊ-226 010

आपकी बात

(पृष्ठ 3 का शेष)

— पत्रिका नियमित रूप से मुझे मिलती रहती है। मैं चाहती हूं कि पत्रिका मेरे नए पते पर भी आये। ... पत्रिका में रचनात्मक सहयोग देना बाकी है जो भविष्य में जरूर दूंगी।

— नासिरा शर्मा, 108 उत्तराखण्ड, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

— सदृश्य आंकड़ों पर आधारित 'अपनी बात' (जुलाई-अक्टूबर '97) पढ़कर एक बार फिर मन भारतीय नौकरशाहों एवं छद्म नेताओं के प्रति घृणा से भर उठा। 'मेरा भारत महान' का नारा देने वाले इस कटु सच्चाई से अधिक दिनों तक मुंह नहीं मोड़ सकते। भारत की भोली-भाली जनता को दिग्भ्रमित करने वालों तथा किसानों-मजदूरों का खून चूसने वालों को आने वाले दिनों की मुसीबतों का सामना करने के लिए तैयार रहना चाहिए।

भारतीय संविधान के स्वरूप पर की गई आपकी टिप्पणियां ठोस सच्चाई है। वास्तव में यह संविधान निरंकुश बुर्जुआ अधिनायकवाद की स्थापना में सहायक है, और चोर-चुहाड़ नेता इस काम को बड़े ढंग से कर रहे हैं। अन्य लेख भी सराहनीय रहे।

— इरशाद अहमद, डीजल लाबी, सोनपुर, सारन (बिहार)

— भाई भारत यायावर के सौजन्य से 'दायित्वबोध' की सूचना मिली। यहां आता नहीं है। अंक की प्रतीक्षा करूंगा। समय व साहित्य को बचाने के प्रयासों को नमन व नववर्ष की शुभकामनाएं।

— विनोद विट्ठल, नागौरी गेट के बाहर, राम मोहल्ला-1, जोधपुर (राजस्थान)

माओ त्से-तुङ की कुछ कविताएं

(पृष्ठ 36 का शेष)

एक शाखा मिनशान पर्वतमाला भी है, जिसका उल्लेख कवि ने अपनी टिप्पणी में किया है (देखें टिप्पणी सं.2)।

यह कविता इतिहास-प्रसिद्ध **लम्बे अभियान** (लांग मार्च) के दौरान तब लिखी गई थी, जब अक्टूबर 1935 में **माओ त्से-तुङ** की कमान में केन्द्रीय लाल सेना ने कानसू के पूर्वी भाग से निङश्या के दक्षिणी भाग में प्रवेश करके ल्यूफान पर्वत में दुश्मन की घेरेबंदी को तोड़ डाला था और विजयपूर्वक उत्तरी शेनशी के क्रान्तिकारी आधार-क्षेत्र में जा पहुंची थी। अभियान के समापन के महीने में लिखी गई यह कविता सर्वहारा शौर्य, युयुत्सा, जनता की इतिहास-निर्मात्री शक्ति में अटूट आस्था तथा सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद की भावना को स्वर देती है।

2. इस बिम्ब के बारे में माओ त्से-तुङ ने स्वयं जो टिप्पणी दी है, वह निम्नलिखित है: *"एक प्राचीन कवि ने कहा है: 'जब तीस लाख धवल-जेड अजदहे लड़ रहे थे, तो सारा आकाश उनके छिन्न-भिन्न केंचुलों से भर गया था।' इस प्रकार उन्होंने उड़ती हुई बर्फ का वर्णन किया है। यहां मैंने हिमाच्छादित पर्वतों का वर्णन करने के लिए उक्त बिम्ब को ग्रहण कर लिया है। ग्रीष्मकाल में यदि आप मिनशान पर्वत पर चढ़ें तो आपको पर्वतों का जमघटा-सा दिखाई देगा, बिल्कुल श्वेत, मानो वे नृत्य में रत हों। स्थानीय जनता में यह किंवदन्ती प्रचलित है कि वर्षों पहले जब वानरराज यहां से गुजरा था, तो ये सभी पर्वत आग की ज्वालाओं में लिपटे हुए थे। किन्तु वानरराज ने ताड़ के पत्ते के पंखे से इन ज्वालाओं को बुझा दिया था और इस प्रकार ये पर्वत श्वेत बन गये थे।"*

ल्यूफान पर्वत

1. इस कविता की पृष्ठभूमि भी वही है जो *'कुनलुन'* कविता की। दोनों के लिखे जाने का समय भी एक ही है। ल्यूफान निङ श्या हेइ स्वायत्त प्रदेश के दक्षिण में और कानसू के पूर्व में स्थित एक पर्वत है। लम्बे अभियान के विशिष्ट संदर्भ में इसकी चर्चा पूर्ववर्ती कविता की टिप्पणी-1 में आ चुकी है।

2. चीन के प्राचीन ग्रंथों में वर्णित एक राक्षस। यहां कवि का अभिप्राय च्याङ काई-शेक से है।

ल्यू या-त्जू को उत्तर

1. यह कविता अप्रैल 1949 में लिखी गई थी। यही वह समय था जब चीनी जन-मुक्ति सेना ने बलपूर्वक याङत्सी नदी पार की और 23 अप्रैल को नानकिङ को मुक्त करा लिया। इस प्रकार क्वोमिन्ताङ के 22 वर्ष के प्रतिक्रियावादी शासन का अन्त हो गया।

कवि **ल्यू या-त्जू** (1987-1958ई.) च्याङसू प्रांत की ऊच्याङ काउंटी के निवासी थे। 1949 में चीन लोक गणराज्य की स्थापना के बाद ल्यू या-त्जू को केन्द्रीय जन सरकार परिषद का सदस्य और राष्ट्रीय जन प्रतिनिधि सभा का स्थाई समिति का सदस्य चुन लिया गया।

2. पेकिङ के पश्चिमी उपनगर में स्थित कुनमिङ झील।

3. चच्याङ प्रान्त की च्येनताङ नदी का ऊपरी भाग।

ल्यू या-त्जू की कविता

1. च्याङसू प्रान्त की ऊच्याङ काउंटी में स्थित झील, जिसके उत्तरी तट पर कवि ल्यू या-त्जू का जन्मस्थान हैं।

ल्यू या-त्जू को उत्तर

1. यह कविता अक्टूबर, 1950 में राष्ट्रीय दिवस समारोह के दिन लिखी गई थी, जब चीन लोक गणराज्य की स्थापना हुए ठीक एक वर्ष हुआ था।

क्रान्तिपूर्व चीन के काले दिनों और दीर्घकालीक लोक युद्ध के दौर की यंत्रणाओं, कुर्बानियों और शौर्य-प्रदर्शन की स्मृतियों की पृष्ठभूमि में यह कविता क्रान्ति के उल्लासमय प्रभाव और निर्बंध जनाकांक्षाओं के उछाह को स्वर देती है।

2. *रक्तिम धरा* का अभिप्राय यहां चीन से है।

3. यह वर्तमान सिनच्याङ बेवुर स्वायत्त प्रदेश में स्थित खोतान व उसके आसपास के इलाके का पुराना नाम है, जहां के लोग नाचने-गाने में बहुत निपुण होते हैं। यहां कवि का अभिप्राय चीन लोक गणराज्य की स्थापना की पहली वर्षगांठ के उपलक्ष्य में अपना प्रोग्राम दिखाने पेकिङ आई सिनच्याङ की कला-मंडली से है।

ल्यू या-त्जू की कविता

1. कवि ल्यू या-त्जू की टिप्पणी के अनुसार, *पूनम का चांद* सिनच्याङ में कजाक जति के एक लोकगीत का नाम है।

तैरना

1. यह कविता क्रान्तिकारी चीन के इतिहास के एक अत्यंत महत्वपूर्ण संक्रमण-काल (1955-56) की स्पिरिट को, उसकी चुनौतियों को और उस दौरान विभिन्न धरातलों पर जारी वर्ग संघर्ष में जूझने की सर्वहारा युयुत्सा को स्वर देती है तथा साथ ही भविष्य के प्रति अमिट आशावाद और स्वप्नदर्शी कल्पनाशीलता को भी।

नई जनवादी क्रान्ति के बाद समाजवादी क्रान्ति एवं निर्माण के काम को 1955 में एक नया संवेग मिला। स्वयं **माओ** के ही शब्दों में, *"चीन में 1955 का साल समाजवाद और पूंजीवाद के बीच के संघर्ष में फैसले का साल था।"* 1953 में पहली पंचवर्षीय योजना की शुरुआत होने के बाद गांवों में 'पारस्परिक सहायता टीमों' से 'अर्द्धसमाजवादी' कृषि-उत्पादक सहकारी फार्मों में रूपान्तरण का काम शुरू हो चुका था। 'अर्द्धसमाजवादी' इन अर्थों में कि इन सहकारी फार्मों की आय का बंटवारा अंशत: सदस्यों के श्रम के आधार पर और अंशत: उनके द्वारा लगाई गई पूंजी और जमीन के हिसाब से होता था। जुलाई 1955 तक चीन के किसान परिवारों में से सिर्फ पन्द्रह प्रतिशत ही ऐसे सहकारी उपक्रमों में संगठित हो सके थे। 31 जुलाई,1955 को माओ ने सामूहिकीकरण की रफ्तार तेज करने का जो आह्वान किया उसके चलते इस प्रक्रिया ने चमत्कारी रफ्तार पकड़ ली। 1956 तक चीन में कृषि, दस्तकारी बड़े उद्योगों और वाणिज्य के क्षेत्र में उत्पादन के साधनों के मिल्कियत के समाजवादी रूपान्तरण का काम मुख्य तौर से पूरा हो चुका था। 1956 आते-आते अब माओ का मुख्य जोर इस बात पर था कि सहकारिता के प्रबंधन में उच्च मध्यम किसानों की मुख्य भूमिका को गरीब और भूमिहीनों के द्वारा विस्थापित कर दिया जाये तथा कृषि फार्मों की आय का वितरण सदस्यों में सिर्फ उनके द्वारा किये गये श्रम के हिसाब से हो। यह प्रक्रिया भी तेज गति से आगे बढ़ी और वह पृष्ठभूमि तैयार हो गई। जिसके आधार पर चीन की किसान आबादी तीन वर्षों बाद कम्यून बनाने के महान साहसिक प्रयोग में उतर सकी। 1955-56 के जाड़े के दौरान ही माओ ने उद्योगों के समाजवादी आधार पर निर्माण के क्षेत्र में भी **'एक अग्रवर्ती छलांग'** का आह्वान किया था, जो दो वर्षों बाद शुरू होने वाली **'महान अग्रवर्ती छलांग'** (ग्रेट लीप फॉरवर्ड) की पूर्वपीठिका तैयार करने का ही एक हिस्सा था। सोवियत प्रयोग से अलग, इस दौर में माओ ने इस बात पर जोर दिया कि उद्योग का समाजवादी रूपांतरण एवं विकास कृषि की कीमत पर नहीं बल्कि उसके साथ-साथ होना चाहिए, वर्ना समाजवादी समाज में वर्ग विभेद का नया आधार तैयार होने लगेगा।

1956 में ही माओ ने समाजवादी क्रान्ति की वैकल्पिक रणनीति प्रस्तुत करने की शुरुआत *'दस मुख्य संबंधों के बारे में'* शीर्षक प्रसिद्ध लेख लिखकर की। इस समय तक वे स्पष्टत: इस नतीजे पर पहुंच चुके थे कि निजी स्वामित्व के समाजवादी रूपान्तरण का काम पूरा हो जाने के बाद भी समाज में वर्ग-अन्तरविरोध मौजूद रहते हैं और वर्ग संघर्ष ही समाजवाद की कुंजीभूत कड़ी होता है। इसके विपरीत **ल्यू शाओ-ची** आदि की रहनुमाई में पार्टी के भीतर ही एक दूसरा धड़ा भी मौजूद था जो *'उत्पादक शक्तियों के विकास'* के सिद्धांत का प्रवर्तन करते हुए वर्ग संघर्ष को खारिज कर रहा था।

विश्व कम्युनिस्ट आंदोलन में भी **स्तालिन** की मृत्यु के बाद **खुश्चेव** के नेतृत्व में तेजी से उभर रहा संशोधनवाद चीनी क्रान्ति के समक्ष बाहर से गंभीर समस्याएं उत्पन्न करने के साथ ही चीनी पार्टी

के भीतर-जारी दो लाइनों के संघर्ष में भी संशोधनवादी लाइन को बल प्रदान कर रहा था। बीसवीं कांग्रेस में अपने कुख्यात गुप्त रिपोर्ट में स्तालिन पर हमले की आड़ लेकर खुश्चेव वस्तुत: समाजवाद पर हमले की शुरुआत कर चुका था। अप्रैल, 1956 में *'सर्वहारा अधिनायकत्व के ऐतिहासिक अनुभव के बारे में'* नामक संपादकीय टिप्पणी लिखकर चीनी पार्टी ने जवाबी कार्रवाई भी शुरू कर दी थी। उधर विश्व स्तर पर शीतयुद्ध का घटाटोप सघनतम था। अमेरिकी साम्राज्यवाद चतुर्दिक आक्रामक था। हंगरी में प्रतिक्रान्तिकारी उभार भी इसी वर्ष हुआ था।

अभूतपूर्व संकट के इसी दौर में माओ ने *'सौ फूलों को खिलने दो और हजारों विचारों को एक दूसरे से टकराने दो'* का नारा देकर आर्थिक-सामाजिक क्षेत्र के साथ ही विचाराधारात्मक राजनीतिक-सांस्कृतिक क्षेत्र में भी वर्ग-संघर्ष के उस नये उन्नत चरण का सूत्रपात कर दिया था जो आगे **'महान अग्रवर्ती छलांग'** के रूप में अपने शिखर पर जा पहुंचा था।

'तैरना' कविता इस कठिन दौर में सर्वहारा शौर्य, आशावाद और भविष्य के प्रति अडिग विश्वास को प्रकट करती है। याङत्सी महानदी को तैर कर पार करने का बिम्ब मानो उक्त कठिन दौर के वर्ग संघर्ष से जूझने और धारा के विरुद्ध तैरने का सूचक है। कवि का खुले आकाश में दूर-दूर तक देखना क्रान्तिकारी कल्पनाशीलता और दूर-दृष्टि का परिचायक है। तूफानी हवाओं और लहरों का आह्वान वर्ग-संघर्ष का आह्वान है और इन लहरों के बीच निश्चिन्त होना बीहड़ सघर्षों में जीने की क्रान्तिकारी आदत की अभिव्यक्ति है। *"यूं चीजें बहती जाती हैं अविरल गति से"*–यह इतिहास की सतत् परिवर्तनशीलता के प्रति विज्ञान-सम्मत आस्था को स्वर देता है।

कवि तूफानों में अविचल अडिग पर्वतों के रूप में क्रान्तिकारी जनता और कम्युनिस्ट पार्टी को देखता है। *"पश्चिम की ओर बहती प्रतिकूल धारा"* में दोहरे अर्थ संकेत हैं जो चीनी पार्टी के भीतर के संशोधनवादियों की ओर भी इंगित करते हैं और पश्चिम के समक्ष घुटने टेकने की ओर आतुर खुश्चेव की ओर भी। इस प्रतिकूल धारा में खड़ी पत्थर की दीवार के रूप में चीन के क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग और उसकी पार्टी को देखा गया है।

कविता का मूल भाव यह है कि इन तमाम प्रतिकूल स्थितियों में भी चीन में युगांतरकारी समाजवादी रूपान्तरण का काम निर्बाध रूप से जारी रहेगा।

2. युद्धरत राज्य काल का एक राज्य, जिसका क्षेत्र मुख्य रूप से आज के हुए और हुनान प्रान्तों में फैला हुआ है।

3. यहां ऊहान के याङत्सी पुल का उल्लेख है, जो उन दिनों निर्माणाधीन था।

4. सेचुआन प्रान्त की ऊशान काउंटी के दक्षिण-पूर्व में स्थित एक पर्वत, जिसकी चोटी का नाम देवी शिखर है। एक पौराणिक कहानी के अनुसार, मेघ और वर्षा की देवी यही निवास करती है।

ली शु-ई को उत्तर

1. **कामरेड ली शू-ई** पहले हुनान प्रान्त के चाङशा शहर के नं.10 मिडिल स्कूल में चीनी भाषा की अध्यापिका थीं। 1957 के बसंत में अपने शहीद पति **ल्यू चिह-सुन** की स्मृति में लिखी अपनी एक कविता माओ त्से-तुङ के पास भेजी। ल्यू चिह-सुन 1932 के युद्ध के दौरान शहीद हुए थे। ल्यू चिह-सुन माओ के पुराने सहयोद्धा थे। 1923 में वे चीनी कम्युनिस्ट पार्टी में शामिल हुए और बाद में हुनान प्रान्त के किसान संघ के महासचिव भी रहे। 1927 में उन्होंने "1 अगस्त" नानचाङ विद्रोह में भाग लिया। 1932 में वे छुपे प्रान्त के हुङहू क्षेत्र में चलाई गई मुहिम में खेत रहे।

ली शू-ई की कविता के उत्तर में माओ ने ल्यू चिह-सुन और अपनी शहीद पत्नी **याङ काइ-हुई** (1901-1930ई.) को याद करते हुए यह कविता लिखी। याङ काइ-हुई 1921 में चीनी कम्युनिस्ट पार्टी में शामिल हुई थीं। 1923 में उन्होंने माओ त्से-तुङ के साथ चाङशा, शंघाई, शाओशान, क्वाङचओ और ऊहान आदि स्थानों पर मजदूरों, किसानों और महिलाओं के आंदोलन में काम किया। 1925 में वे माओ के साथ शाओशान लौट गईं, जहां उन्होंने पार्टी-संगठन कायम करने और किसान संघर्ष चलाने में माओ की मदद की। 1927 में क्रान्ति की असफलता के बाद, माओ क्रान्तिकारी सशस्त्र सेना के साथ चिङकाङशान पर्वत पर चले गये और कामरेड याङ काई-हुई उनके आदेशानुसार चाङशा में पार्टी की भूमिगत गतिविधियों में और उस इलाके में किसानों का सशस्त्र संघर्ष संगठित करने के काम में लगी रहीं। 1930 में प्रतिक्रियावादी क्वोमिन्ताङ ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया। दुश्मन के सामने उन्होंने असाधारण साहस और निर्भिकता प्रदर्शित की और वीरता के साथ अपने प्राण न्यौछावर कर दिये।

इस कविता के संदर्भ में एक उल्लेखनीय तथ्य यह भी है कि याङ काइ-हुई ली-शुई की सहपाठिन और घनिष्ठ मित्र भी थीं।

2. और 3. **ल्यू** और **याङ** जो वास्तव में गोत्रनाम हैं, चीनी भाषा में क्रमश: विलो (भिंसा) और पॉपलर वृक्षों की संज्ञा भी हैं। इस दोहरे अर्थसंकेत का माओ ने काव्याभिव्यंजना के रूप में खूबसूरत इस्तेमाल किया है।

4. चीनी मिथक-शास्त्र के हिसाब से नवां आसमान सबसे ऊपर होता है। वहां इन दोनों आत्माओं का स्वागत **ऊकाङ** करता है। ऊकाङ ने अपने को अमर बनाने के प्रयत्न में देवताओं को नाराज कर दिया था। उसे चन्द्रमा पर बंदी बनाकर रखा गया था और एक विशाल जयपत्र (बनबहेड़ा) के वृक्ष को काटने का दंड दिया गया था जो काटे जाने के साथ ही फिर बढ़ आता है। इस पेड़ के फल से बनी शराब देवताओं का पेय थी जिसे पीकर ऊकाङ भी अमर हो गया था और चाङ ओ भी, जिसकी चर्चा कविता में 'एकांकी चांद की देवी' के रूप में आती है।

5. *'एकाकी चांद की देवी'* चाङ ओ है जो शिया साम्राज्य (2205-1776 ई.पूर्व) की एक खूबसूरत राजकुमारी थी जिसने अमृत चुराया था और चन्द्रलोक की देवी बन गई थी। वह वहां अकेली है और धरती पर वापस आना चाहती है।

6. यहां कवि का संकेत प्रतिक्रियावादी क्वोमिंताङ और च्याङ काई-शेक की ओर है।

महामारी के देवता को विदाई

1. पुराने चीन में यह समझा जाता था कि सभी महामारियां महामारी के देवता की देवता की देन हैं। कविता में महामारी के देवता का अभिप्राय सिस्टोसोमियासिस (घोंघा ज्वर) से है।

2. च्याङशी प्रान्त के पूर्वी भाग में स्थित एक काउंटी जहां पहले सिस्टोसोमियासिस का भारी प्रकोप मौजूद था।

3. चीन का एक प्राचीन श्रेष्ठ चिकित्सक।

4. यहां अभिप्राय भूमध्य रेखा की लम्बाई और पृथ्वी की परिधि से है।

5. यहां अभिप्राय आकाश गंगा के भीतर और बाहर स्थित तारामंडल से हैं।

6. आकाशगंगा का प्रथम श्रवण नक्षत्र चीन में ग्वाला नक्षत्र कहलाता है। पौराणिक कथाओं में यह नक्षत्र किसानों का प्रतीक माना जाता है।

7. यहां दैवी धरती से कवि का अभिप्राय चीन से है।

8. जनश्रुति के अनुसार चीन के दो विवेकशील प्राचीन सम्राट।

9. दक्षिण चीन में स्थित पांच पर्वत मालाएं। यहां कवि का संकेत दक्षिण चीन के विशाल क्षेत्र की ओर है।

10 "तीन नदियों के इर्दगिर्द की धरती" से कवि का अभिप्राय मध्य चीन स्थित पीली नदी के मध्य भाग के आसपास के भूभाग से है।

11. चीन के पुराने रिवाज के अनुसार कागज की नौकाएं भस्म करके और मोमबत्तियां जलाकार देवताओं को विदाई दी जाती थी अथवा भूतप्रेतों को भगाया जाता था।

लूशान पर चढ़ते हुए

1. लूशान च्याङशी प्रान्त में याङत्सी नदी के दक्षिणी तट पर च्यूच्याङ शहर के उत्तर में स्थित एक पर्वत है।

यह कविता माओ त्से-तुङ ने लूशान में ही हुई चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की आठवीं प्लेनम से ठीक एक माह पहले लिखी थी। इसी प्रसिद्ध तूफानी बैठक में उन्होंने अपना सबकुछ दांव पर लगाकर पार्टी के नेतृत्व में बैठे उन लोगों का विरोध करने का आह्वान किया था जो समाजवादी रास्ते को तिलांजलि देना चाहते थे और जो **'महान अग्रवर्ती छलांग'** पर्दे के पीछे से विध्वंसक विरोध कर रहे थे।

यह कविता जब लिखी गई थी, उस समय न केवल चीन में, बल्कि विश्वस्तर पर भी संशोधनवाद और

क्रान्तिकारी कम्युनिज्म के बीच निर्णायक संघर्ष की विभाजक रेखा खींच चुकी थी। जून के महीने में, माओ जब हुनान में थे, उसी समय ख्रुश्चेव ने चीन के साथ नई सामरिक तकनोलॉजी संबंधी समझौते को एकतरफा ढंग से रद्द कर दिया और चीनी पार्टी पर आर्थिक-राजनीतिक दबाव बनाने लगा कि वह अपनी सिद्धान्तनिष्ठ अवस्थिति को बदल दे और आधुनिक संशोधनवाद के समक्ष घुटने टेक दे। इधर चीन में भी पार्टी के भीतर के दक्षिणपंथी तत्वों का दबाव चरम पर था।

इस चतुर्दिक घेरेबंदी के बीच माओ एक नये निर्णायक संघर्ष के लिए कमर कस रहे थे। इस समय के अपने मनोभावों को इस कविता में बांधते हुए माओ ने गहराते संघर्ष को उमड़ते-घुमड़ते गहराते बादलों के रूप में देखा है। पूर्वी किनारे पर पछाड़ खाती प्रचंड लहरों से अभिप्राय क्रान्ति की धारा से हैं।

2. लूशान के निकट, पूरब में याङत्सी में कई सहायक नदियां आकर मिलती हैं, जिनकी चर्चा चीनी क्लासिकी कविता में बहुता नौ जलधाराओं के नाम से आती है।

3. यह मीनार वुचाङ के पश्चिम में ऊंचाई पर स्थित है, जहां से नीचे याङत्सी बहती हुई दिखाई देती है। पौराणिक कथा के अनुसार, एक ताओपंथी पीले सारस पर सवार यहां से गुजरा था, तभी से इसका नामकरण पीले सारस वाली मीनार हो गया।

4. प्रिफेक्ट ताओ युआन-मिङ (365-427 ई.) चिन राजवंश का एक कवि था जो कुछ समय के लिए काउंटी मजिस्ट्रेट भी रहा। उसका जन्मस्थान लू शान पर्वत के निकट था। ताओ युआन-मिङ से जब कहा गया कि वह यथोचित अदब और तामझाम के साथ अपने ऊपर के एक अधिकारी की आगवानी करे तो उसने यह कहते हुए इंकार कर दिया था कि 'वह महज पांच बोरी चावल के लिए एक क्षुद्र फूहड़ व्यक्ति के सामने सिर भला कैसे झुकायेगा? ऐसे करने के बजाय उसने अपना पद त्याग दिया। कविता में माओ ने चीन की पार्टी के क्रान्तिकारियों को और स्वयं को ताओ युआन-मिङ के रूप में देखा है जो सोवियत संशोधनाद (और व्यक्ति के रूप में ख्रुश्चेव) के फूहड़ व्यक्तित्व के सामने आर्थिक-सामरिक सहायता के लिए सिर झुकाने से इनकार कर देता है।

5. ताओ युआन-मिङ ने *"सतालू पुष्प से सुशोभित भूमि"* नामक एक कृति की रचना की थी जिसमें एक सुखी समाज का काल्पनिक चित्र उपस्थित किया गया था। माओ ने यहां इंगित किया है कि 'महान अग्रवर्ती छलांग' और कम्यूनों के निर्माण के बाद चीन का समाज एक ऐसा ही सुखी समाज होगा और यह वास्तविक होगा जबकि ताओ द्वारा चित्रित समाज काल्पनिक था।

एक मित्र को उत्तर

1. यह कविता माओ ने चीन में समाजवादी क्रान्ति एवं निर्माण के एक कठिनतम दौर में लिखी थी। चीन को पश्चिमी साम्राज्यवादियों के घेरेबंदी के अतिरिक्त सोवियत संघ के असहयोग और भितरघाती कार्रवाईयों का भी सामना करना पड़ रहा था। 1960-61 का जाड़ा चीन के लिए बेहद कठिन था। उस दौरान जनता को जबर्दस्त अकाल का सामना करना पड़ा था।

इन कठिन स्थितियों से जूझने के लिए संकल्प बांधते हुए माओ चीन के अतीत को याद करते हैं और भविष्य में अपनी गहरी आस्था प्रकट करते हैं।

2. यहां कवि का अभिप्राय सम्राट याओ की दो बेटियों से है। पौराणिक कथा के अनुसार इन दोनों बहनों ने याओ के उत्तराधिकारी सम्राट शुन से विवाह किया था। दक्षिण प्रदेश का दौरा करते समय हुनान प्रान्त में सम्राट शुन का देहान्त हो गया और च्यूई पर्वत पर उसकी समाधि बना दी गई। सम्राट के निधन का समाचार पाते ही दोनों रानियां हुनान पहुंच गईं। कहा जाता है कि सियाङ नदी कि किनारे उन्होंने इतने आसूं बहाये कि नदी तट पर स्थित बांस वन के सभी बांसों पर चित्तियां पड़ गईं।

यहां माओ का अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार शहजादियों के शोक से बांस के वृक्षों में एक नया सौन्दर्य पैदा हो गया, उसी तरह चीनी जनता का दु:ख भरा कठिन समय भी अन्तत: एक सुंदर भविष्य का निर्माण करेगा। यही भौतिकवादी द्वंद्ववाद का नियम है। इसीलिए माओ ने उपरोक्त शहजादियों को हवा पर सवार और गुलाबी लाल परिधानों से सजा हुआ दिखाया है, जो चीनी जनता की खुशहाली का एक भविष्य-चित्र है।

3. हुनान प्रान्त की एक झील।

4. यहां माओ का अभिप्राय चाङशा के निकट सियाङ नदी में स्थित नारंगी टापू से है। *"धरती को हिला देने वाले तराने"* के रूप में माओ अपने युवावस्था के क्रान्तिकारी अनुभवों को याद करते हैं और इंगित करते हैं कि उनदिनों की स्मृतियां अभी भी जनता के हृदय को आलोड़ित कर रही हैं।

5. *"जवा कुसुम की धरती"* हुनान का साहित्यिक नाम है जो ताङ राजवंश कालीन कविता से लिया गया है। निर्बाध-उन्मुक्त सपने में *'जवाकुसुम' की धरती को सुबह की रोशनी में चमकते हुए* देखना वस्तुत: एक दिन चीन में कम्युनिज्म के अवतरण का सपना देखना है।

परी गुफा

1. यह कविता माओ ने अपनी पत्नी और सहयोद्धा चियाङ चिङ द्वारा खींचे गये एक कलात्मक छायाचित्र के पीछे लिखी थी। चियाङ चिङ कलात्मक फोटोग्राफी **लि चिन** नाम से करती थीं। यह चित्र लुशान नगर के बाहर पहाड़ के कगार पर खड़े देवदारु के वृक्ष को दर्शाता है। यह छायाचित्र 1959 में लूशान की उस तूफानी बैठक के ठीक बाद लिया गया था, जिसकी चर्चा *'लूशान पर चढ़ते हुए'* कविता पर ऊपर दी गई टिप्पणी-1 में की गई है।

चित्र पर लिखी गई कविता लूशान बैठक की स्थितियों की भी याद दिलाती है और 1961 के कठिन समय को भी प्रतिबिम्बित करती है। *"दुर्गम खतरनाक ऊंचाईयो पर ही/ दिखती है सुन्दरता/ अपने अनन्त रूपों में"*–इन पंक्तियों का यह अभिप्राय स्पष्ट है कि कठिन साहसिक संघर्षों से गुजरकर ही समाजवादी जीवन के सौन्दर्य के अनन्त रूपों से साक्षात्कार किया जा सकता है।

कामरेड कुओ मो-जो को उत्तर

1. **कुओ मो-जो** द्वारा माओ को भेजी गई कविता और उसके उत्तर में लिखी गई कविता में सोलहवीं शताब्दी के एक प्रसिद्ध पौराणिक उपन्यास में वर्णित कथा का संदर्भ है जिसके माध्यम से ख्रुश्चेवी संशोधनवाद के विरोध में संघर्ष की तत्कालीन स्थितियों को अभिव्यक्त किया गया है।

उपरोक्त उपन्यास पर आधारित एक ऑपेरा को देखने के बाद ही कुओ मो-जो ने अपनी कविता लिखी थी। ऑपेरा में बौद्ध भिक्षु सियेन च्वाङ अपने तीन शिष्यों–दिव्य वानरराज (यानी ऊ कुङ), सूअर और भिक्षु शा को लेकर बौद्ध सूत्र लेने भारत की तीर्थयात्रा करने जाता है। रास्ते में उसे "सफेद हड्डियों का शैतान" मिलता है जो दीर्घजीवी होने की आकांक्षा से प्रेरित होकर भिक्षु का मांस खाना चाहता है। तीन बार वह क्रमश: एक सुन्दर युवती, एक बुढ़िया और बूढ़े आदमी का रूप धारण करके आता है। तीनों बार दिव्य वानरराज उसे पहचान लेता है, पर भिक्षु उसे जाने देता है। उल्टे वह वानरराज को ही आदेश न मानने के लिए दंडित करता रहता है। यात्रा के दौरान वानरराज को वश में रखने के लिए वह उसके सिर पर एक स्वर्णचक्र पहनाये रहता है जब वानरराज उसके गलत आदेशों का पालन नहीं करता है तो वह स्वर्णचक्र को सिकोड़ने के लिए सस्वर मंत्रपाठ करता है जिससे वानरराज के सिर में असह्य पीड़ा होने लगती है। उक्त कथा में, अन्त में दिव्य वानरराज अपनी भारी गदा से शैतान को मार डालता है।

कुओ मो-जो की कविता में भ्रमित भिक्षु (संशोधनवादी) ख्रुश्चेव गुट का प्रतीक है जो अमेरिकी साम्राज्यवाद (सफेद हड्डियों वाला शैतान) के प्रति नरमी बरतता है लेकिन चीन लोक गणराज्य की क्रान्तिकारी जनता और चीनी कम्युनिष्ट पार्टी (दिव्य वानरराज) के प्रति अन्यायपूर्ण जोर-जबदस्ती का व्यवहार करता है।

माओ त्से-तुङ ने अपनी कविता में यह भाव प्रकट किया है कि चीनी क्रान्ति का तूफान आते ही पश्चिमी साम्राज्यवाद का शैतान भी सक्रिय हो गया है। ख्रुश्चेवी गुट इस सच को जानते हुए भी नरमी बरत रहा है। माओ की कविता में यह कहा गया है कि अतीत में जिस तरह क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग ने अपनी पार्टी के नेतृत्व में विश्व पूंजीवाद को शिकस्त दी थी, उसी तरह आगे भी होगा। कविता इसके लिए सर्वहारा वर्ग और कम्युनिस्टों का आह्वान करती है।

कामरेड कुओ मो-जो का उत्तर

7 जनवरी, 1963 को **'प्रावदा'** ने अल्बानिया की पार्टी को निशाना बनाकर या "वामपंथी" और "कठमुल्लावादी" लोगों की आलोचना का बहाना बनाकर प्रहार करने के बजाय, पहली बार चीन की पार्टी पर सीधे प्रहार किया। इसके ठीक दो दिनों बाद, कुओ मो-जो की कविता का जवाब देने के बहाने से माओ ने अपने मनोभावों को इस कविता में बांधा, जिसमें अपने देश की जनता और अपनी पार्टी में अटूट विश्वास, संशोधनवाद के विरुद्ध संघर्ष में विजय के प्रति अडिग आस्था और गहरे क्रान्तिकारी आत्मविश्वास को प्रकट किया गया है।

अंशत: 'प्रावदा' के कीचड़ उछालने से प्रेरित होने के बावजूद यह कविता संपूर्ण विश्व परिस्थिति पर भी प्रतिक्रिया प्रकट करती है। चीनी पार्टी की एक टिप्पणी के अनुसार, *"1963 वह वर्ष था जब विश्व स्तर पर सभी प्रतिक्रियावादी शक्तियों का चीन-विरोधी कोरस अपने शिखर पर जा पहुंचा। पर साथ ही, इसी वर्ष एशिया, अफ्रीका और लातिन अमेरिका की जनता की क्रान्तिकारी लहर भी अपने चरमोत्कर्ष पर जा पहुंची। यह मार्क्सवाद-लेनिनवाद विरोधी विचारधारात्मक लहर की प्रचण्डता का समय था, लेकिन इसके बावजूद सत्य के साहसिक योद्धाओं के अविराम संघर्ष का सिलसिला भी जारी था।"*

इसी स्थिति को माओ ने इस कविता में क्रान्तिकारी और परंपरागत बिम्ब-विधान के असाधारण संयोजन के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

2. कविता में भूमंडल को छोटा इसीलिए कहा गया है कि सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयतावादी क्रान्तिकारी की दृष्टि में इसकी विशालता कोई अर्थ नहीं रखती क्योंकि सर्वहारा वर्ग अपनी क्रान्तिकारी कार्रवाइयों के द्वारा इसे बदल डालने में सक्षम हैं।

3. बिना रुके भनभनाने, चीखने और कराहने वाली मक्खियों से तात्पर्य साम्राज्यवादियों और आधुनिक संशोधनवादियों से है।

4. ये दीवारें मार्क्सवाद-लेनिनवाद की क्रान्तिकारी विचारधारा की हैं।

5. इन पंक्तियों में जिन चीटियों और चींटों की चर्चा की गई है उनसे कवि का अभिप्राय सोवियत संशोधनवादियों से है जो चीन पर बड़े राष्ट्र की धौंसपट्टी (बिग नेशन शॉवनिज्म) दिखाते थे। विशाल वृक्ष चीन की पार्टी और उसकी विचारधारा का प्रतीक है। चीनी पार्टी के एक मुखपत्र के अप्रैल 1964 के एक संपादकीय के अनुसार, *"माओ और उनके विचारों पर कीचड़ उछालने के अनथक प्रयासों में लगे सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के नेतागण वस्तुत: उन चींटों के समान हैं जो हास्यास्पद ढंग से अपनी औकात बढ़ाचढ़ाकर आंक रहे हैं और एक विशाल वृक्ष को उखाड़ देने के मसूबे बांध रहे हैं।"* इससे कविता का संदर्भ स्पष्ट हो जाता है।

बबूल के पेड़ का संदर्भ ताङ राजवंश की एक कहानी से जुड़ा हुआ है। उक्त कहानी में कहा गया है कि एक आदमी शराब के नशे में सो गया और सपने में "बबूल राज्य" के राजा का दामाद और उसकी दक्षिणी शाखा का प्रिफेक्ट बन गया। "बबूल राज्य" वास्तव में बबूल के पेड़ के नीचे एक छोटा सा छिद्र था, जिसमें चींटियां रहती थीं।

6. चाङआन नगर शेनशी प्रांत का वर्तमान चीआन नगर है जो प्राचीन काल में चीन की प्रसिद्ध राजधानी था। कविता में यह पूरे चीन के प्रतीक के रूप में आया है।

7. 'पंक्तियां' प्रतिक्रियावादी शक्तियां हैं जो क्रान्तिकारी विस्फोट से बिखर गई हैं। पर साथ ही, माओ का तात्पर्य शायद यहां सोवियत और अन्य संशोधनवादियों के प्रोपेगैण्डा से भी है।

8. तीर मार्क्सवादी-लेनिनवादी सच्चाई के प्रतीक हैं जिनसे चीन की पार्टी अपने दुश्मनों को जवाब देती है।

9. कविता के इस अंतिम हिस्से में विश्व स्तर पर क्रान्तिकारी धारा के नये उत्कर्ष का उल्लेख किया गया है और क्रान्तिकारियों को उनके चुनौतीपूर्ण कार्यभारों की याद दिलाते हुए बिना रुके लगातार संघर्षरत रहने के लिए उनका आह्वान किया गया हैं।

कुओ मो-जो की कविता

1. यहां माओ त्से-तुङ की संकलित रचनाओं के चार खंडों का हवाला दिया गया है।

2. यह एक चीनी कहावत है। प्राचीन जनश्रुति के अनुसार चियेह एक निरकुंश सम्राट था जबकि याओ एक दयालु और विवेकशील सम्राट। चियेह यहां साम्राज्यवाद को और चियेह का कुत्ता सोवियत संशोधनवाद को कहा गया है। याओ यहां चीन की पार्टी और माओ त्से-तुङ को कहा गया है।

3. मिट्टी के सांड से यहां तात्पर्य साम्राज्यवाद और आधुनिक संशोधनवाद से है।

●

स्त्री के त्रासद वर्तमान और मुक्ति स्वप्नों से भावनात्मक सरोकार रखने वाले लोगों और संघर्ष के कार्यक्रम पर व्यावहारिक ढंग से सोचने वाले लोगों के लिए एक जरूरी किताब

दुर्ग द्वार पर दस्तक

स्त्री के अन्तर्जगत-बहिर्जगत और मुक्ति के प्रसंग में कुछ बातें

कात्यायनी

स्त्री-प्रश्न के विविध पक्षों की कात्यायनी की समझ में इतिहास-बोध और वैज्ञानिक तर्कसम्मति के साथ ही एक कवि की गहरी संवेदना भी है और एक 'ऐक्टिविस्ट' की सुलझी हुई व्यवहारोन्मुखता भी। मार्क्सवाद का प्रयोग वे दृष्टि के रूप में करती हैं, अंधे की राह टटोलती लाठी के रूप में नहीं, एक मार्गदर्शक विज्ञान के रूप में करती है, एक बने-बनाये खांचे के रूप में नहीं। मार्क्सवाद के नाम पर प्रचलित भोंड़े भौतिकवादी और प्रत्यक्षवादी (पॉजिटिविस्ट) भटकावों से बचते हुए उन्होंने नारी-मुक्ति के सन्दर्भ में आर्थिक आधार के परिवर्तन की अपरिहार्यता के साथ ही अधिरचनात्मक धरातल के परिवर्तन-प्रयासों की अपरिहार्यता की भी चर्चा की है तथा इस सम्बन्ध में **माओ त्से-तुङ** के **सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति** के सिद्धांतों को लागू करते हुए यह स्थापना दी है कि **समाजवाद नारी मुक्ति की संघर्ष-यात्रा का अंत नहीं बल्कि एक नई शुरुआत है।** नारी मुक्ति के वैश्विक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखते हुए भी उन्होंने भारतीय इतिहास और समाज की विशिष्टताओं से तय होने वाली इसकी आन्तरिक गति पर मुख्य जोर दिया है। इस रूप में कात्यायनी के विमर्श में हमें दूसरे दशक की उग्र नारीवादी चिन्तक **उमा नेहरू** के चिन्तन का विस्तार दिखाई देता है और साथ ही **महादेवी वर्मा** की **'श्रृंखला की कड़ियां'** से भी कहीं-न-कहीं उनके लेखों के योजक-सूत्र जुड़ते हैं। उनकी चिन्तन-प्रक्रिया का तीसरा संघटक अवयव वाम क्रान्तिकारी धारा की उन तमाम स्त्री-ऐक्टिविस्टों की चेतना का विस्तार है जो आम जनता के जीवन-संघर्षों में भागीदारी करते हुए भारतीय स्त्री की जिन्दगी, जद्दोजहद और सपनों के बारे में सोचती-विचारती रही हैं।

'दुर्ग द्वार पर दस्तक' स्त्री के त्रासद वर्तमान और मुक्ति-स्वप्नों से गहरा भावनात्मक सरोकार महसूस करने वाले लोगों और संघर्ष के कार्यक्रम पर व्यावहारिक ढंग से सोचने वाले लोगों के बीच यह बहुत चाव से पढ़ी जायेगी, यह निश्चित है।

— **विश्वनाथ मिश्र** *(पुस्तक के फ्लैप से)*

मूल्य: 50 रुपये (पेपरबैक), 120 रुपये (सजिल्द)

मंगवाने के लिए इस पते पर धनादेश या ड्राफ्ट भेजें या लिखें:
परिकल्पना, 3/274, विश्वास खण्ड, गोमतीनगर, लखनऊ-226 010

राजनीतिक अर्थशास्त्र के मूलभूत सिद्धान्त

(पृष्ठ 57 का शेष)

(पृष्ठ 57 का शेष)

प्रक्रिया है। यह एक लम्बा चलने वाला संघर्ष है। हमारे सामने दुष्कर व श्रमसाध्य कार्यभार है, और हमें अपनी पूरी ताकत से लड़ना होगा।

अध्ययन के लिए प्रमुख संदर्भः

मार्क्स, कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र

लेनिन, "खाद्यान्न कर के बारे में," **लेनिन की संकलित रचनाएं।**

माओ त्से-तुङ, "चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की सातवीं केन्द्रीय कमेटी के दूसरे प्लेनम में प्रस्तुत रिपोर्ट"

माओ त्से-तुङ, "जनता के बीच के अन्तरविरोधों को सही ढंग से हल करने के बारे में" भाग 3-4

माओ त्से-तुङ, "कृषि के सहकारीकरण के बारे में"

समीक्षात्मक प्रश्न

1. समाजवादी राजकीय स्वामित्व की प्रणाली कैसे अस्तित्व में आती है? ऐसा क्यों कहते हैं कि यह सर्वहारा अधिनायकत्व का मुख्य आर्थिक आधार है?

2. ऐसा क्यों कहते हैं कृषि के सहकारीकरण के बिना समाजवाद पूर्णतः सुदृढ़ नहीं होता? चीन में ग्रामीण जन कम्यून ने वर्तमान अवस्था में "उत्पादन टीम की बुनियाद वाले त्रिस्तरीय स्वामित्व" की प्रणाली को क्यों अपनाया है?

3. समाजवादी सार्वजनिक स्वामित्व की प्रणाली को निरन्तर सुदृढ़ और विकसित कैसे किया जा सकता है?

टिप्पणियां

1. एंगेल्स, **ड्यूहरिंग मत-खंडन, मार्क्स-एंगेल्स की चुनी हुई कृतियां,** खंड 3, चीनी संस्करण, 1972, पृ. 201

2. मार्क्स, **गोथा कार्यक्रम की आलोचना, मार्क्स-एंगेल्स की चुनी हुई कृतियां**, खंड 3, चीनी संस्करण, 1972, पृ. 5

3. **कम्युनिस्ट घोषणापत्र, मार्क्स-एंगेल्स की चुनी हुई कृतियां** खंड 1, चीनी संस्करण, 1972, पृ. 272

4."वर्तमान परिस्थिति और हमारे कार्यभार", **माओ त्से-तुङ की संकलित रचनाएं**, भाग 4, चीनी संस्करण 1968, पृ. 1149

5. "चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की सातवीं केन्द्रीय कमेटी के दूसरे प्लेनम में प्रस्तुत रिपोर्ट" **माओ त्से-तुङ की संकलित रचनाएं**, भाग 4, चीनी संस्करण 1968, पृ. 1321

6. "वामपंथी बचकानापन और टुटपूंजियां मनोवृत्ति" **लेनिन की संकलित रचनाएं,** भाग 3, चीनी संस्करण 1972, पृ. 548

7. "रूसी कम्युनिष्ट पार्टी (बोल्शेविक) की केन्द्रिय कमेटी में प्रस्तुत राजनीतिक रिपोर्ट," **लेनिन की संकलित रचनाएं**, खंड 4, चीनी संस्करण 1972, पृ. 627

8. "जनता के जनवादी अधिनायकत्व के बारे में" **माओ त्से-तुङ की संकलित रचनाएं**, खंड 4, चीनी संस्करण 1968, पृ. 1366

9. "वामपंथी कम्युनिज्म, एक बचकाना मर्ज", **लेनिन की संकलित रचनाएं**, भाग 4, चीनी संस्करण 1972, पृ. 181

10. एंगेल्स, "फ्रांस और जर्मनी में किसानों का प्रश्न" **मार्क्स-एंगेल्स की चुनी हुई कृतिया**, खंड 4, चीनी संस्करण 1972, पृ. 310

11. "संगठित हो जाओ!" **माओ त्से-तुङ की संकलित रचनाएं**, खंड 3, चीनी संस्करण 1968, पृ. 886

12. "कृषि के सहकारीकरण के बारे में," **माओ त्से-तुङ की रचनाओं के चुनीदां अंश**, (टाइप ए), चीनी संस्करण 1965, पृ. 308

13. मार्क्स, **पूंजी,** खंड 3, चीनी संस्करण, 1966, पृ. 438

14. माओ, चाङ चुन-चियाओ के लेख "बुर्जुआ वर्ग पर सर्वतोमुखी अधिनायकत्व लागू करने के बारे में" में उद्धृत। रेमंड लोट्टा द्वारा संपादित पुस्तक *"एण्ड माओ मेक्स फाइव"* में संकलित।

15. चाउ एन-लाई, "चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की दसवीं राष्ट्रीय कांग्रेस में प्रस्तुत रिपोर्ट", **दसवीं पार्टी कांग्रेस के संकलित दस्तावेज**, चीनी संस्करण, 1973, पृ. 32-33

16. एंगेल्स, "कम्युनिज्म के सिद्धांत", **मार्क्स-एंगेल्स की चुनी हुई कृतियां**, खंड 1, चीनी संस्करण 1972, पृ. 217

17. माओ, "एक गंभीर सबक पर टिप्पणियां" चीन के ग्रामीण क्षेत्रों में उभार, खंड 1 पृ. 123

(चीन में महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान तैयार की गई प्रसिद्ध पुस्तक **फंडामेंटल्स आफ पोलिटिकल इकॉनमी** (**द शंघाई टेक्स्टबुक** नाम से मशहूर) के अंग्रेजी संस्करण से हिन्दी अनुवाद : **सत्यम वर्मा**

एक युगान्तरकारी दस्तावेज

(पृष्ठ का शेष)

भटकाव की तरफ ले जाने वाले जहरीले रुझान को, जो सही फैसलों को पलटने की कोशिश करता है, पूरी तरह से कुचल देना चाहिए।

हमें माओ त्से-तुङ विचारधारा का सृजनात्मक ढंग से अध्ययन करने तथा उसे सृजनात्मक ढंग से लागू करने के जोरदार जन-आन्दोलन को और अधिक व्यापक पैमाने पर आगे बढ़ाना चाहिए, माओ त्से-तुङ विचारधारा की अध्ययन-कक्षाओं को प्रभावशाली ढंग से चलाने के लिए और ज्यादा प्रयास करते रहना चाहिए, अलग-अलग विभागों, व्यवसायों और स्कूल की कक्षाओं के आधार पर क्रान्तिकारी महान संश्रय को विकसित करने व उसे सुदृढ़ बनाने तथा क्रान्तिकारी ''त्रिपक्षीय'' संश्रय को विकसित करने व सुदृढ़ बनाने की जोरदार कोशिश करते रहना चाहिए, बहुसंख्यक कार्यकर्ताओं और जन-समुदाय को एकताबद्ध कर लेना चाहिए, हर इकाई में संघर्ष, आलोचना व खंडन, रूपान्तर[1] के कार्य को सफल बनाना चाहिए, **क्रान्ति को दृढ़ता से चलाना चाहिए, उत्पादन कार्य व अन्य कार्यों को तथा युद्ध के विरुद्ध तैयारी को आगे बढ़ाना चाहिए** और तमाम मोर्चों पर और ज्यादा अच्छा काम करना चाहिए।

महान चीनी जन-मुक्ति सेना ने महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति में भारी योगदान किया है। हमें सेना का समर्थन करने और जनता को प्यार करने के आन्दोलन को आगे बढ़ाते रहना चाहिए तथा सेना और जनता के बीच की एकता को मजबूत बनाते रहना चाहिए।

हमें नव-निर्मित क्रान्तिकारी कमेटियों का पोषण और समर्थन करना चाहिए ताकि वे कदम-ब-कदम सुदृढ़ व परिष्कृत होती हुई ऐसे जुझारू सदर-मुकामों का रूप धारण कर लें जो माओ त्से-तुङ विचारधारा के महान लाल झण्डे को बुलंद रखें और सर्वहारा राजनीति को सर्वोपरि रखें। क्रान्तिकारी कमेटियों को चाहिए कि वे नई जीतें हासिल करने और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति को अन्त तक चलाने में कोटि-कोटि जनता की अगुवाई करें।

आइए, हम सब माओ त्से-तुङ विचारधारा के झण्डे तले गोलबंद हो जाएं, अध्यक्ष माओ की सर्वहारा क्रान्तिकारी कार्यदिशा का दृढ़तापूर्वक अनुसरण करें, और मानव जाति के इतिहास की पहली महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के महान ऐतिहासिक कार्य को सर्वांगीण रूप से पूरा करने के लिए निरन्तर संघर्ष करें! नई जीतें हमारा आह्वान कर रही हैं, आइए, हम साहस के साथ आगे की ओर अभियान करें! ●

1. "संघर्ष, आलोचना व खंडन, रूपान्तर" का मतलब है उन कर्ताधर्ता लोगों के खिलाफ संघर्ष करना और उन्हें धराशायी कर देना जो पूंजीवदी रास्ता अपना रहे हैं, विद्याध्ययन के क्षेत्र में काम करने वाले प्रतिक्रियावादी पूंजीवादी "धुरंधर विद्वानों" और पूंजीपति वर्ग तथा अन्य तमाम शोषक वर्गों की विचारधारा की आलोचना करना और उनका खंडन करना, तथा शिक्षा, साहित्य व कला और ऊपरी ढांचे के उन तमाम अंगों का रूपान्तर कर देना जो समाजवादी आर्थिक आधार के अनुरूप नहीं हैं।